पुस्तकमाला सं० ४९

भारतीय आचार-व्यवहार

[आचार-व्यवहार सम्बन्धी शास्त्रीय शिक्षाओं का सर्वसाधारणोपयोगी संग्रह]

सत्यनिष्ठं शिवं सुन्दरं संस्कृतम्

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

वाराणसी

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

वाराणसी

શ્રી પાણિનિકન્યામહાવિદ્યાલયાય
સસ્નેહં સમર્પિતમ્.

વા. દ્વિવેદી.
૧૦।૨।૮૩

संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला सं० ४९

भारतीय
आचार-व्यवहार

[आचार-व्यवहार सम्बन्धी शास्त्रीय शिक्षाओं का सर्वसाधारणोपयोगी संग्रह]

संकलयिता एवं सम्पादक
वासुदेव द्विवेदी शास्त्री
(सम्पादक—संस्कृत प्रचार पुस्तक माला)

सार्वभौम संस्कृत प्रचार-कार्यालय
वाराणसी

प्रकाशक :
सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
डी० ३८।११० हौजकटोरा, वाराणसी

संस्करण : प्रथम
पुस्तकसंख्या : एक हजार
मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक :
देववाणी प्रेस
ई० ३५।३६ बड़ी मलदहिया
वाराणसी

आवश्यक निवेदन

पुस्तक की उपयोगिता

संस्कृतभाषा के प्रचार के साथ-साथ उसके साहित्य में प्रतिपादित सर्वसाधारण मानवोपयोगी शिक्षाओं का संकलन, सम्पादन तथा पुस्तक-पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशन भी इस संस्था का प्रमुख लक्ष्य रहा है। तदनुसार ही जैसे संस्कृतभाषा के ज्ञान एवं प्रचार के लिए अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वैसे ही धर्म, सदाचार, नीति एवं सुभाषितों से सम्बन्धित पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। इसी सन्दर्भ में बहुत दिनों से मेरी एक ऐसी पुस्तक के सम्पादन तथा प्रकाशन की भी प्रबल इच्छा थी जिसमें दैनिक जीवनोपयोगी उन समस्त धार्मिक शिक्षाओं का संकलन हो जो आज के जीवन में भी उपयोगी, सहायक एवं मार्गदर्शक हो सके और जाति-धर्म-निर्विशेष सबके लिए ग्राह्य बन सके।

इस दृष्टि से आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व हमने इस प्रकार की कुछ शिक्षाओं का संकलन किया। संकलन के कुछ ही दिनों के पश्चात् आन्ध्रप्रदेश की यात्रा के समय राजमहेन्द्री में जब मैंने कांची कामकोटि-पीठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य श्री १०८ स्वामी चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी को इसे दिखाया तो उन्हें यह पुस्तक बहुत अच्छी लगी और इसी कारण उन्होंने इसके प्रकाशन की भी व्यवस्था कर दी। फलतः २०२५ वि० संवत् में यह संकलन लघुकाय होने के कारण "बाल-सदाचार शिक्षा" नाम से प्रकाशित हुआ और अपने ढंग का नया प्रकाशन होने के कारण धार्मिक एवं संस्कृतप्रेमी समाज में समादृत भी हुआ।

परन्तु इस पुस्तक में बहुत थोड़े विषयों पर थोड़ी ही शिक्षाओं का संग्रह प्रकाशित हो सका था इसलिए मुझे इससे सन्तोष नहीं हुआ और मैंने इस ढंग की एक सर्वाङ्गपूर्ण वृहत् पुस्तक के सम्पादन की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों से विशेष सामग्री संग्रह करने का निश्चय किया और यथासमय संग्रह भी करने लगा।

इसी बीच वाराणसी के निवासी, पर भारतप्रसिद्ध मनीषी एवं उच्चकोटि के चिन्तक माननीय डा० सम्पूर्णानन्दजी की एक पुस्तक "दर्शन और जीवन" को पढ़ने का अवसर मिला जिसमें उन्होंने एक प्रसंग में समस्त अच्छी और बुरी बातों की एक सूची बनाने की आवश्यकता पर अपना विचार इस प्रकार प्रगट किया था—

"सच बोलना, किसी की सम्पत्ति को हस्तगत न करना, आपन्नों की रक्षा और सहायता करना अच्छे काम माने जाते हैं। इसी प्रकार झूठ बोलना, परस्त्रीगमन, परधनहरण, दुर्बल को सताना बुरे कर्म माने जाते हैं। परन्तु न तो सब अच्छे कामों की कोई सूची मिलती है और न बुरे कामों की। यदि ऐसी सूचियाँ मिलतीं और हमको उनके बनाने वालों पर श्रद्धा और विश्वास होता तो आँख मूँद करके अच्छे कामों की सूची के अनुसार काम करते चलते और बुरी सूची में गिनाये कामों को छोड़ते जाते। संभव है, उसमें कुछ कष्ट होता, तपस्या करनी होती पर मार्ग तो खुला होता। अब तो हमको स्वयं सोचना पड़ता है कि कौन-सा काम अच्छा है, कौन-सा बुरा।"

इस लेख को पढ़ने के बाद जब मैं माननीय सम्पूर्णानन्दजी से मिला, इस सम्बन्ध में उनसे विचार-विमर्श किया और उनके विचार को कुछ और अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से समझा तो मुझे इस पुस्तक के तैयार करने में और प्रेरणा मिली तथा डाक्टर साहब के परामर्शानुसार ही हमने इसे सूची के रूप में ही तैयार करने का निश्चय किया। इसके पश्चात् हमने कुछ ईसाई एवं मुस्लिम धर्म की भी पुस्तकों का अवलोकन किया जो उन धर्मों में स्वीकृत विधि-निषेधों की सूची के समान ही थीं। इन पुस्तकों के पढ़ने के बाद मेरा उत्साह और भी बढ़ा तथा फलस्वरूप हिन्दू धर्म के विविध ग्रन्थों के अध्ययन तथा सामग्री संग्रह के काम में विशेष रूप से रुचि लेने लगा। उस समय मैंने इस ग्रन्थ के स्वरूप की जो कल्पना की और रूपरेखा बनायी वह बड़ी विशाल थी परन्तु

संस्कृतप्रचारार्थं भ्रमण में ही अधिक व्यस्त रहने और संस्कृत-प्रचारोपयोगी पुस्तकों के सम्पादन में ही अधिक समय देने के कारण इस ग्रन्थ के निर्माण का काम प्रायः अत्यन्त मन्द गति से ही चलता रहा।

तत्पश्चात् कई वर्षों के बाद जब इस काम को भी पूर्ण कर देने की मेरी इच्छा बलवती हुई और एकमात्र मैं इसी काम में प्रवृत्त हुआ तो दुर्भाग्यवश उन्हीं दिनों हृदयरोग से आक्रान्त हो गया, मेरी शक्ति क्षीण होती गयी और अपने माननीय चिकित्सक डा० श्री उपदेशनारायणजी माथुर तथा अन्य मित्रों के आग्रह से पढ़ने-लिखने का काम बिलकुल बन्द कर देना पड़ा। इतना ही नहीं, वाराणसी रहने पर पढ़ने-लिखने तथा पुस्तकसम्पादन का काम पूर्णतः बन्द नहीं हो सकता इस आशंका से अपने पुत्र डा० विद्यानन्द द्विवेदी के परामर्श और आग्रह से कुछ काल के लिए मुझे वाराणसी छोड़ कर घर पर भी रहना पड़ा और इस प्रकार इस चिरसंकल्पित काम को उस समय बिलकुल छोड़ ही देना पड़ा। बाद में एक वर्ष के पश्चात् जब मैं कुछ स्वस्थ हुआ और पुनः वाराणसी रहने लगा तो मैंने इस काम को फिर से आरम्भ किया पर परिश्रम होने पर पुनः अस्वस्थ होने के भय से मुझे वृहद् ग्रन्थ लिखने की अपनी महत्वाकांक्षा को समेटना पड़ा और आत्मसन्तोष तथा कुछ अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए भी केवल दैनिक आचार-व्यवहार सम्बन्धी वचनों के संग्रह तक ही अपनी इच्छा को सीमित करना पड़ा। इस प्रकार विविध विघ्न-बाधाओं के बीच यह पुस्तक किसी प्रकार तैयार हो सकी जो आज पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

यद्यपि संस्कृत में ऐसे ग्रन्थों का अभाव नहीं है जो धर्मशास्त्रीय वचनों के संग्रह के रूप में प्रकाशित हैं। उनमें-से कई ग्रन्थ इस समय उपलब्ध भी हैं। उदाहरण के रूप में पण्डित लक्ष्मीधर विरचित कृत्य-कल्पतरु, पण्डित चण्डेश्वर ठक्कुर प्रणीत कृत्यरत्नाकर, हेमाद्रिसूरि

विरचित चतुर्वर्गचिन्तामणि, पण्डित वैद्यनाथ दीक्षित विरचित स्मृति-मुक्ताफल, श्री देवणभट्ट कृत स्मृतिचन्द्रिका आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जो कई बड़े-बड़े भागों, खण्डों एवं प्रकरणों में विभक्त हैं तथा अपने विषय में सर्वाङ्गपूर्ण हैं। इसी प्रकार आह्निकसूत्रावलियाँ भी अनेक मिलती हैं जो दैनिक आचार के ही प्रमुख ग्रन्थ हैं। निश्चय ही इन ग्रन्थों के सम्पादन में बड़ा भारी परिश्रम करना पड़ा होगा। पर यह दु:ख का विषय है कि इन ग्रन्थों में-से किसी का भी हिन्दी में या जहाँ तक मुझे मालूम है, किसी अन्य भाषा में भी, पूरा अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि इनमें-से एक-दो का भी अनुवाद प्रकाशित होता तो संस्कृत न जानने वाले जिज्ञासु लोगों को बड़ा लाभ होता एवं धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में यह बहुत बड़ी सेवा होती। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इन ग्रन्थों का हिन्दू धर्म या आचार-व्यवहार के ऐतिहासिक अध्ययन तथा अनुसन्धान के लिए भले ही उपयोग हो पर वर्तमान समय में सामान्य जन-जीवन के लिए इनका उपयोग सम्भव नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ इतने विशाल और इतने बहुमूल्य हैं कि इनको खरीदना और इन्हें आद्योपान्त पढ़ना सबके लिए सम्भव नहीं। दूसरे, इन ग्रन्थों में संकलित शिक्षाओं का अधिकांश भाग वर्तमान जीवन से इतना दूर हो गया है कि कोई बड़ा से बड़ा धर्माचार्य या बड़ा से बड़ा धर्मशास्त्री भी इन शिक्षाओं का न तो पालन करता है और न वर्तमान परिवर्तित परिस्थिति में कर ही सकता है। तीसरे, हिन्दू धर्म का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन करने वाले विद्वानों में अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं जो धर्मशास्त्रों की अनेक शिक्षाओं को न केवल वर्तमान जीवन के लिए अनुपयोगी, अव्यवहारिक और अहितकर ही मानते हैं अपितु वे उन्हें बुद्धिविरुद्ध, कार्यकारणभावशून्य तथा अविवेकप्रसूत ही मानते हैं और इसीलिए वे उन शिक्षाओं को परित्याज्य घोषित कर चुके हैं। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त ग्रन्थों में संकलित समस्त शिक्षाओं तथा विधिनिषेधों का

सामान्य जनता में प्रचार करना भी धर्म तथा समाज के लिए हितकर नहीं है। अतः धर्म तथा आचार-व्यवहार के नाम पर अब ऐसी शिक्षाओं के ही संग्रह, प्रकाशन तथा प्रचार की आवश्यकता है जो अधिक से अधिक तर्कसंगत, हृदयग्राह्य, व्यावहारिक तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हों। वर्तमान संग्रह इसी दृष्टिकोण से किया गया है। आशा है, धर्म-सदाचार के प्रति सर्वसाधारण में व्याप्त नैराश्य, उदासीनता तथा अनास्था को दूर कर यह पुस्तक, नहीं पूर्ण रूप से तो आंशिक रूप में ही सही, समाज को नयी दृष्टि देने में अवश्य सहायक होगी। फिर भी इस पुस्तक के सम्बन्ध में हम विद्वान् पाठकों से उनके सुझाव सादर आमन्त्रित करते हैं जिससे कि समुचित संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन के साथ यह पुस्तक अग्रिम संस्करण में राष्ट्रीय आचारसंहिता के रूप में मान्यता प्राप्त कर सके।

पुस्तक की रूपरेखा

अब प्रस्तुत पुस्तक के स्वरूप तथा संग्रह-सम्पादन की नीति के सम्बन्ध में भी कुछ निवेदन कर देना आवश्यक है।

१. जैसा कि पुस्तक का नाम है, इसमें सर्वसाधारण के लिए उपयोगी दैनिक आचार-व्यवहार सम्बन्धी शिक्षाओं का ही संग्रह किया गया है जो अधिकांश भारतीय जनता के लिए ग्राह्य हो सकता है। इसमें वर्ण, आश्रम तथा विविध सम्प्रदायों से सम्बन्धित विशेष कर्तव्यों एवं काम्य-नैमित्तिक विधि-निषेधों का संग्रह नहीं किया गया है।

२. मानव-जीवन के समस्त क्षेत्रों में विकास एवं सफलता प्राप्त करने के लिए जितनी शिक्षाएँ आवश्यक हैं वे सब केवल धर्मशास्त्रों में ही नहीं मिलतीं। अतः इस पुस्तक में धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद, नाट्यसंगीत एवं दर्शनशास्त्र आदि विभिन्न शास्त्रों से भी पर्याप्त वचनों का संग्रह किया गया

है जिससे कि यह पुस्तक जीवन के अधिकांश क्षेत्रों तथा गति-विधियों के लिए मार्गनिर्देशक हो सके।

३. विभिन्न धर्मग्रन्थों में बहुधा एक ही प्रकरण या अध्याय में अनेक विषयों का उल्लेख किया गया रहता है परन्तु इस पुस्तक में उन सभी विषयों को अलग-अलग प्रकरणों में रखा गया है जिससे कि उनका स्पष्ट रूप से निर्देश हो सके और उनकी स्वतन्त्र महत्ता का भी ज्ञान हो सके।

४. धर्मशास्त्रों में अर्थात् स्मृतिग्रन्थों में बहुत से श्लोक ऐसे मिलते हैं जिनमें एक साथ हो भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित अनेक शिक्षाओं का समावेश रहता है। अर्थात् एक ही श्लोक के चार चरणों में चार भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित शिक्षाएँ उल्लिखित रहती हैं। परन्तु धर्म या नीति के सूत्रग्रन्थों में यह दोष नहीं पाया जाता। अतः इस पुस्तक में वैसे श्लोकों के स्थान पर सूत्रों का ही उल्लेख किया गया है या श्लोक के उतने ही अंश का उल्लेख किया गया है, जितना उस प्रकरण के लिए उपयोगी है।

५. भारतीय जीवन में धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष ये चार पुरुषार्थ साध्य माने गये हैं और चारों की प्राप्ति के लिए चार प्रकार के शास्त्रों की भी रचना की गयी है जो धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र कहलाते हैं। परन्तु इस पुस्तक में धर्म, अर्थ एवं काम इस त्रिवर्ग से सम्बन्धित शिक्षाओं का ही संग्रह किया गया है क्योंकि सामान्य जनजीवन से इन्हीं का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वैसे तो जो लोग मोक्ष-मार्गी हैं उनके लिए भी इस पुस्तक की अधिकांश शिक्षाएँ सहायक हैं ही।

६. कई ऐसी शिक्षाएँ हैं जो आचारखण्ड के शील-स्वभाव सम्बन्धी सामान्य प्रकरण के साथ ही किसी विशेष प्रकरण में भी दे दी गयी है और इस प्रकार कुछ वचनों की द्विरावृत्ति हो गयी है। ऐसा इसलिए करना पड़ा कि उन शिक्षाओं का दोनों प्रकरणों में रखना उपयुक्त था।

पुस्तक की त्रुटियाँ

प्रस्तुत प्रसंग में इस पुस्तक की त्रुटियों के सम्बन्ध में भी निवेदन कर देना आवश्यक है जिनका स्वास्थ्य के समीचीन न रहने के कारण परिमार्जन न हो सका। वे त्रुटियाँ निम्नलिखित हैं।

१. इस पुस्तक के आचार-खण्ड में २७ तथा व्यवहार-खण्ड में २१ प्रकरण हैं। कुछ प्रकरण परिशिष्ट भाग में भी हैं। सभी प्रकरणों के आरंभ में तत्तत् प्रकरण के विषय की व्यावहारिकता तथा उसके क्षेत्र की व्यापकता के सम्बन्ध में एक छोटा भी आरम्भिक वक्तव्य अपेक्षित था जो नहीं दिया जा सका।

२. विभिन्न प्रकरणों के संग्रह में कुछ वचन ऐसे भी मिलेंगे जो अनेक पाठकों की दृष्टि में सारहीन एवं निरर्थक प्रतीत होंगे। ऐसी स्थिति इन वचनों की उपयोगिता के सम्बन्ध में भी तत्तत् स्थलों पर कुछ निर्देश करना आवश्यक था पर वह भी नहीं किया जा सका है।

३. कोई भी विधि या निषेधबोधक वचन ऐसा नहीं है जिसका कोई अपवाद न हो और अपवाद भी जीवन के लिए उतने ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण होते हैं जितने कि विधिनिषेध वचन। इस दृष्टि से धर्मशास्त्रीय विधिनिषेधों के साथ उनके अपवादों का भी ज्ञान परम आवश्यक होता है। पर इस पुस्तक में अपवादवचनों का भी उल्लेख नहीं किया जा सका है।

४. हिन्दू धर्मग्रन्थों के साथ मुझे बहुत पहले से ही बौद्ध एवं जैन धर्मग्रन्थों के भी अध्ययन करने का अवसर मिला है जिनमें आचार-व्यवहारसम्बन्धी बहुत ही उत्तमोत्तम शिक्षाएँ बड़े व्यवस्थित रूपसे लिखी गयी हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दू धर्मशास्त्रों के वचनों के साथ बौद्ध एवं जैन धर्मशास्त्रों के भी महत्त्वपूर्ण तथा तत्तद् विषयों से सम्बन्धित अतिरिक्त वचनों को देने का विचार था पर हम इस पुस्तक में उन ग्रन्थों का एक भी वचन नहीं दे सके हैं।

५. एक त्रुटि इस पुस्तक की यह भी है कि आचार-व्यवहार सम्बन्धी और भी छोटे-मोटे अनेक विषयों का समावेश हो सकता था जो इसमें नहीं हो सका है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अपने विषय में अपूर्ण ही कही जा सकती है।

६. धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण एवं तन्त्रग्रन्थों की विविध कथाओं एवं विविध प्रसङ्गों में आचार-व्यवहारसम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। यदि इस पुस्तक में कथा एवं प्रसङ्ग निर्देश पूर्वक उन शिक्षाओं का भी संग्रह होता तो यह पुस्तक अधिक उपयोगी और रोचक हुई होती। पर २-४ स्थलों को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी उन शिक्षाओं का समावेश नहीं किया जा सका है।

इन समस्त त्रुटियों के होने में समय एवं स्वास्थ्य की कमी के अतिरिक्त एक प्रमुख कारण यह रहा है कि इस ग्रन्थ का कलेवर इतना ही बड़ा रखना था जो एतदर्थ प्राप्त सहायता से प्रकाशित हो जाय। पर इसमें हमारे सहायकों का कोई दोष नहीं। क्योंकि हमने इस पुस्तक के प्रकाशन में पाँच हजार रुपयों की ही सहायता की माँग की थी जिसकी पूर्ति होने में तो कोई बिलम्ब नहीं हुआ बल्कि हमारे स्वास्थ्य की कमी के कारण पुस्तक के प्रकाशन में मेरी ओर से अवश्य विलम्ब हो गया जिसके लिए मैं अपने सहायकों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

ऊपर मैंने जिन त्रुटियों की चर्चा की है उनके कारण मुझे बहुत असन्तोष है और मेरी यह प्रबल इच्छा है कि इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में उपर्युक्त सभी त्रुटियों का निराकरण हो जाय और यह पुस्तक अपने विषय की सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक के रूप में पुनः प्रकाशित हो और भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए मार्गदर्शन का काम करे।

कृतज्ञता प्रकाश

अन्त में हम उन सज्जनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं जिनके सहयोग से इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका। इस प्रसंग में सर्वप्रथम हम अपने परम हितैषी श्री सोहनलालजी झँवर एम० ए० (संस्कृत) तथा उनके अग्रज कलकत्ता के सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्री बद्रीनारायणजी झँवर के नाम का उल्लेख करना चाहते हैं जिन्होंने कलकत्ता के एक ऐसे सत्पुरुष से मेरा परिचय कराया जिनके प्रयत्न से इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ सहायता प्राप्त हो सकी। वे सत्पुरुष हैं कलकत्ता के सुप्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी, आदर्शचरित, सौजन्य एवं विनय के मूर्ति, स्वनामधन्य पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया। श्री झँवरजी के साथ जब मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार हुआ और मैंने उनसे इस प्रकार की एक पुस्तक के सम्पादन तथा प्रकाशन की आवश्यकता के सम्बन्ध में चर्चा की तो उन्होंने इसे बहुत ध्यानपूर्वक सुना, उसका हृदय से समर्थन किया तथा इसके प्रकाशनार्थ स्वयं सहायता करने तथा दूसरों से भी सहायता दिलाने का आश्वासन दिया। उन दिनों उनके अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण सहायता संग्रह का तत्काल कोई काम न हो सका और मैं श्री झँवरजी को यह कार्यभार सौंप कर वाराणसी चला आया। तत्पश्चात् श्री सेकसरियाजी की योजना और श्री झँवरजी के प्रयत्न से जिन संस्कृत और संस्कृति के प्रेमी उदारचेता महानुभावों ने आर्थिक सहायता की उनके नाम तथा सहायता का उल्लेख निम्नांकित पंक्तियों में किया जा रहा है। हम इन महानुभावों के अत्यन्त आभारी हैं, उनके प्रति अनेकशः हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करते हैं और आशा करते हैं कि वे आगे भी अपने अमूल्य सहयोग से कार्यालय को उपकृत करते रहेंगे।

गुरुपूर्णिमा २०३५ वि० — विनम्र

२०-७-१९७८ ई० — सम्पादक

सहायकों की शुभ नामावली

१. श्री सीतारामजी सेकसरिया १६, लार्ड सिनहा रोड
कलकत्ता १६ ५००.००

२. श्री रामकुमारजी भुवालका तोष हाउस, पी० ३२।३३,
इण्डिया एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता १ १०००.००

३. श्री भागीरथजी कानोडिया १०, शरतचटर्जी एवेन्यू
कलकत्ता २९ ५००.००

४. श्री नथमलजी भुवालका ९।१, ९।२, मिडिल्टन रोड
कलकत्ता १६ ५००.००

५. श्री नागरमलजी पेडीवाल ३६, सादर्न एवेन्यू
कलकत्ता २९ ५००.००

६. श्री राधाकिशनजी कानोडिया २३, ओल्ड बालीगंज रोड
कलकत्ता १९ ५००.००

७. श्री जुगलकिशोरजी माहेश्वरी २१, चितरंजन एवेन्यू
कलकत्ता १३ ५००.००

८. श्री किशोरीलालजी ढंढनिया ४, मिडिल्टन स्ट्रीट
कलकत्ता १६ २००.००

९. श्री बद्रीनारायण झँवर ३, राजा गोपेन्द्र स्ट्रीट
कलकत्ता ५ ५००.००

विषय-सूची

व्यवहार-खण्ड

* इस प्रकरण की अन्तिम ४ शिक्षाएँ "स्त्रीजाति के प्रति व्यवहार" नामक प्रकरण की हैं जो भूल से इस प्रकरण में छप गयी हैं। कृपया पाठक इसे ध्यान में रखेंगे।

परिशिष्ट

भारतीय–

आचार-व्यवहार

सदाचार और उसका महत्त्व

सदाचार शब्द का अर्थ :

साधवः क्षीणदोषाः स्युः सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ॥[1]

सत् शब्द का अर्थ है साधु और साधु उन पुरुषों को कहते हैं जो दोषों से रहित हों। ऐसे सत् पुरुषों का अर्थात् साधु पुरुषों का, सज्जनों का, जो आचरण होता है उसे सदाचार कहते हैं।

सदाचार पालन की आवश्यकता :

श्रुति-स्मृत्युदितं सम्यग् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥[2]

श्रुतियों (वेदों) तथा स्मृतियों (धर्मशास्त्रों) में जो सदाचार के नियम कहे गये हैं उनका मनुष्य के अपने समस्त कर्तव्यों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा वे धर्म के मूलभूत हैं अर्थात् धर्म का महान् प्रासाद सदाचारों की ही मूलभित्ति पर स्थापित किया गया है। अतः आलस्यहीन होकर, सावधानी से, उन समस्त नियमों का सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिए।

---

१. विष्णुपुराण ३.१०.३ ।

२. मनुस्मृति अ० ४.१५५ ।

सदाचार पालन से लाभ :

आचाराल्लभते ह्यायुः आचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यम् आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥[३]

सदाचार के पालन से मनुष्य दीर्घायु होता है, सदाचार के पालन से मनुष्य को उत्तम सन्तति प्राप्त होती है, सदाचार के पालन से मनुष्य अक्षय धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है तथा सदाचार ऐसा गुण है जो मनुष्य के समस्त दोषों और दुर्लक्षणों को नष्ट कर देता है ।

आचारः स्वर्गजनन आचारः कीर्तिवर्धनः ।
आचारश्च तथाऽयुष्यो धन्यो लोकसुखावहः ॥[४]

सदाचार से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, सदाचार मनुष्य का यश बढ़ाता है, सदाचार आयुवर्धक तथा धनवर्धक होता है और सदाचार के पालन से मनुष्य को लोक में सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है।

सदाचार के उल्लंघन से हानि :

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥[५]

जो मनुष्य दुराचारी होता है—सदाचार का पालन नहीं करता—उसकी समाज में सर्वत्र निन्दा होती है। वह सर्वदा दुख भोगता रहता है, कभी नीरोग नहीं रहता तथा अल्पायु होता है।

३. मनुस्मृति अ० १५६ ।
४. विष्णुधर्मोत्तर पुराण २७१.१ ।
५. मनुस्मृति अ० ४.१५७ ।

सदाचारी पुरुष के ही धार्मिक कार्य कल्याणसाधक होते हैं :

यज्ञ-दान-तपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लंघ्य प्रवर्तते ।।६

जो मनुष्य सदाचार के नियमों का उल्लंघन कर मनमाने ढंग से जीवन व्यतीत करता है वह यदि यज्ञ, दान तथा तप आदि भी करे तो भी उसके ये कर्म उसके लिए कभी कल्याणसाधक नहीं होते।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ।।७

सदाचारहीन मनुष्य यदि छहो अङ्गोंकेसाथ समस्त वेदोंका अध्ययन कर चुका हो तथापि वह पवित्र और पुण्यात्मा नहीं माना जा सकता। उस पुरुष की मृत्यु के समय उसके सारे पढ़े हुए वेदमन्त्र उसे उसी प्रकार छोड़ देते हैं जैसे पंख हो जाने पर पक्षी अपने घोसले को छोड़ देते हैं।

सदाचार से दोनों लोकों का साधन :

सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि ।।८

जो लोग सदाचार का पालन करते हैं वे दोनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

आचाररक्षा सम्पत्तिरक्षा से भी महत्त्वपूर्ण :

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।।९

६. पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ।
७. वसिष्ठ स्मृति ६.३ ।
८. विष्णुपुराण ३.११.२ ।
९. महाभारत, उद्योग, ३६.३० ।

धन और आचरण में मनुष्य को सबसे अधिक ध्यान अपने आचरण की रक्षा पर देना चाहिए, धन की रक्षा पर नहीं। क्योंकि धन तो आता-जाता रहता है। धन के नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य का बहुत कुछ बचा रहता है परन्तु आचरण के नष्ट हो जाने पर उसका सब कुछ चला जाता है।

आचरणहीन कुल की कीर्ति और उन्नति नहीं होती :

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥
वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्‌यशः॥
गोभिरश्वैश्च पुरुषैः कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥[१०]

जो कुल गायों से, पुरुषों से तथा धन-दौलत से समृद्ध होने पर भी आचरण से हीन होते हैं उनकी गणना कुलों में नहीं होती। इसके विपरीत जो कुल धनहीन होने पर भी आचरण से सम्पन्न होते हैं उनकी गणना कुलों में होती है और वे बड़े यशस्वी भी होते हैं। गायें, घोड़े और पुरुष कितने ही क्यों न हो और खेती भी कितनी ही बड़ी क्यों न हो पर यदि कुल में आचरण का पालन नहीं तो वे कुल आगे नहीं बढ़ पाते, उनका विकास नहीं होता।

प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण :

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिव॥[११]

---

१०. महाभारत, उद्योगपर्व ३६.२८.२९.३१।

११. गृहस्थरत्नाकर।

प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन अपने चरित्र पर, आचरण पर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि आज मेरा कौन-सा आचरण पशुओं के समान था और कौन-सा सत्पुरुषों के समान।

नक्तं दिनानि मे यान्ति कथंभूतस्य सम्प्रति।
दुःखभाङ् न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः ॥१२

मेरा दिन और रात का समय आजकल कैसा बीत रहा है, पाप से या पुण्य से? इस बात का नित्य ही चिन्तन करते रहना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसे दुःख नहीं झेलना पड़ता।

प्रवृत्तियों को सदाचार की ओर मोड़ना चाहिए :

'शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि॥
अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत् ॥१३

मनुष्य की वासनारूपी नदी दोनों मार्गों से बहती है—शुभ मार्ग से भी और अशुभ मार्ग से भी। ऐसी स्थिति में मनुष्य को चाहिए कि वह पुरुषोचित प्रयत्न से अपनी वासना को—प्रवृत्ति को अशुभ मार्ग की ओर से मोड़ कर शुभ मार्ग की ओर ही चलाने अर्थात् सदाचार की ओर ही प्रवृत्त करने का प्रयत्न करे।

समाज में सदाचाररक्षा का उत्तरदायित्व समाज के श्रेष्ठ पुरुषों पर हो :

'यद् यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥१४

---

१२. शुक्रनीति ३.३५।

१३. मुक्तिकोपनिषद् २.५-६।

१४. भगवद्गीता ३.२१।

समाज के श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करते हैं वैसा ही आचरण समाज के साधारण लोग भी किया करते हैं। वे जिस बात को अपने आचरण द्वारा प्रमाणित कर देते हैं उसीका सामान्यजन भी अनुसरण करते हैं।

ये काम-क्रोध-लोभानां वीतरागा न गोचरे।
सदाचारे स्थितास्तेषाम् अनुभावैर्धृता मही ॥[१५]

जो वीतराग पुरुष काम, क्रोध और लोभ आदि दोषों के कभी वशीभूत नहीं होते तथा सदा सदाचार के पवित्र पथ पर चलते हैं उन्हीं के प्रभाव से पृथ्वी टिकी हुई रहती है।

---

१५. विष्णुपुराण ३.१२.४२।

आचार-खण्ड

१. दिन-रात्रि-चर्या

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी सदा ।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत् ।।१

जिस प्रकार नगर का स्वामी नगरके तथा रथ का स्वामी रथ के कार्यों में अर्थात् इनके सुरक्षासम्वन्धी कर्त्तव्यों में सदा सावधान रहता है उसी प्रकार प्रत्येक बुद्धिमान पुरुष को अपने शरीर-सम्बन्धी दिन-रात के कर्त्तव्यों के पालन में सदा सावधान रहना चाहिए ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनञ्च यत् ।
महता तत् प्रयत्नेन शरीरमिह पालयेत् ।।२

शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि समस्त पुरुषार्थों का साधन हैं अतः प्रत्येक शरीरधारी को चाहिए कि वह बड़े प्रयत्न से, खूब सावधानी से अपने शरीर को समुचित आहार-विहार आदि के द्वारा सुरक्षित और स्वस्थ रक्खे ।

न कार्यव्यासङ्गेन शारीरं कर्म उपहन्यात् ।३

अन्य कर्मों में फँस कर अपने शारीरिक नित्यकर्म का परित्याग या उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

---

१. चरकसंहिता सूत्र ५.१०२ ।

२, स्मृतिसंग्रह ।

३. नीतिवाक्यामृत २५.८ ।

प्रातः जागरण तथा शौचादिकृत्य :

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ।।४

ब्राह्म मुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय होने से लगभग दो-ढाई घण्टे पूर्व जागना चाहिए। सूर्योदय के समय तक सोते रहना स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है।

जाग कर धर्म एवं अर्थसम्बन्धी अपने समस्त दैनिक कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में सोचना-विचारना तथा निश्चय करना चाहिए।

अपने धर्म-अर्थ-सम्बन्धी कार्यों के करने में शरीर को जो कष्ट अथवा श्रम करना पड़ेगा उसका भी विचार करना चाहिए। ऐसे किसी काम के करने का निश्चय नहीं करना चाहिए जिससे शक्ति के बाहर शरीर को कष्ट उठाना पड़े।

उसी समय भगवान् का भी स्मरण-चिन्तन करना चाहिए। (प्रातः स्मरण के श्लोक परिशिष्ट में देखिये)

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् जीर्णाजीर्णं निरूपयन् ।५

ब्राह्म मूहूर्त में उठते समय जीर्ण-अजीर्ण का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि ठीक तरह से अन्न का पाचन न हुआ हो तो स्वास्थ्य की दृष्टि से सूर्योदय से बहुत पहले शय्या त्याग करना ठीक नहीं होता।

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ।
आचार्यमथवाऽप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् ।।६

---

४. मनुस्मृति ४.९२ ।

५. अष्टाङ्गसंग्रह सू० ३.१ ।

६. महाभारत अनु० १०४.४३ ।

प्रात:काल उठ कर माता, पिता, आचार्य तथा अन्य भी जो श्रेष्ठ पुरुष हों उनको प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से जो प्रणाम करता है उसकी आयु बढ़ती है।

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च समाचरेत् ।७
ततः प्रातः समुत्थाय कुर्याद्विण्मूत्रमेव च।
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपाद् अतीत्याऽभ्यधिकं भुवः ।।८

अपने निवासस्थान से दूरी पर जाकर मल और मूत्र का परित्याग करना चाहिए। सामान्य रूप से फेंका हुआ तीर जितनी दूरी पर जाकर गिरता है उससे कुछ अधिक आगे बढ़ कर शौच होना चाहिए। केवल पेशाब करना हो तो इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं। (यह नियम ग्रामीण क्षेत्र के लिए है)

कुर्यात् मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः ।९

साफ-सुथरे स्थान पर, सम्हल कर, पेशाब और पैखाना करना चाहिए। (अतः घर के शौचालय को सदा साफ रखना चाहिए)

शौचार्थं विलम्बं न कुर्यात् ।१०

शौच जाने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात् ।११

पेशाब-पैखाना आदि का वेग लगने पर, उसे रोक कर, दूसरा काम नहीं करना चाहिए।

७-८. विष्णुपुराण अ० ३, अ० ११.८-९।

९. अङ्गिरा स्मृति।

१०. आह्निकसूत्रावलि।

११. अष्टाङ्गसंग्रह० सूत्र०, ३.५।

न वेगान् ईरयेद् बलात् ।१२

मूत्र-पुरीष आदि के वेगों को बलपूर्वक प्रेरित नहीं करना चाहिएं ।

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥
न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥
न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न पर्वतमस्तके ॥१३

रास्ते पर, राख पर, गौओं के रहने के स्थान में, जुते हुए खेत में, जल में, होम करने के वेदी और चबूतरे पर, पर्वत पर, पुराने मन्दिर आदि देवस्थान में, बाँबी पर, ऐसे बिलों के पास, जिनमें किसी कीड़े आदि के रहने की आशंका हो, नदी और तालाब आदि के किनारे तथा पर्वत की चोटी पर मल-मूत्र का परित्याग नहीं करना चाहिए ।

चलते हुए पेशाब-पैखाना नहीं होना चाहिए ।

खड़े-खड़े भी पेशाब-पैखाना नहीं होना चाहिए ।

पथिकविश्रान्त्युपयोगिच्छायायां न विसृजेत् ।१४

जिस वृक्ष की छाया पथिकजनों के विश्राम करने योग्य हो उस वृक्ष के नीचे मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।

जनस्य सम्मुखे नैव ।१५

किसी स्त्री-पुरुष के सामने पेशाब-पैखाना नहीं होना चाहिए ।

---

१२. अष्टाङ्गहृदय २, १९ ।

१३. मनुस्मृति अ० ४, ४५-४७ ।

१४. हिरण्यकेशिगृह्यशेषसूत्र प० १, २ ।

१५. बृहद्धर्मपुराण उत्तर० ५, १५ ।

तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र ।[१६]

पेशाब-पैखाने के स्थान पर बहुत देर तक नहीं ठहरना चाहिए।

न वा किञ्चिदुदीरयेत् ।[१७]

पेशाब करते समय अथवा पैखाना होते समय बोलना नहीं चाहिए।

उद्धृत्यैव जलं पूर्वं कुर्यान्मूत्रपुरीषके ।[१८]

जल पहले ही लेकर पेशाब और पैखाना होने जाना चाहिए।

मूत्रोच्चारे कृते शौचं न स्यादन्तर्जलाशये ।[१९]

पेशाब-पैखाना होने के पश्चात् किसी जलाशय (नदी, तालाब आदि) के भीतर जाकर पानी नहीं छूना चाहिए।

अथो मृदं समादद्यात् जन्तुकर्करवर्जिताम् ।
विहाय मूषकोत्खातां चोच्छिष्टां केशसंकुलाम् ॥[२०]

पेशाब-पैखाना होने के पश्चात् हाथ-पैर माँजने के लिए ऐसी मिट्टी लेनी चाहिए जिसमें कीड़े न हों, जो कँकरीली न हो, चूहों द्वारा खनी हुई न हो, जूठी न हो (अर्थात् दूसरे के काम से बची हुई न हो) तथा जिसमें केश न पड़े हों।

गन्धलेपावसानं शौचं कुर्यात् ।[२१]

जितनी बार लगाने से हाथ का दुर्गन्ध या मलांश दूर हो जाय उतनी बार मिट्टी या साबुन आदि लगा कर हाथ धोना चाहिए।

१६-१७. विष्णुपुराण ३.११.१४।

१८. पैठीनसि।

१९. देवल।

२०. आह्निकसूत्रावलि।

२१. नीतिवाक्यामृत २५.१२।

यस्मिन् स्थाने कृतं शौचं वारिणा तत्तु शोधयेत् ।२२

जिस स्थान पर बैठ कर मिट्टी-पानी से हाथ-पैर धोया जाय उस स्थान को पीछे पानी से साफ कर देना चाहिए।

मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वोल्लेखनिका तथा ।।२३

मुँह के बासी हो जाने पर मनुष्य बराबर अपवित्र रहता है अर्थात् उसके मुँह से बराबर दुर्गन्धि आती रहती है अतः दाँतन तथा जीभी का प्रयोग प्रतिदिन करना आवश्यक है।

भक्षयेद् दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।
कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलम् ऋज्वग्रन्थि तथाऽव्रणम् ।।२४

दातुन ऐसा करना चाहिए जो बारह अंगुल लम्बा हो, कनिष्ठिका अँगुली के समान मोटा हो, सीधा हो, तथा जिसमें गाँठ और किसी प्रकार का व्रण न हो।

एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन तु ।
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ।।२५

दातुन के कूचे को मुलायम बना कर उससे एक-एक दाँत को रगड़ना चाहिए। दाँतों की सफाई के लिए दन्तमंजन का भी प्रयोग करना चाहिए। दातुन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दातुन से कहीं मसूढ़ों पर चोट न आवे।

---

२२. आह्निकसूत्रावलि।

२३. अत्रिस्मृति।

२४-२५. स्वस्थ पुरुष।

जिह्वा-निर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा।
पाटितं मृदु तत् काष्ठं मृतपत्रमयं तथा॥
दशांगुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत् सुखम्॥२६

जीभ की सफाई के लिए सोने की, चाँदी की अथवा तामे की जीभी रखनी चाहिए, इसके अभाव में दातुन को चीर कर उसके टुकड़ों से जीभी करनी चाहिए जो दश अंगुल की हो, मुलायम हो तथा चिकनी हो। जीभ को क्लेश न देते हुए खूब मुलायमी के साथ जीभी करनी चाहिए।

प्रक्षाल्य भक्षयेत् काष्ठं प्रक्षाल्यैव विसर्जयेत्।२७

दातुन धोकर के करना चाहिए और धोकर ही उसे फेंकना भी चाहिए।

अभ्यङ्गं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम्।
शिरः-श्रवण-पादेषु तं विशेषेण शीलयेत्॥२८

तेल लगाने से सभी अंग पुष्ट होते हैं इसलिए सर्वदा तेल का उपयोग करना चाहिए तथा और अंगों की अपेक्षा शिर, कान तथा पैर में तेल का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए।

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुम्भिरात्महितैषिभिः।
बलस्यार्धेन कर्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा॥२९

जो पुरुष अपना हित चाहते हों उन्हें सभी ऋतुओं में प्रतिदिन अपने बल के आधे भाग से व्यायाम करना चाहिए। इसके

---

२६. स्वस्थ पुरुष।

२७-२८. स्वस्थ पुरुष, मार्कण्डेयस्मृति।

२९. सुश्रुत संहिता अ० ७।

विपरीत पूरा वल लगा कर व्यायाम करने से शरीर को हानि पहुँचती है।

वयो - वल - शरीराणि देश - कालाशनानि च।
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायामम् अन्यथा रोगमाप्नुयात् ॥[३०]

अपनी अवस्था, वल, शरीर, देश, काल तथा भोजन इन सब बातों का विचार करके व्यायाम करना चाहिए। अन्यथा रोग उत्पन्न होते हैं।

स्नान तथा सन्ध्यावन्दन आदि :

नित्यस्नायी स्यात्।[३१]

प्रतिदिन स्नान करना चाहिए।

गङ्गादिपुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु संस्मरेत्।[३२]

यदि कूआँ तालाब आदि कृत्रिम जलाशयों में स्नान करना हो तो स्नान करते समय गंगा आदि पवित्र नदियों का स्मरण कर लेना चाहिए। (स्मरण के मन्त्र परिशिष्ट में देखिये)।

न आतुरो, न भुक्त्वा, न जीर्णवासा, न नग्नो,
न अश्नत्, न अवसक्थिको, न अलंकृतो, न अजस्रम्,
न अज्ञाते जले, न आकुले, न अशुचौ, न प्रभूतजले,
न नाभेरल्पे, न चत्वरे, न उपद्वारे, न सन्ध्यायां,
न निशायां स्नायात्।[३३]

रोग की अवस्था में, भोजन करके, फटा कपड़ा पहन कर, नग्न

---

३०. चरकसंहिता।

३१. विष्णुस्मृति ६४.३६।

३२. बृहत्पराशरसंहिता २.१२६।

३३. हारीतस्मृति।

होकर, भोजन करते हुए, अवसक्थिक होकर तथा भूषण-वस्त्र आदि पहने हुए स्नान नहीं करना चाहिए ।

बार-बार स्नान नहीं करना चाहिए ।

अज्ञात जल में, लकड़ी तिनका आदि से भरे हुए गन्दे जल में, अपवित्र जल में, अथाह जल में तथा नाभि से कम जल में स्नान नहीं करना चाहिए ।

देवी-देवता के चबूतरे पर तथा दरवाजे के समीप स्नान नहीं करना चाहिए । सन्ध्या समय तथा रात में स्नान नहीं करना चाहिए ।

न अविगतक्लमो न अनाप्लुतवदनो नग्न उपस्पृशेत् ।[३४]

यदि स्नान के पूर्व किसी प्रकार का परिश्रम किया गया हो तो बिना उसकी थकावट दूर हुए, स्नान के पूर्व बिना मुँह और शिर धोये तथा बिलकुल नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए ।

न जलोग्रवेगम् अवगाहेत ।[३५]

जो पानी बहुत उग्र वेग से बहता हो उसमें स्नान नहीं करना चाहिए ।

न उदके चिरं स्नायात् ।[३६]

पानी में बहुत देर तक स्नान नहीं करते रहना चाहिए ।

अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ।
आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः ॥[३७]

यदि रोग आदि के कारण पूरा स्नान करना असम्भव हो तो

३४-३५. चरकसंहिता सू०, अ० ८ ।

३६. पैठीनसि ।

३७. आह्निकसूत्रावलि, जाबालिवचनम् ।

शिरोवर्जित स्नान करना चाहिए अथवा गीले वस्त्र से शरीर को पोंछ लेना चाहिए।

"आपो हि ष्ठा" दिभिर्मन्त्रैः ॥३८

यदि किसी प्रकार जल का स्पर्श करना असम्भव हो तो "आपो हि ष्ठा" इत्यादि (परिशिष्टोक्त) मन्त्रों से मन्त्रस्नान कर लेना चाहिए।

स्नानस्यानन्तरं सम्यक् वस्त्रेण तनुमार्जनम् ।
कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोषनाशनम् ॥३९

स्नान के पश्चात् अगौंछी, तौलिया आदि से शरीर को अच्छी तरह पोंछ और साफ कर देना चाहिए। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है और खुजली आदि त्वचा के सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

न केशाग्राणि अभिहन्यात् ।४०

स्नान के पश्चात् सुखाने के लिए केशों को बहुत जोर से झटका नहीं मारना चाहिए।

उदकस्याप्रदानाच्च स्नानशाटीं न पीडयेत् ।४१

स्नानके पश्चात् बिना पूरा पानी दिये वस्त्रको नहीं धोना चाहिए।

न अप्रक्षालितं पूर्वधृतं वसनं बिभृयात् ।४२

जब तक पहले का पहना हुआ वस्त्र धोया हुआ न हो तब तक उसे पुनः नहीं पहनना चाहिए।

---

३८. लघ्वाश्वलायनस्मृति प्र० १.२३।

३९. स्वस्थ्य पुरुष।

४०. चरकसंहिता सूत्र अ० ८।

४१. शंखस्मृति १.१५।

४२. विष्णुस्मृति ६४.१३।

आचम्य प्रयतो नित्यं उभे सन्ध्ये समाहितः ।
शुभे देशे जपन् जप्यम् उपासीत यथाविधि ।।४३

स्नान करने के पश्चात् आचमन करके तथा शुद्ध एवं स्थिर होकर पवित्र स्थान में जप करते हुए विधिपूर्वक दोनों समय सन्ध्या करनी चाहिए।

जो लोग सन्ध्या करने में असमर्थ हों उन्हें भी अपनी योग्यता और अवकाश के अनुसार स्तुति-प्रार्थना, पूजा, पाठ, जप, हवन आदि के द्वारा कुछ न कुछ और कोई न कोई उपासना प्रतिदिन अवश्य करनी चाहिए। यह कार्य स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है।

न चंक्रमन् न विहसन् न पार्श्वमवलोकयन् ।
नापाश्रितो न जल्पंश्च न प्रावृतशिरास्तथा ।।
न पदा पादमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ ।
न वाऽसमाहितमनाः न च संश्रावयन् जपेत् ।।४४

घूमते हुए, हँसते हुए, इधर-उधर ताकते हुए, बात-चीत करते हुए, चारो ओर से सिर ढक कर, पैर से पैर तथा हाथ से हाथ दबा कर, असावधान होकर तथा दूसरों को सुनाते हुए अर्थात् ऊँचे स्वर से मन्त्रों का जप नहीं करना चाहिए।

परभाषां नीचकथां अशुचिस्पर्शनं तथा ।
पूजासनपरित्यागं असमाप्ते सुरार्चने ।।
क्रोधं हिंसां च पैशुन्यं चित्तचाञ्चल्यमेव च ।
अहं त्वञ्च ममेत्यादिबुद्धिं शोकं भयं तथा ।।

४३. मनुस्मृति अ० २.२२२।

४४. योगियाज्ञवल्क्य अ० ८, १३१.१३२।

त्वरां च विषये चिन्तां वर्जयेत् पूजको जनः ।।४५

दूसरों से बात-चीत करना, नीच पुरुषों की कथा कहना, अपवित्र वस्तु का स्पर्श करना, पूजा बिना समाप्त किये ही पूजा का आसन छोड़ कर इधर-उधर जाना, क्रोध करना, हिंसा करना, चुगुली करना, चित्त को चञ्चल करना, "हम तुम हमारा" आदि भेदबुद्धि रखना, शोक करना, भय करना, त्वरा (जल्दीबाजी) करना तथा विषयों की चिन्ता करना आदि सब बातों का पूजा-पाठ करने वाले पुरुष को परित्याग करना चाहिए।

जप्ये भोजनकाले च पादुके परिवर्जयेत् ।४६

जप तथा पूजा-पाठ आदि और भोजन करते समय खड़ाऊँ नहीं पहनना चाहिए।

न जप-होमाऽध्ययन-मङ्गल-क्रियासु श्लेष्मसिङ्घाणकं मुञ्चेत् ।४७

जप, हवन, अध्ययन तथा अन्यान्य मंगलकार्य करते समय वहाँ थूक, खखार तथा नाक का छिड़कन आदि नहीं फेकना चाहिए।

राष्ट्रक्षोभे नृपक्षोभे रोगार्तौ भय आगते।
देवाग्नि-द्विज-भूपानां कार्ये महति चागते।
सन्ध्याहानौ न दोषोऽस्ति यतस्तत्पुण्यसाधनम् ।।४८

राष्ट्र और राजा के ऊपर संकट आने पर, रोग से पीड़ित होने पर, भय उत्पन्न होने पर तथा देवता, अग्नि, ब्राह्मण एवं शासनसम्बन्धी

४५. वृहद्धर्मपुराण पूर्वखण्ड ५७।
४६. वृहस्पति।
४७. चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८।
४८. आचारभूषण जमदग्नि।

किसी महान् कार्य के उपस्थित हो जाने पर यदि सन्ध्यावन्दन करने का अवसर न मिल सके तो इसका दोष नहीं लगता। क्योंकि ऐसे अवसरों पर सन्ध्या का छोड़ देना पुण्य का ही साधक होता है।

भोजन विश्राम आदि :

सायं प्रातर्मनुष्याणां अशनं वेदनिर्मितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्याद् उपवासी तथा भवेत्॥[क]

मनुष्यों के लिए भोजन करने हेतु सायं और प्रातः (पूर्वाह्न) ये दो समय ही वेदों द्वारा निर्धारित हैं। इनके बीच में भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उपवास जैसा ही फल होता है।

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ
विशुद्धे चोद्‌गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथाऽन्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥[ख]

मल-मूत्र का त्याग कर लेने के बाद, इन्द्रियों के स्वच्छ होने, देह के खूब हलका होने, हृदय के निर्मल होने, वायु के अनुलोम होने, अन्न खाने की श्रद्धा होने, भूख लगने तथा पेट के ढीला होने पर आहार लेना चाहिए। यही समय आहार के लिए वैद्यों द्वारा कहा गया है।

पथ्यं मितं च शुद्धं च रस्यं हृदयनन्दनम्।
स्निग्धं दृष्टिप्रियं चोष्णं अन्नं भोज्यं सदा नरैः॥[ग]

(क) महाभारत, शान्ति० १७३.१०।

(ख) सुश्रुत संहिता, उत्तर० ६४.८४।

(ग) शाण्डिल्यस्मृति ४.१४३।

मनुष्यों को सदा ऐसा ही भोजन करना चाहिए जो पथ्य हो, अर्थात् हितकर हो, न मात्रा से अधिक हो न कम हो, शुद्ध हो, रसयुक्त हो, हृदय को आनन्दित करने वाला हो, स्निग्ध अर्थात् घी, दूध, दही आदि स्नेहमय पदार्थों से युक्त हो, देखने में प्रिय हो तथा गर्म हो।

न अस्नातः ।४९*

बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिए।

न दिग्वासाः ।५०

विना कपड़ा पहने भोजन नहीं करना चाहिए।

न एकवस्त्रधृक् ।५१

केवल एक वस्त्र पहन कर भोजन नहीं करना चाहिए।

न मलिनवसनः ।५२

गन्दा कपड़ा पहन कर भोजन नहीं करना चाहिए।

न अहुत्वा ।५३

बिना हवन किये भोजन नहीं करना चाहिए।

न अजपित्वा ।५४

बिना जप किये भोजन नहीं करना चाहिए।

न अनिरूप्य देवताभ्यो न पितृभ्यः ।५५

४९-८४. अष्टांगसंग्रह अ. १०।

*परन्तु अस्वास्थ्य या विशेष परिस्थितियों में स्नान के पूर्व भी कुछ वस्तुएँ ग्राह्य हो सकती हैं। यथा—

इक्षुरापः पयो मूलं फलं ताम्बूलभक्षणम्।
भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ।।

ईख, पानी, दूध, मूल, फल एवं ताम्बूल खाकर भी स्नान-दान आदि क्रियाएँ की जा सकती हैं।

बिना देवता और पितरों को अन्न दिये अर्थात् बिना बलिवैश्वदेव (परिशिष्टोक्त) किये भोजन नहीं करना चाहिए।

न दत्त्वा अग्रमन्नमग्नये ।५६

बिना पहले अग्नि में आहुति किये भोजन नहीं करना चाहिए।

न दत्त्वा गुरुभ्यो न अतिथये न अभ्यागतेभ्यो न श्व-वयः-श्वपचेभ्यः ।५७

गुरुजन, अतिथि, अभ्यागत, कुत्ता, पक्षी तथा श्वपच इनको बिना भोजन कराये भोजन नहीं करना चाहिए।

प्रत्यवेक्ष्य चाश्रितोपाश्रितानपि तिरश्चोऽपि स्वपरि-गृहीतान् ।५८

अपने आश्रित (आश्रय में रहने वाले नौकर-चाकर आदि) उपाश्रित (आश्रितों के आश्रित) तथा घर में पोसे-पाले हुए पशु-पक्षियों को देखकर अर्थात् "इन्हें भोजन मिला या नहीं" इसका निरीक्षण करके भोजन करना चाहिए।

प्रशस्त-देशकालोपकरण-युक्तः ।५९

पवित्र तथा सुन्दर स्थान में भोजन करना चाहिए।

उचित समय में भोजन करना चाहिए अर्थात् न बहुत बिलम्ब करके और न बहुत जल्दी। स्वच्छ तथा पवित्र उपकरणों (पात्र आदि) से युक्त होकर भोजन करना चाहिए।

स्रग्वी विभूषितः सुगन्धिः ।६०

माला पहन कर, मणि-मुक्ता तथा सुवर्ण आदि का भूषण पहन कर तथा सुगन्धित पदार्थों को धारणकर भोजन करना चाहिए। माला पहनने से चित्त प्रसन्न रहता है, मणि-सुवर्ण आदि के धारण से शरीर में तेज

बढ़ता है और सुगन्धित पदार्थों के धारण से दुर्गन्ध का नाश होकर मन में प्रसन्नता आती है और इन सबका भोजन करने में बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसलिए शास्त्रों में विशेष कर आयुर्वेद के ग्रन्थों में ऐसा विधान किया गया है।

आर्द्रपाणिपादः ।६१

हाथ और पैर धोकर भोजन करना चाहिए।

सुविशुद्धवदनः ।६२

कुल्ला आदि द्वारा मुख को अच्छी तरह साफ करके भोजन करना चाहिए।

अभिमतसहायः ।६३

अपने अनूकूल और आज्ञाकारी सहायक हों तो भोजन करना चाहिए। अर्थात् आसन, जल, भोजन आदि देने और परोसने वाले लोग अपने मनोनुकूल होने चाहिए।

केशमक्षिकाद्यनुपजुष्टम् ।६४

ऐसा अन्न खाना चाहिए जिसमें केश तथा मक्खी आदि न पड़ा हो।

अनिन्द्यम् ।६५

ऐसे अन्न का भोजन करना चाहिए जो निन्दनीय न हो।

अनिन्दितम् ।६६

ऐसे अन्न का भोजन नहीं करना चाहिए जिसकी किसी ने निन्दा न की हो।

अपुनरुष्णीकृतम् ।६७

जो अन्न एक बार ठण्ढा पड़ने के पश्चात् पुनः आग पर गर्माया गया हो उसका भोजन नहीं करना चाहिए।

न अत्युष्णम् ।

बहुत गर्म अन्न का भोजन नहीं करना चाहिए।

अनुपदग्धम् ।६८

जले हुए अन्न का भोजन नहीं करना चाहिए।

सुसिद्धम् ।६९

जो अन्न अच्छी तरह सिद्ध हो गया हो, पक गया हो उसे ही खाना चाहिए।

न असात्म्यम् ।७०

असुखकर भोजन नहीं करना चाहिए।

न अविदितम् ।७१

अज्ञात अन्न का भोजन नहीं करना चाहिए।

न अविदितागमम् ।७२

जिस अन्न के आगम अर्थात् प्राप्ति के विषय में कुछ न मालूम हो उसका ग्रहण नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जो अन्न खाया जाय उसके विषय में यह भी जानना आवश्यक है कि वह न्याय से उपार्जित है अथवा अन्याय से।

न अतिसायं न अतिप्रगे ।७३

न बहुत रात में भोजन करना चाहिए न बहुत सबेरे।

न आतपे न अन्धकारे न अधो वृक्षस्य ।७४

न धूप में, न अन्धकार में और न वृक्ष के नीचे भोजन करना चाहिए।

न अनिन्दन् ।७५

आगे परोसे हुए अन्न की निन्दा करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

न शय्यास्थः ।७६

खाट-पलंग आदि पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए।

अलोलः ।७७

चंचलता के साथ भोजन नहीं करना चाहिए। शान्त और धीर होकर भोजन करना चाहिए।

न उन्नम्य प्रदेशिनीम् ।७८

प्रदेशिनी अर्थात् तर्जनी अंगुली को उठा कर भोजन नहीं करना चाहिए। बहुत लोगों की ऐसी आदत होती है कि वे भोजन करते समय एक तर्जनी अंगुली को अलग करके भोजन करते हैं पर यह अच्छा नहीं है।

न पात्रे भिन्ने, न असंवृते, न मलिने, भावदूषिते वा न चासनस्थिते न हस्तस्थे ।७९

जो पात्र टूटा-फूटा हो, जिसमें चारों ओर से परोसे हुए अन्न के अड़ने लायक बारी न हो, जो गन्दा हो तथा शुद्ध होते हुए भी जिसमें चित्त को प्रसन्नता न हो उसमें भोजन नहीं करना चाहिए।

भोजन के पात्र को खाट-पलंग आदि आसन पर रख कर तथा हाथ में रख कर भोजन नहीं करना चाहिए।

न हस्ते ।८०

हाथ में अन्न लेकर भोजन नहीं करना चाहिए, पात्र में लेकर करना चाहिए।

प्राङ्मुखः ।८१

यथासम्भव पूरब की ओर मुँह करके भोजन करना चाहिए।

सुमनाः ।८२

प्रसन्नचित्त होकर भोजन करना चाहिए दुखी और उदासीन होकर नहीं।

शुचि-भक्ताऽक्षुधितानुकूलजनोपहितं हितमन्नम् अश्नीयात् ।८३

जिस अन्न को पवित्र, प्रेमी, अक्षुधित (भूख से अव्याकुल) तथा अपने अनुकूल पुरुषों ने परोसा हो तथा जो हितकर हो उसी का भोजन करना चाहिए। जो लोग गन्दे हों, अपने प्रेमी न हों, भूखे हुए हों, तथा अपने प्रतिकूल हों उनका परोसा हुआ भोजन नहीं करना चाहिए।

न पर्युपितम् अन्यत्र मांस-हरितशुष्कशाक-फलभक्ष्येभ्यः।८४

मांस, हरे सूखे शाक तथा फल आदि भक्ष्य पदार्थों को छोड़ कर रोटी, भात जैसे भोज्य पदार्थ जब बासी हो जायँ तो उन्हें नहीं खाना चाहिए।

उष्णम् अश्नीयात् ।८५

उष्ण (गर्म) भोजन करना चाहिए। ठण्ढा नहीं।

स्निग्धम् अश्नीयात् ।८६

स्नेहयुक्त अर्थात् घी, दूध, दही से संयुक्त भोजन करना चाहिए। रूखा-सूखा नहीं।

मात्रावद् अश्नीयात् ।८७

उचित मात्रा में भोजन करना चाहिए। अल्प अथवा अधिक नहीं।

जीर्णे अश्नीयात् ।८८

भोजन के पच जाने पर पुनः भोजन करना चाहिए।

वीर्याविरुद्धम् अश्नीयात् ।८९

जो अन्न पचने में अपने बल के अनुकूल न हो उसे नहीं खाना चाहिए।

८५-९४. चरकसंहिता विमान० अ० १:३१-४०।

इष्टे देशे अश्नीयात् ।९०

ऐसे स्थान पर भोजन करना चाहिए जहाँ चित्त को प्रसन्नता हो।

न अतिद्रुतम् अश्नीयात् ।९१

बहुत जल्दी-जल्दी भोजन नहीं करना चाहिए।

न अतिविलम्बितम् अश्नीयात् ।९२

बहुत धीरे-धीरे भोजन नहीं करना चाहिए।

अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत ।९३

बहुत बातें करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

हँसते हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

तल्लीन होकर अर्थात् भोजन में ही मन लगा कर भोजन करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि भोजन करते समय बहुत बोलना, हँसना तथा अन्य बातों की चिन्ता करना अच्छा नहीं होता।

आत्मानम् अभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक् ।९४

अपने बल, पाचनशक्ति, स्वास्थ्य, स्वभाव तथा रुचि का अच्छी तरह ध्यान रखते हुए भोजन करना चाहिए।

उपानत्सहितो व्यग्रचित्तः केवलभूस्थितः ।
पर्यङ्कस्थो विदिग्याम्याननो नाद्यात् कृशासनः ॥९५

जूता पहन कर भोजन नहीं करना चाहिए।

व्यग्रचित्त होकर—अशान्त होकर भोजन नहीं करना चाहिए।

केवल जमीन पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए।

९५-९६. विवेक विलास ३.२३७.३६।

पलंग अथवा खाट पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए।

विपरीत दिशा और दक्षिण की ओर मुँह करके भोजन नहीं करना चाहिए।

बहुत छोटे आसन पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए।

युक्तं चबचबाशब्दैः नाद्याद् वक्त्रविकारवान्।९६

चप्-चप् मुँह बजाते हुए तथा मुँह को विकृत और बेढंगा बना कर भोजन नहीं करना चाहिए।

न शिशुभिः सह भुञ्जीत।९७

बच्चों के साथ भोजन नहीं करना चाहिए।

बालवृद्धेभ्यः अन्नमदत्त्वा न भुञ्जीत।९८

बालकों और वृद्धों को बिना खिलाये भोजन नहीं करना चाहिए।

पालाशं दग्धम् अयोबद्धं च पीठं वर्जयेत्।९९

पलाश के बने हुए, जले हुए तथा लोहे के पीढ़े पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिए।

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन।१००

बैठ कर भोजन करना चाहिए। चलते हुए कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए।

न खादन् तिष्ठेत्।१०१

भोजन करते हुए खड़ा नहीं होना चाहिए।

---

९७. धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद।

९९. ,, ,,

१००. महाभारत अनु० १०७.२७।

१०१. बृहद्धर्म पुराण उत्तर ५.३९।

नादत्त्वा मिष्टमश्नीयात् ।१०२

यदि कोई मधुर पदार्थ खाना हो तो बिना उसे और लोगों को दिये नहीं खाना चाहिए।

अश्नीयुर्बहवश्चैव तथा नैकस्य पश्यतः ।१०३

जहाँ बहुत व्यक्ति उपस्थित हों वहाँ अकेले भोजन नहीं करना चाहिए। उनसे अलग हट कर भोजन करना चाहिए। यदि अनेक व्यक्तियों को एक साथ भोजन करना हो और यदि वहाँ कोई अन्य एक व्यक्ति उपस्थित हो तो उसे भी भोजन में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

प्रेक्षताम् अप्रदाय न भुञ्जीत ।१०४

भोजन करते समय जो लोग अथवा बाल-बच्चे वहाँ खड़े हों उन्हें बिना कुछ दिये अकेले भोजन नहीं करना चाहिए।

बहूनां भुञ्जतां मध्ये न चाश्नीयात् त्वरान्वितः ।१०५

जहाँ बहुत व्यक्ति भोजन करते हों वहाँ जल्दी-जल्दी भोजन नहीं करना चाहिए।

सन्निकृष्टे मृते सति ।१०६

यदि समीप में किसी की मृत्यु हो गयी हो और शव न उठा हो तो भोजन नहीं करना चाहिए।

---

१०२. स्मृतिमुक्ताफल, उशना।

१०३. ,, ,,

१०४. ,, ,,

१०५. वृहद्धर्मपुराण उत्तर० ५.५१।

१०६. गृहस्थ रत्नाकर पृ० ३२९।

अनावृतस्थले न भुञ्जीत ।[१०७]

जहाँ किसी प्रकार का पर्दा अथवा आड़ न हो वहाँ भोजन नहीं करना चाहिए।

अशुचेः समीपे न भुञ्जीत ।[१०८]

अपवित्र और गन्दे पुरुष के समीप भोजन नहीं करना चाहिए।

नाश्नीयाद् भार्यया सार्द्धम् ।[१०९]

स्त्री के साथ एक पात्र में भोजन नहीं करना चाहिए।

दीन-हीन-क्षुधार्तानां पाप-पाखण्डि-रोगिणाम् ।
कुक्कुटादि-शुनो दृष्टिर्भोजने नैव शोभना ॥[११०]

दीन, हीन, भूख से पीड़ित, पापी, पाखण्डी, रोगी, मुर्गा तथा कुत्ते आदि की दृष्टि का भोजन पर पड़ना अच्छा नहीं होता। अतः भोजन करते समय इनकी दृष्टि से बचे रहना चाहिए।

न क्रुद्धो, न अन्यमना, न अभिभाषमाणः अश्नीयात् ।[१११]

क्रुद्ध होकर, अन्यमनस्क होकर तथा बहुत बोलते हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

नावश्यं भोजने मौनं कुटुम्बाश्रमवासिनाम् ।
वाचोपचारः कर्तव्यो भुञ्जतां सह भोजने ॥[११२]

---

१०७. बृहद्धर्मपुराण उत्तर० ५९।

१०८. भवाब्धिसेतु।

१०९. मनुस्मृति ४.४३।

११०. स्वस्थ पुरुष।

१११. गृहस्थरत्नाकर, हारीत पृ० ३२७।

११२. शाण्डिल्यस्मृति ४.१२८।

जो लोग गृहस्थाश्रम में हैं उनके लिए भोजन करते समय मौन रहना आवश्यक नहीं है। यदि अनेक व्यक्ति एक साथ भोजन करते हों तो भोजन करते समय मधुर बचनों द्वारा परस्पर प्रेमपूर्ण सम्भाषण करते हुए भोजन करना चाहिए।

न पदा भाजनं स्पृशेत्।[११३]

भोजनपात्र का पैर से स्पर्श नहीं करना चाहिए।

न वृथा विसृजेदन्नम्।[११४]

निरर्थक अन्न नहीं छोड़ना चाहिए।

न भोजनार्थी पाकशालां प्रविशेत्।[११५]

भोजन करने वाले को भोजन करने के लिए पाकशाला में प्रवेश नहीं करना चाहिए। पाकशाला से पृथक् स्थान में भोजन करना चाहिए।

भोजनगृहे च न आचामेत्।[११६]

जिस घर में भोजन किया जाय वहाँ कुल्ला आदि नहीं करना चाहिए।

पिवेत् नाञ्जलिना तोयं न तोये मुखमर्पयन्।[११७]

अञ्जलि से पानी नहीं पीना चाहिए, पात्र से पीना चाहिए। जिस पात्र में पानी रक्खा हो उसमें मुँह सटा कर (पशुओं की भाँति) पानी नहीं पीना चाहिए। हाथ से पात्र उठा कर पीना चाहिए।

---

११३. वृहस्पतिस्मृति।

११४. ब्रह्मपुराण।

११५. शंखलिखित।

११६. धर्मसिन्धु, पूर्वार्द्ध, तृतीयपरिच्छेद।

११७. वृहद्धर्मपुराण।

उच्छिष्टो नालभेत् किञ्चित् ।११८

जूठे हाथ से कोई वस्तु नहीं छूना चाहिए ।

अनाचान्तो मूत्रपुरीषौ न कुर्यात् ।११९

भोजन के पश्चात् बिना कुल्ला किये और हाथ-मुँह धोये मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।

भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ।।१२०

दाँत में जो अन्न सटा हो उसे साफ कर पुनः आचमन करना चाहिए ।

दन्तान्तरगतं त्वन्नं शोधनेनाहरेत् शनैः ।१२१

दो दाँतों के बीच में जो अन्न रह गया हो उसे तिनके आदि से धीरे से, कहीं मांस में न लग जाय इस बात का ध्यान रखते हुए—निकाल देना चाहिए ।

दन्तलग्नमनिर्हार्यं लेपं मन्येत दन्तवत् ।
न तत्र बहुशः कुर्यात् यत्नं निर्हरणं प्रति ।।१२२

दाँत में लगा हुआ जो अन्न का अंश न निकाला जा सके उसे दाँत के समान ही समझ कर छोड़ देना चाहिए । उसके निकालने के लिए बहुत प्रयत्न नहीं करना चाहिए ।

आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् ।१२३

भोजन के पश्चात् कुल्ला आदि करके जलयुक्त हाथ से दोनों आँखों का स्पर्श करना चाहिए । इससे दृष्टि-मान्द्य आदि दूर होता है ।

---

११८. ब्रह्मपुराण २२१.३० ।

११९. धर्मसिन्धु पूर्वार्द्ध, तृ० परिच्छेद ।

१२०-१२४. स्वस्थ पुरुष ।

भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यम् अगस्त्यादीन् सुखावहान् ।१२४

भोजन करके अगस्त्य आदि सुखदायक ऋषियों के नाम का स्मरण करना चाहिए।

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः ।
ततः पदशतं गत्वा वामपार्श्वे तु संविशेत् ।।१२५

भोजन के बाद तब तक राजा के समान खूब आराम के साथ बैठना चाहिए जब तक कि भोजन करने की थकान दूर न हो जाय। इसके बाद सौ पगों के लगभग टहल कर कुछ देर तक बाएँ ओर लेट जाना चाहिए।

रुचिवैशद्य-सौगन्ध्यमिच्छन् वक्त्रेण धारयेत् ।
जाती - लवङ्ग - कर्पूर - कङ्कोल-कटुकैः सह ।।
ताम्बूलीनां किसलयं हृद्यं पूगफलान्वितम् ।।१२६

मुख की सुरुचि, स्वच्छता एवं सुगन्धि की इच्छा रखता हुआ व्यक्ति जायपत्री, लवंग, कपूर, कंकोल एवं कस्तूरी तथा सुपारी के साथ सुन्दर पान का सेवन करे।

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते ।।१२७

अतिथियों, नौकरों, अपने बन्धुजनों तथा भृत्य अर्थात् भरणीय लोगों का भी भोजन एक समान ही होना चाहिए, भोजन में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होना चाहिए। यही उत्तम है।

---

१२५. आह्निकसूत्रावलि।
१२६. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्र० अ०।
१२७. महाभारत शान्ति० १९३.९।

आवश्यक कार्यों का सम्पादन :

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः, गृहीतदन्तधावनः, मात्रयाऽनुलेपनं धूपं स्रजमिति च गृहीत्वा, दत्त्वा सिक्थकमलक्तकं च, दृष्ट्वाऽदर्शे मुखं, गृहीतमुखवासताम्बूलः कार्याणि अनुतिष्ठेत् ।१२८

नागरिक को चाहिए कि वह सबेरे उठ कर, शौचादि से निवृत्त हो, दन्तधावन करके, स्नानादि के बाद मात्रा से चन्दन लगा कर, धूप जला कर, माला पहन कर, होठों पर अलक्तक एवं सिक्थक (मोम) लगा कर, दर्पण में मुँह देख कर तथा मुँह में इलायची आदि सुगन्ध द्रव्य एवं पान लेकर तथा बाद में खाने के लिए भी डिब्बे में पान रख कर नौकरी या रोजगार आदि आवश्यक कार्यों का सम्पादन करे।

उत्तिष्ठेत ततोऽत्यर्थं अर्थेष्वर्थानुबन्धिषु ।
लोकद्वयाविरुद्धां च धनार्थी संश्रयेत्क्रियाम् ॥१२९

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर जीविकोपार्जन के हेतुभूत जो-जो कार्य हों उन्हें करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। धनप्राप्ति के लिए ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे कि इस लोक और परलोक दोनों में सिद्धि प्राप्त हो।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात् कफावहः ।
ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वप्नो निषिध्यते ॥१३०

दिन में नहीं सोना चाहिए क्योंकि इससे कफ हो जाता है। ग्रीष्म के अतिरिक्त सभी ऋतुओं में दिन में सोना वर्जित है।

---

१२८. वात्स्यायनकामसूत्र, नागरकवृत्त ४.५।

१२९. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्र ३।

१३०. भावप्रकाश।

अपराह्ण तथा सन्ध्याकालीन कर्तव्य :

गृहीतप्रसाधनस्य अपराह्णे गोष्ठीविहाराः, प्रदोषे च सङ्गीतकानि ।[१३१]

अपराह्ण में वेष-भूषा आदि से सुसज्जित होकर मित्रों के साथ बैठक, मनोविनोद तथा भ्रमण करना चाहिए ।

प्रदोष के समय सङ्गीत आदि का आयोजन करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि घर के काम अथवा नौकरी आदि के काम से निवृत्त होकर सायंकाल गोष्ठी, भ्रमण तथा गीतवाद्य आदि से मनोरञ्जन करना चाहिए ।

ग्रामे च यान्यगाराणि देवतानां तदीक्षणात् ।
लोकयात्रेति कथिता तां कुर्वन् पुण्यभाग् भवेत् ॥[१३२]

अपने ग्राम तथा नगर में जो देवमन्दिर आदि पवित्र स्थान हों उनमें भी सायंकाल देवदर्शन करने के लिए जाना चाहिए । इसे लोक-यात्रा कहते हैं और इस नियम का पालन करने से मनुष्य पुण्यभागी होता है ।

कार्यं विना यदुद्यान-नगराद्युपसर्पणम् ।
वृथाटनं तत् शस्तं तु शरीरालस्य-शान्तये ॥[१३३]

बिना विशेष आवश्यकता के भी सायंकाल बाग-बगीचे तथा नगर आदि में भ्रमण करना चाहिए । इससे शरीर का आलस्य नष्ट होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है ।

---

१३१. कामसूत्र, नागरकवृत्त १६ ।

१३२. आह्निकसूत्रावलि, अष्टमभागकृत्य ।

१३३. श्यैनिकशास्त्र २.२८ ।

न सन्ध्यासु अभ्यवहाराध्ययन-स्त्री-स्वप्न-सेवी स्यात् ।[१३४]

सन्ध्या समय में भोजन, अध्ययन, स्त्री-प्रसंग तथा शयन नहीं करना चाहिए।

सन्ध्याप्रदीपं प्रज्वाल्य प्रणमेत्तदनन्तरम् ।[१३५]

सन्ध्या के समय दीपक जला कर उसे प्रणाम करना चाहिए।

न चैव स्थापयेद्दीपं साक्षाद्भूमौ कदाचन ।[१३६]

दीपक को कभी सीधे जमीन पर नहीं रखना चाहिए—किसी तिपाई, स्टूल अथवा दीवट आदि पर रखना चाहिए।

शयन :

सायं भुक्त्वा लघु हितं समाहितमनाः शुचिः ।
शास्तारमनुसंस्मृत्य स्वशय्यां चाथ संविशेत् ।।[१३७]

सायंकाल (रात में) हल्का और हितकर भोजन करके तथा शान्तचित्त एवं पवित्र हो भगवान् का स्मरण करके अपनी शय्या पर शयन करना चाहिए।

देवतां नत्वा स्मरणं च कृत्वा वैणवदण्डमुदपात्रं च शयनसमीपे निधाय प्रक्षालितपादः शयनं कुर्यात् ।[१३८]

---

१३४. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ८।

१३५. बृहद्धर्मपुराण।

१३६. अष्टाङ्गहृदय २, १९।

१३७. आश्वलायन गृह्यपरिशिष्ट अ० २, ख-१२।

१३८-१४४. विष्णुस्मृति अ० ७०।

अपने अभीष्ट देवता को प्रणाम तथा स्मरण करके, शय्या के समीप एक बाँस का डण्टा तथा जलपूर्ण पात्र रख कर और पैर धोकर शयन करना चाहिए।

नार्द्रपादः स्वपेत् नोत्तराऽपरशिराः। न नग्नः।१३९

भींगे पैर शयन नहीं करना चाहिए। पैर धोकर उसे पोंछ लेना चाहिए।

उत्तर और पश्चिम की ओर शिर करके नहीं सोना चाहिए।

नग्न होकर शयन नहीं करना चाहिए।

न भिन्ने।१४०

टूटे-फूटे आसन (खाट आदि) पर शयन नहीं करना चाहिए।

न अग्निप्लुष्टे।१४१

जो आसन आग से जला हुआ हो उस पर शयन नहीं करना चाहिए।

न श्मशान-शून्यालय-देवतायतनेषु।४१२

श्मशान में, सूने मकान में तथा देवमन्दिर में (अर्थात् जिस घर में देवमूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी हो) शयन नहीं करना चाहिए।

न चपलमध्ये।१४३

चञ्चल स्वभाव के लोगों के बीच में शयन नहीं करना चाहिए।

न नारीमध्ये।१४४

स्त्रियों के बीच में शयन नहीं करना चाहिए।

कूलच्छायासु च तथा शर्करा-लोष्ट-पांशुसु।
न स्वपेच्च तथा गर्ते विना वीक्षां कथञ्चन॥१४५

---

१४५. मार्कण्डेयपुराण।

नदी, तालाब आदि के तीर (अड़ार) की छाया में; कंकड़-पत्थर, ढेला, धूल तथा मिट्टी पर और गड्ढे में नहीं सोना चाहिए और यदि इन स्थानों में सोना हो पड़े तो बिना चारो ओर अच्छी तरह देखे-भाले नहीं सोना चाहिए।

रात्रौ सेवेत न द्रुमम् ।[१४६]

रात में वृक्ष के नीचे नहीं सोना चाहिए।

नाशुचौ नाऽशुचिः स्वयम् ।[१४७]

अपवित्र और गन्दे स्थान पर तथा स्वयं भी अपवित्र होकर शयन नहीं करना चाहिए।

न अजानुसमं कठिनं वा आसनम् अध्यासीत ।[१४८]

जो आसन जानु (ठेहुन) के बराबर ऊँचा न हो तथा बहुत कड़ा हो उस पर शयन नहीं करना चाहिए।

न अनास्तीर्णम् अनुपहतम् अविशालम् असमं वा शयनं प्रपद्येत ।[१४९]

जिस पर बिछौना न बिछा हो, जिस पर तकिया न हो, जो विशाल न हो तथा जो बराबर न होकर कहीं ऊँची तथा कहीं नीची हो ऐसी शय्या पर शयन नहीं करना चाहिए।

नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च ।

---

१४६. क्षेमकुतूहल ५.७८ ।

१४७. मार्कण्डेयपुराण ।

१४८. चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ८ ।

१४९. ,, ,,

न च जन्तुमयीं शय्याम् अधितिष्ठेदनावृताम् ।।[१५०]

ऐसी शय्या (खाट, पलंग आदि) पर, जो विशाल न हो, टूटी-फूटी हो, वराबर न हो, गन्दी हो, खटमल से भरी हो तथा बिछौने से रहित हो, शयन नहीं करना चाहिए।

न अश्मपीठोपधाने शयीत ।[१५१]

पत्थर, ईंट अथवा पीढ़े आदि की तकिया लगा कर नहीं सोना चाहिए।

न कुर्यात् शयनात् पूर्वम् अनिष्टचिंतनं नरः ।[१५२]

निद्रा आने के पूर्व किसी प्रकार की अनिष्ट एवं अशुभ बातों का चिन्तन अथवा स्मरण नहीं करना चाहिए।

नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।[१५३]

जहाँ कई आदमी सोये हों वहाँ अकेले नहीं जागे रहना चाहिए। इससे लोगों के मन में विविध प्रकार की शंकाएँ हो सकती हैं।

न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु । [१५४]

दिन में कभी नहीं सोना चाहिए और रात में भी रात्रि के पहले और पिछले पहर में नहीं सोना चाहिए।

---

१५०. विष्णुपुराण ३.११.१०९।

१५१. पैठीनसिः।

१५२. वृहद्धर्मपुराण उत्तर० ६.१०।

१५३. ,, ,,

१५४. महाभारत, शान्ति० २४३.६।

उपनाहौ वेणुदण्डमम्बुपात्रं तथैव च।
ताम्बूलादीनि सर्वाणि समीपे स्थापयेन्निशि ॥१५५

रात में शयन करते समय जूता, डण्टा या छड़ी, जलपात्र तथा पान आदि आवश्यक वस्तुओं को समीप में रखना चाहिए।

न नक्तं अदेशे चरेत्। १५६

रात में कहीं ऐसे स्थान पर नहीं जाना चाहिए जहाँ जाने से किसी प्रकार की अपनी हानि होने तथा कलंक लगने की आशंका हो।

दिन-रात्रि-चर्या के नियमों में छूट :

आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रविभज्य
कार्याणि सेवेत।१५७

यदि शास्त्रोक्त दिन-रात्रि-चर्याके नियम अपने अनुकूल न हों तो अपने बल और प्रकृति के अनुकूल दिन-रात का विभाग करके दैनिक काम करना चाहिए।

दिवाविहितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत्।
परग्रामे तदर्द्धं च पथि तस्यार्धमेव च॥
तदर्धं रोगिणां चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत् ॥१५८

दिन में शौचाचार का जितना विधान है उससे आधा रात में,

---

१५५. आह्निकसूत्रावलि गायनवचन।

१५६. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ८।

१५६. अग्निवेशसंहिता, सूत्रास्थान अ० ८।

१५७. कौटलीय अर्थशास्त्र, अधि०१ अ० १८!

१५८. स्कन्दपुराण, ब्राह्म० धर्मारण्य० अ० ५,४५-४६

उससे आधा दूसरे गाँव या दूसरे के घर में, उससे आधा यात्रा में तथा उससे भी आधा रोगावस्था में पालन करना चाहिए। परन्तु अपने घर में स्वस्थ रहते हुए शौचाचार के नियमों में न्यूनता नहीं करनी चाहिए।❀

अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः।
आपदस्तु कथं शक्याः परिपाठेन वेदितुम् ॥१५९

सामान्य अवस्था के लिए दूसरे धर्म एवं आचार होते हैं और विषम परिस्थितियों तथा आपत्काल के लिए दूसरे होते हैं। परन्तु सब प्रकार की आपत्तियों तथा विषम परिस्थितियों की गणना नहीं हो सकती। अतः जब जैसी स्थिति हो उसके अनुरूप धार्मिक नियमों एवं आचारों के पालन में प्रवृत्त होना चाहिए।

नहि सर्वहितः कश्चिद् आचारः सम्प्रवर्तते।१६०

कोई भी आचार ऐसा नहीं हो सकता जो सबके लिए और सब परिस्थितियों में समानरूप से हितकर हो। अतः परिस्थिति के अनुसार आचारों में परिवर्तन हो जाता है।

●

१५९-१६०. महाभारत शान्तिपर्व २६०.४९.१७।

❀ दक्ष स्मृति में जल्दीबाजी के समय भी शौचाचार में कमी करने का विधान है। यथा—

दिवोदितस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते।
तदर्द्धमातुरस्याहुः त्वरायामर्द्धमध्वनि ॥ ५।१२

३. वाञ्छनीय शील-स्वभाव

[चरकसंहिता एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र के निम्नलिखित विशेषण आदर्श पुरुषों के लक्षण के रूप में उल्लिखित हैं उनका यहाँ शिक्षा के रूप में उल्लेख किया गया है। अर्थात् सबको ऐसा ही बनने का प्रयत्न करना चाहिए।]

मङ्गलाचारशीलः ।[१]

मङ्गल एवं आनन्दसूचक आचार-व्यवहार से युक्त रहना चाहिए।

सुमुखः ।[२]

प्रसन्नवदन रहना चाहिए। रोषपूर्ण या उदासीन मुद्रा में नहीं रहना चाहिए।

निश्चिन्तः ।[३]

निश्चिन्त रहना चाहिए। चिन्ताशील स्वभाव का नहीं होना चाहिए।

ह्रीमान् ।[४]

लज्जा एवं संकोचशील होना चाहिए।

धीमान् ।[५]

बुद्धिमान् होना चाहिए।

महोत्साहः ।[६]

महान् उत्साही होना चाहिए।

१-३१. चरक संहिता. सूत्रस्थान, अ० ८।

दक्षः ।७

प्रत्येक काम में दक्ष एवं कुशल होना चाहिए।

वश्यात्मा ।८

जितेन्द्रिय होना चाहिए।

धर्मात्मा ।९

धर्म में आस्थावान् होना चाहिए।

हेतौ ईर्ष्युः फले नेर्ष्युः ।१०

किसी की उन्नति को देखकर उनकी उन्नति के लिए ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए प्रत्युत उसके कारणभूत गुणों के लिए ईर्ष्या करनी चाहिए और स्वयं भी वैसा होने का प्रयत्न करना चाहिए।

क्षमावान् ।११

क्षमाशील होना चाहिए।

धार्मिकः ।१२

धर्माचरणशील तथा धर्म का रक्षक होना चाहिए।

आस्तिकः ।१३

आस्तिक होना चाहिए अर्थात् शास्त्र, ईश्वर एवं परलोक में विश्वास रखना चाहिए।

विनय-बुद्धि-विद्याऽभिजन-वयोवृद्ध-
सिद्धाचार्याणाम् उपासिता ।१४

जो लोग विनय, बुद्धि, विद्या, कुल एवं अवस्था में श्रेष्ठ हों; जो सिद्ध पुरुष हों और आचार्य हों उनका उपासक होना चाहिए अर्थात् उनकी सेवा और संगति में रहना चाहिए।

होता ।१५

यथासमय हवन करते रहना चाहिए।

यष्टा ।१६

यथा समय यज्ञ-याग करते रहना चाहिए।

दाता ।१७

यथासमय दान देते रहना चाहिये।

बलीनाम् उपहर्ता ।१८

यथासमय देवताओं की पूजा-अर्चा करते रहना चाहिए।

अतिथीनाम् पूजकः ।१९

यथासमय अतिथिजनों का आदर-सत्कार करते रहना चाहिए।

पितृभ्यः पिण्डदः ।२०

यथासमय पित्तरों का श्राद्धतर्पण आदि करते रहना चाहिए।

काले हितमितमधुरार्थवादी ।२१

सामयिक वचन बोलना चाहिए, हितकर वचन बोलना चाहिए, परिमित वचन बोलना चाहिए तथा मधुर एवं कोमल वचन बोलना चाहिए।

सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात् ।२२

समस्त प्राणियों को अपना भाई-बन्धु समझना चाहिए और वैसा ही सबके साथ व्यवहार रखना चहिए।

क्रुद्धानाम् अनुनेता ।२३

क्रुद्ध पुरुषों को अनुनय-विनय द्वारा मनाना चाहिए।

भीतानाम् आश्वासयिता ।२४

डरे हुए लोगों को आश्वासन देना चाहिए।

दीनानाम् अभ्युपपत्ता ।२५

दीन-दुखियों का सहायक होना चाहिए।

सत्यसन्धः ।२६

सत्यप्रतिज्ञ होना चाहिए।

सामप्रधानः ।२७

साम, दान, दण्ड और भेद आदि उपायों में साम अर्थात् शान्ति एवं समझौते का ही प्रधानतया अवलम्बन करना चाहिए।

पर-परुषवचन-सहिष्णुः ।२८

दूसरों के कठोर वचन को सहने का अभ्यासी होना चाहिए।

अमर्षघ्नः ।२९

अमर्ष नहीं रखना चाहिए।

प्रशमगुणदर्शी ।३०

शान्ति को गुण की दृष्टि से देखना चाहिए।

रागद्वेषहेतूनां हन्ता ।३१

राग और द्वेष के बाहरी एवं भीतरी कारणों को समझना चाहिए और उन्हें दूर करना चाहिए।

सत्त्वसम्पन्नः ।३२

आत्मिक बल से सम्पन्न रहना चाहिए।

३२-४८. कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० ६, अ० १।

वृद्धदर्शी ।३३

वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध पुरुषों का उपासक होना चाहिए।

सत्यवाक् ।३४

सत्यवादी होना चाहिए।

अविसंवादकः ।३५

वचन एवं आचरण में एकता रखनी चाहिए।

कृतज्ञः ।३६

कृतज्ञ होना चाहिए। किसी के किये हुए उपकार को भूलना नहीं चाहिए।

अदीर्घसूत्रः ।३७

दीर्घसूत्री नहीं होना चाहिए। सब काम यथासंभव शीघ्रता से करना चाहिए।

स्थूललक्षः ।३८

अपना लक्ष्य ऊँचा एवं महान् रखना चाहिए।

दृढबुद्धिः ।३९

अपनी बुद्धि और विचार को दृढ़ रखना चाहिए। ढुलमुल नहीं।

अक्षुद्रपरिषत्कः ।४०

महान् पुरुषों की परिषद् में जाना चाहिए और अपने यहाँ भी महान् पुरुषों की ही परिषद् बुलानी चाहिए। क्षुद्र लोगों की नहीं।

वाग्मी ।४१

उत्तम वक्ता होना चाहिए।

प्रगल्भः ।४२

बोलने में निर्भीक एवं प्रौढ़ होना चाहिए।

स्मृति-मति-बलवान् ।४३

स्मरण-शील होना चाहिए, मतिमान होना चाहिए और बलवान होना चाहिए ।

उमग्र ।४४

वीर, पराक्रमी एवं साहसी होना चाहिए ।

स्ववग्रहः ।४५

नमनशील स्वभाव का होना चाहिए । हठी एवं कठोर स्वभाव का नहीं होना चाहिए ।

कृतशिल्पः ।४६

शिल्प ओर कला में कुशल होना चाहिए ।

दीर्घदूरदर्शी ।४७

दीर्घदर्शी और दूरदर्शी होना चाहिए ।

पैशुन्यहीनः ।४८

पिशुनता नहीं करना चाहिए ।

दद्‌ यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ।४९

अपने लिए जिन-जिन बातों की इच्छी करनी चाहिए उनकी दूसरों के लिये भी इच्छा करनी चाहिए ।

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूल यदात्मनः ।५०

जो वात अपने लिये प्रतिकूल मालूम पड़े उसे दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए ।

---

४९. महाभारत उ० ८३.७२ ।

५०. ,, ,,

आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान् ।५१

यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की बात करे तो उससे पहले मधुर ही वचन वोलना चाहिए ।

ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदु वल्गु च सुष्ठु च ।५२

यदि कोई अपनी ओर देखे तो उसकी ओर मृदु, मधुर एवं सौजन्य-पूर्ण दृष्टि से देखना चाहिए।

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च ।
अपृष्टोऽपि हितान्वेषी ब्रूयात् कल्याणभाषितम् ।५३

यदि किसी पर आपत्ति आ जाय, यदि कोई कुपथ पर चलने लगे तथा किसी का काम करने का समय बीत रहा हो तो बिना पूछे भी हितैषी पुरुष को उसके लिए हितकर बात बता देनी चाहिए ।

अप्रियं यस्य कुर्वीत भूयस्तस्य प्रियं चरेत् ।५४

यदि किसी कारणवश किसी का कभी कुछ अप्रिय भी हो जाय तो पुनः उसका प्रिय भी करना चाहिए ।

कुर्यात् प्रियमयाचितः ।५५

बिना किसी के द्वारा याचना किये ही यथासम्भव सबका प्रिय करना चाहिए ।

४९-५०. महाभारत उ० ३८.७३-७२ ।
५१. महाभारत शान्ति० ६७.३८ ।
५२. ,, ,, ३९ ।
५३. शुक्रनीति २.२२१ ।
५४. महाभारत, शान्ति० अ० ८९.८ ।
५५. ,, ,, ,, ९ ।

धर्माणामविरोधेन सर्वेषां प्रियमाचरेत् ।५६

किसी धर्मविशेष का विरोध न करते हुए सबका प्रिय सम्पादन करना चाहिए ।

प्रसादयेन्मधुरया वाचा चाप्यथ कर्मणा ।
तवास्मीति वदेन्नित्यं परेषां कीर्तयन् गुणान् ।।५७

मधुर वाणी तथा हितकर कर्म द्वारा सबको प्रसन्न रखना चाहिए तथा दूसरों की प्रशंसा करते हुए "मैं आपका ही हूँ" ऐसा सदा कहना चाहिए ।

कृतज्ञेन सदा भाव्यं मित्रकामेन चैव हि ।५८

सदा कृतज्ञ होना चाहिए तथा सदा नये-नये मित्र बनाने की इच्छा रखनी चाहिए ।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।।५९

बुद्धिमान् पुरुष को, विषयों की ओर स्वभावतः जाने वाली इन्द्रियों को वश में रखने का उसी प्रकार प्रयत्न करना चाहिए जिस प्रकार सारथि घोड़ों को काबू में रखने का प्रयत्न करते हैं ।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ।।६०

---

५६. महाभारत, शान्ति० अ० १२०.२५ ।

५७. ,, ,, ,, १२३.३३ ।

५८. ,, ,, ,, १७३.२२ ।

५९. मनुस्मृति, अ० २.८८ ।

६०. ,, ,, १५९ ।

यथासम्भव बिना किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाये ही समस्त प्राणियों को उनके कल्याण के लिए अनुशासन करना चाहिए।

जो धर्म चाहते हों उन्हें मधुर एवं श्लक्ष्ण वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

श्रद्दधानः शुभां विद्याम् आददीतावरादपि।[६१]

अपने से निकृष्ट पुरुष से भी यदि कोई अच्छी विद्या या शिक्षा मिले तो उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

बालादपि सुभाषितम्।[६२]

बालक भी यदि अच्छी बातें कहें तो उन्हें भी मानना चाहिए।

अमित्रादपि सद्वृत्तम्।[६३]

शत्रु में भी अच्छे आचरण हों तो उनका भी ग्रहण करना चाहिए।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्।[६४]

सत्य बोलना चाहिए।
प्रिय वचन बोलना चाहिए।
अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए।
प्रिय असत्य भी नहीं बोलना चाहिए।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा।[६५]

सत्य बोलना, धर्म के पथ पर चलना, श्रेष्ठ पुरुषों के समान आचार-

---

६१-६२-६३. मनुस्मृति, अ० २.२३८-२३१।
६४. ,, ४.१३८।
६५. ,, ४.१७५।

व्यवहार रखना और बाहर-भीतर स्वच्छता रखना इन गुणों में बराबर अनुराग रखना चाहिए।

धर्मं शनैः सञ्चिनुयात् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोक - सहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥६६

जैसे दीमक धीरे-धीरे मिट्टी का ढेर लगा देते हैं उसी प्रकार धीरे-धीरे परलोक की सहायता के लिए धर्म का सञ्चय करते रहना चाहिए। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि धर्म करने में किसी प्राणी को किसी प्रकार कोई पीड़ा न हो।

धर्मार्थकामान् स्वे काले यथाशक्ति न हापयेत्।६७

जहाँ तक हो सके, धर्म अर्थ और काम का उपयुक्त अवसर पर परित्याग नहीं करना चाहिए। उचित समय पर इन तीनों का सेवन करना ही चाहिए।

वयो - बुद्ध्यर्थ - वाग्वेष-श्रुताभिजनकर्मणाम्।
आचरेत् सदृशीं वृत्तिम् अजिह्मामशठां तथा ॥६८

ऐसा आचरण रखना चाहिए जो अपनी अवस्था, बुद्धि, सम्पत्ति, वाणी, वेष, ज्ञान, कुल एवं कर्म के अनुकूल हो।

ऐसा व्यवहार रखना चाहिए जो कुटिलता और शठतापूर्ण न हो।

आमृत्योः श्रियमाकांक्षेत्।६९

जब तक जिन्दगी रहे तब तक धन-सम्पत्ति अर्जन करने की कामना रखनी चाहिए।

---

६६. ,, ,, ४.२३८।
६७. याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय ११५।
६८. ,, ,, १२३।
६९. ,, ,, १५३।

कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद् धर्मं समाचरेत् ।७०

मन, वचन और कर्म सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक अच्छा ही आचरण करना चाहिए।

परशय्यासनोद्यान-गृहयानानि वर्जयेत् । अदत्तानि...७१

दूसरों की शय्या, आसन, उद्यान (वाग-बगीचा, उसके फल-फूल आदि) गृह और यान (सवारी) का तभी उपयोग करना चाहिए जब उनकी अनुमति मिल जाय। अतः इन वस्तुओं के उपयोग के लिए उनकी अनुमति ले लेनी चाहिए। अनुमति के अभाव में उनका उपयोग नहीं करना चाहिए।

ज्ञात्वाऽपराधं देशं च कालं वलमथ्थापि वा ।
वयः कर्म च वित्तं च दण्डं दण्डचेषु पातयेत् ।।७२

यदि किसी अपराधी को दण्ड देना हो तो उसके अपराध, देश, काल, वल, अवस्था, कर्म और धन का अच्छी तरह विचार करके दण्ड देना चाहिए। बिना सोचे-विचारे नहीं।

देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वा नापहरेद् बुधः ।७३

किसी को कोई वस्तु देने के लिए वचन देकर उसका उल्लंघन तथा दी हुई वस्तु का पुनः ग्रहण नहीं करना चाहिए।

प्रत्यक्षं दुर्गुणान्नैव वक्तुं शक्नोति कोऽप्यतः ।
स्वदुर्गुणान् स्वयं चातो विमृशेल्लोकशास्त्रतः ।।७४

कोई भी व्यक्ति किसी के समस्त दुर्गुणों को प्रत्यक्ष रूप से उसके

७०.-७२. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय १५६-१६०-३६८।

७३. ,, ,, व्यवहाराध्याय १७९।

७४. शुक्रनीति अ० ३।

सामने नहीं कह सकता। अतः अपने दुर्गुणों को स्वयं देखना चाहिए और यह विचारना चाहिए कि मेरा कौन-सा काम लोकविरुद्ध है और कौन-सा शास्त्रविरुद्ध।

स्वनियमं कुर्यादप्रमादेन।७५

सावधानी के साथ अपने नियमित कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए।

आत्मानमनृणी कुर्यात्।७६

अपने को ऋणी (कर्जदार) होने से बचाये रहना चाहिए।

ऋणवान् जायते त्रिभिः काम-क्रोध-लोभैः।७७

काम, क्रोध एवं लोभ के कारण मनुष्य ऋण लेता है। अतः इनसे यथासंभव वचे रहना चाहिए।

जनापवादाद् भजेद् भीतिम्।७८

जनापवाद से अर्थात् लोगों में अपनी शिकायत होने से डरना चाहिए। इस तरह रहना चाहिए कि जनता में अपनी शिकायत न हो।

पापं कृत्वानुतप्येत।७९

यदि कोई पाप या अपराध हो जाय तो उसके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। और आगे पुनः ऐसी गल्ती न करने के लिए सावधान होना चाहिए।

पुंसा व्यवसायिना भाव्यम्।८०

मनुष्य को व्यवसायी (उद्यमी) होना चाहिए। निरुद्योग होकर समय नहीं बिताना चाहिए।

७५-७७. वार्हस्पत्य अर्थसूत्र० अ० १.६७.९१.९२।
७८-८२. उपदेशशतकम्।

विनयात् संसाधयेत् कार्यम् ।[८१]

विनयपूर्वक कार्यसाधन करना चाहिए। किसी से कोई काम लेना या कराना हो तो विनय और शिष्टता के साथ व्यवहार करना चाहिए।

पुरातनीं पालयेत् संस्थाम् ।[८२]

पुरानी मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। उनका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पार्थिव ।
तत् कर्तव्यमसंगेन यन्न गोप्यं महाजने ॥[८३]

जिस काम के करने में अपनी आत्मा को लज्जा तथा घृणा न हो और जो काम समाज में या बड़े लोगों से छिपाने लायक न हो वही काम स्वच्छन्दतापूर्वक करना चाहिए।

योक्ता च धर्मयुक्तेषु द्रव्यपरिग्रहेषु ।[८४]

जो द्रव्य धर्म मार्ग से—उचित रूप से मिले उसे ही लेना चाहिए।

प्रतिपादयिता च तीर्थे ।[८५]

अपने द्रव्य का सत्पात्र तथा सत्कार्य में उपयोग करना चाहिए।

संग्रहीता च मनुष्यान् ।[८६]

मनुष्यों का संग्रह करना चाहिए अर्थात् अपने सद्व्यवहार से सब लोगों को अपने अनुकूल बनाये रहना चाहिए।

भोक्ता च धर्माविप्रतिषिद्धान् भोगान् ।[८७]

ऐसे सुख-साधनों का उपभोग करना चाहिए जो धर्मविरुद्ध न हों।

---

८३. स्कन्दपुराण, माहेश्वर-खण्ड, कौमारी-खण्ड, अ० ४१.१७१।

८४-८७. सत्याषाढ श्रौत्रसूत्र० प्र० २७, पं० ५.१०४-१०७।

४. वर्जनीय शील-स्वभाव

न अनृतं ब्रूयात् ।[१]

झूठ नहीं बोलना चाहिए ।

न अन्यस्वम् आददीत ।[२]

दूसरे के धन को (छल-कपट से, चोरी से, घूस के रूप में तथा बिना पूछे) नहीं लेना चाहिए ।

न अन्यस्त्रियम् अभिलषेत्, न अन्यश्रियम् ।[३]

न दूसरों की स्त्रियों पर तथा न दूसरों के धन पर लालच करना चाहिए ।

न वैरं रोचयेत् ।[४]

किसी के साथ वैर-विरोध करना पसन्द नहीं करना चाहिए ।

न कुर्यात् पापम् ।[५]

पाप नहीं करना चाहिए।

न पापेऽपि पापी स्यात् ।[६]

पापी व्यक्ति के साथ भी पाप नहीं करना चाहिए ।

न अन्यदोषान् ब्रूयात् ।[७]

दूसरों के दोषों को नहीं कहना चाहिए ।

न अन्यरहस्यम् आगमयेत् ।[८]

दूसरों की गुप्त बातों को जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ।

१-४६. चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ८ ।

न उच्चैः हसेत् ।९

बहुत जोर से नहीं हँसना चाहिए।

न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत् ।१०

आवाज के साथ अपानवायु (नीचे की हवा) नहीं छोड़नी चाहिए।

न अनावृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत् ।११

मुँह को विना ढँके जम्भाई, छींक तथा हास्य नहीं करना चाहिए।

न नासिकां कुष्णीयात् ।१२

नाक को अंगुली आदि से कुरेदते नहीं रहना चाहिए।

न दन्तान् विघट्टयेत् ।१३

दाँतों को बजाना अथवा रगड़ना नहीं चाहिए।

न नखान् वादयेत् ।१४

नखों को नहीं बजाना चाहिए।

न अस्थीनि अभिहन्यात् ।१५

हड्डियों को परस्पर न टकराना या लड़ाना नहीं चाहिए।

न भूमिं विलिखेत् ।१६

पैर के अंगूठे आदि से जमीन नहीं खुरचनी चाहिए।

न छिन्द्यात् तृणम् ।१७

तिनका लकड़ी आदि नहीं तोड़ना चाहिए।

न लोष्टं मृद्नीयात् ।१८

मिट्टी के ढेलों तथा कंकड़-पत्थर आदि को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहिए।

न विगुणम् अङ्गैश्चेष्टेत ।१९

अपने अंगों द्वारा व्यर्थ तथा अनुचित चेष्टाएँ नहीं करनी चाहिए ।

न चैत्यध्वज-गुरु-पूज्याऽशस्तच्छायाम् आक्रामेत् ।२०

चैत्य (ग्राम अथवा नगर का पूज्य वृक्ष) ध्वज (झण्डा) गुरु, पूज्य तथा अप्रशस्त (अशुभ वस्तुओं) की छाया नहीं लाँघनी चाहिए ।

न उत्तमैः विरुद्धयेत् ।२१

श्रेष्ठजनों के साथ विरोध नहीं करना चाहिए ।

न भयम् उत्पादयेत् ।२२

किसी को डरवाना नहीं चाहिए ।

न कलिम् आरभेत् ।२३

किसी के साथ झगड़ा टंटा नहीं करना चाहिए ।

न जनवति, नान्नकाले, न होमाध्ययनमङ्गल-क्रियासु श्लेष्म-सिङ्घाणकं मुञ्चेत् ।२४

जहाँ बहुत आदमी हों, जहाँ कोई भोजन कर रहा हो, और जहाँ जप, होम, अध्ययन, बलि और अन्यान्य मङ्गलक्रियायें होती हों वहां थूकना-खखारना और नाक नहीं छिड़कना चाहिए ।

न पन्थानम् अवमूत्रयेत् ।२५

रास्ते पर पेशाब नहीं करना चाहिए ।

न अतिसमयं जह्यात् ।२६

किसी सभा-संस्था के नियमों तथा पम्स्पराओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

न नियमं भिन्द्यात् ।२७

शास्त्रोक्त धर्म तथा शिष्टाचार के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

न मद्य-द्यूत-वेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात् ।२८

मद्य (शराब) द्यूत (जूआ) और वेश्या इनके सेवन में रुचि नहीं रखनी चाहिए।

न गुह्यं विवृणुयात् ।२९

गुप्त अंगों को खुला नहीं रखना चाहिए।

न अहम्मानी स्यात् ।३०

किसी बात का अहंकार नहीं करना चाहिए।

न अदक्षः ।३१

किसी काम के करने में गँवरपन नहीं करना चाहिए।

न अदक्षिणः ।३२

अनुदार स्वभाव का नहीं होना चाहिए।

न असूयकः ।३३

असूयक (असूया करने वाला) नहीं होना चाहिए।

न अधीरः ।३४

अधीर नहीं रहना चाहिए। धैर्यवान् होना चाहिए।

न अत्युच्छ्रितसत्त्वः स्यात् ।३५

उद्धत स्वभाव का नहीं होना चहिए। विनीत होना चाहिए।

न एकः सुखी ।३६

अकेले सुखी नहीं रहना चाहिए। दूसरों को भी सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

न दुःखशीलाचारोपचारः ।३७

ऐसा स्वभाव, व्यवहार तथा रहन-सहन नहीं रखना चाहिए जिससे दूसरों को किसी प्रकार का कोई क्लेश हो।

न सर्वविश्रम्भी ।३८

प्रत्येक व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

न सर्वाभिशङ्की ।३९

प्रत्येक व्यक्ति पर सन्देह भी नहीं करना चाहिए।

न सर्वकालविचारी ।४०

सर्वदा सोचने-विचारने में ही नहीं पड़ा रहना चाहिए।

न इन्द्रियवशगः स्यात् ।४१

इन्द्रियों के वशीभूत नहीं रहना चाहिए।

न चञ्चलं मनः अनुभ्रामयेत् ।४२

मन को चंचल बना कर इधर-उधर भरमाते नहीं रहना चाहिए, मन को धीर रखना चाहिए।

न च अतिदीर्घसूत्री स्यात् ।४३

अत्यन्त दीर्घसूत्री नहीं होना चाहिए।

न शोकम् अनुवसेत् ।४४

बहुत देर तक शोक में नहीं पड़े रहना चाहिए।

न वीर्यं जह्यात् ।४५

बल का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अथवा साहस का परित्याग नहीं करना चाहिए।

न अपवादं स्मरेत् ।४६

किसी द्वारा की गयी अपनी निन्दा का स्मरण नहीं करना चाहिए।

ज्ञानवताऽपि च न अत्यर्थमात्मनो ज्ञाने
विकत्थितव्यम् ।४७

ज्ञानवान् को भी अपने ज्ञान की अधिक प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

इन्द्रियार्थे सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्तयेत् ।।४८

इन्द्रियों के जो रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि विषय हैं उनकी आवश्यकतानुसार ही उचित मात्रा में सेवन करना चाहिए। उपभोग की दृष्टि से उनमें अधिक आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

यदि अधिक आसक्ति हो गयी हो अथवा होने की सम्भावना हो तो उनसे होने वाले दुष्परिणामों को सोचते हुए आसक्ति के भाव को मन से बिलकुल निकाल देना चाहिए।

न प्राणाबाधमाचरेत् ।४९

ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे प्राणों को कोई खतरा हो।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ।।५०

---

४७. चरकसंहिता, विमानस्थान ८.१३ ।
४८. मनुस्मृति, अ० ४.१६ ।
४९. ,, ,, ५४ ।
५०. ,, ,, ५६ ।

पेशाब, पैखाना, थूक, खून, विष तथा अन्य कोई भी अपवित्र वस्तु पानी में नहीं फेंकना चाहिए।

नाधार्मिके वसेद् ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।५१

जहाँ बहुत अधार्मिक लोग निवास करते हों वहाँ नहीं रहना चाहिए।

जहाँ बुरी-बुरी बीमारियों से पीड़ित अधिक लोग निवास करते हों वहाँ तो बिलकुल नहीं रहना चाहिए।

न कुर्वीत वृथा चेष्टाम् ।५२

निरर्थक चेष्टाएँ नहीं करनी चाहिए।

न जातु स्यात् कुतूहली ।५३

कुतूहली कभी नहीं होना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में "यह क्या है ? वह क्या है ?" आदि बातें कुतूहल के साथ नहीं पूछते रहना चाहिए।

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेत्, न च क्ष्वेडेत्, न च रक्तो विरावयेत् ।।५४

अशास्त्रीय नृत्य गीत एवं वाद्य का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

बाँहों से ताल नहीं बजाना चाहिए।

उमंग में आकर पशु-पक्षियों कीं भाँति आवाज नहीं करनी चाहिए।

न छिन्द्यान्नख-लोमानि, दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ।५५

नख और लोम को नह से नहीं काटना चाहिए।

---

५१. मनुस्मृति अ० ४.६० ।
५२-५३. ,, ,, ,, ६३ ।
५४. ,, ,, ,, ६४ ।
५५. ,, ,, ,, ६९ ।

दाँतों से नख नहीं उपाटना चाहिए।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ।५६

किसी के साथ सूखा वैर और विवाद नहीं करना चाहिए।

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ।।५७

बिना आवश्यकता के अपनी इन्द्रियों तथा गुप्त स्थान के केशों का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं दम्भं च मानं च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ।।५८

नास्तिक नहीं होना चाहिए।

वेदों तथा देवताओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

अन्य लोगों के साथ घृणा, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध और क्रूरता नहीं करनी चाहिए।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।५९

धर्म के पथ पर चलने से यदि कष्ट भी हो तो भी अधर्म करने का विचार नहीं करना चाहिए।

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाऽप्यसुखोदर्कं लोक-विक्रुष्टमेव च ।।६०

---

५६. मनुस्मृति अ० ४.१३९ ।
५७. ,, ,, ,, १४४ ।
५८. ,, ,, ,, १६३ ।
५९. ,, ,, ,, १८९ ।
६०. ,, ,, ,, १७६ ।

ऐसा अर्थोपार्जन और विषयोपभोग नहीं करना चाहिए जो धर्म से रहित हो अर्थात् अधर्म के द्वारा प्राप्त हो।

उस धर्म पर भी नहीं चलना चाहिए जो परिणाम में दुःखदायी और समाजविरुद्ध हो। जैसे—कुटुम्बी का सर्वस्वदान और यज्ञ में मांस से आहुति आदि।

योऽन्यथा सन्तमात्मानम् अन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥६१

जो व्यक्ति सज्जनों के सामने, समाज में, अपना वास्तविक परिचय न देकर किसी स्वार्थसाधन के लिए दूसरे रूप में परिचय देता है वह अत्यन्त पापी है और अपना ही अपहरण करने वाला चोर है।

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परनिन्दया।६२

दूसरों की निन्दा करके अपनी प्रशंसा प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

असत् शास्त्रं असद्वादं असत्सेवां च वर्जयेत्।६३

हानिकर ग्रन्थों का अध्ययन अवलोकन नहीं करना चाहिए।
अश्लील, असभ्यतापूर्ण तथा अनुचित बातें नहीं करनी चाहिए।
नीच पुरुषों की सेवा तथा संसर्ग नहीं करना चाहिए।

न धर्मं ख्यापयेत् विद्वान् नाऽधर्मं गूहयेदपि।६४

बुद्धिमान् व्यक्ति को न तो अपने किये हुए धर्मकार्यों को जनता में प्रचारित करना चाहिए और न यदि कोई अधर्म हो जाय तो उसे छिपाना चाहिए।

---

६१. मनुस्मृति अ० ४.२५५।
६२. महाभारत शान्तिपर्व अ० २८७।
६३. ब्रह्मपुराण अ० १११।
६४. कूर्मपुराण उपरिभाग अ० १६।

यदि कोई पाप हो जाय तो बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि उसे छिपावे नहीं।

नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत् ।[६५]

हमेशा मँगनी माँगने का अभ्यास नहीं रखना चाहिए।

जिससे एक बार मँगनी माँग लें उससे पुनः (शीघ्र ही) दूसरी मँगनी नहीं माँगनी चाहिए।

अस्थाने शयनं स्थानं स्मयनं यानं गानं स्मरणम्
इति च वर्जयेत् ।[६६]

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर शयन नहीं करना चाहिए।

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर खड़ा नहीं होना चाहिए।

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर हँसना-मुसकराना नहीं चाहिए।

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर जाना नहीं चाहिए।

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर गाना नहीं चाहिए तथा—

अनुचित स्थान एवं अनुचित अवसर पर किसी बीती बात का स्मरण नहीं करना चाहिए और न कराना चाहिए।

आत्मप्रशंसां परगर्हाम् इति च वर्जयेत् ।[६७]

न अपनी प्रशंसा करनी चाहिए और न दूसरे की निन्दा करनी चाहिए।

सोपानत्कश्च आसनाऽशन-शयनाभिवादन-नमस्कारान्
वर्जयेत् ।[६८]

---

६५. कूर्मपुराण।

६६. मैत्रायणी मानवगृह्यसूत्र १.२.१९।

६७. आपस्तम्बधर्मसूत्र, प्रथम प्रश्न।

६८. ,, ,,

जूता पहने हुए आसन (बैठना) अशन (भोजन) शयन (सोना) अभिवादन (गुरुजनों को प्रणाम) तथा नमस्कार (गुरुओं से अतिरिक्त श्रेष्ठ पुरुषों को नमस्कार) नहीं करना चाहिए।

न शिश्नोदर-पाणि-पाद-वाक्-चक्षुश्चापलानि कुर्यात्।६९

शिश्न (मूत्रेन्द्रिय) उदर (पेट) पाणि (हाथ) पाद (पैर) वाक् (वाणी) तथा चक्षु (आँख) इन इन्द्रियों को चपल नहीं बनाना चाहिए। तात्पर्य यह कि इन पर संयम रखना चाहिए जिससे कि इनके द्वारा अनुचित काम न हों।

न स्तेनः स्यात् न वार्धुषी।७०

न चोर होना चाहिए न वार्धुषी। वार्धुषी उस पुरुष को कहते हैं जो ऋण का सूद-दरसूद लेता है और उसी से जीता है।

विरुद्धं वर्जयेत् कर्म।७१

देश काल जाति समाज अवस्था तथा व्यवसाय आदि के विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए।

गृहे पररहस्यानि नैवोपश्रृणुयाद् बुधः।७२

किसी के घर जाकर दूसरों की गुप्त बातों को नहीं सुनना चाहिए।

आत्मानं न शपेद् रोषात्।७३

क्रोध से अपने आपको शाप नहीं देना चाहिए।

सुहृन्मरणमार्त्ति वा स्वयं न श्रावयेद् बुधः।७४

---

६९. आपस्तधर्मसूत्र, प्रथम पत्र।

७०. याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय।

७१. ,, ,,

७२-७७. देवलस्मृति।

किसी अपने मित्र की मृत्यु तथा पीडा के समाचार को स्वयं नहीं सुनाना चाहिए।

प्राणिनो हिंसितव्याश्च क्लिष्टघातं न घातयेत्।७५

यदि किन्हीं प्राणियों की हिंसा भी करनी हो तो उन्हें क्लेश देकर नहीं मारना चाहिए।

अपण्यं कूटपण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत्।७६

विक्री करने में अपण्य (खराब वस्तुओं का विक्रय) तथा कूटपण्य (भाव तराजू एवं तौल आदि में छल-कपट) नहीं करना चाहिए।

कारयित्वा स्वकर्माणि पश्चात् कारून्न वञ्चयेत्।७७

मजदूरों से काम कराकर पीछे मजदूरी देने में उनसे छल-कपट या धोखा नहीं करना चाहिए।

तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम्।७८

अपनी कहीं निन्दा होती हो तो उसे चुपचाप सुन लेना चाहिए, वहाँ कुछ उत्तर नहीं देना चाहिए। और फिर पीछे सुधार के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यति लालयेत्।७९

न तो इन्द्रियों को उचित उपभोग से रोककर उन्हें पीड़ा देनी चाहिए और न तो अनुचित उपभोग के लिए छूट ही देनी चाहिए।

न स्पर्धेत वलीयसा।८०

अपने से बलवान् व्यक्ति के साथ बराबरी नहीं करनी चाहिए।

उपेक्षेत प्रनष्टं यत्।८१

७८.-यमस्मृति।

७९-९०. शुक्रनीति, अ० ३।

जो वस्तु नष्ट हो चुकी उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

गुप्तं जिघांसवे नैव विज्ञातमपि दर्शयेत् ।८२

किसी छिपे हुए व्यक्ति को, जानते हुए भी, यदि कोई मारने के लिए ढूँढता हो तो, नहीं बतलाना चाहिए। (यह साधारण अपराधी के लिए है)।

जायापत्योश्च पित्रोश्च भ्रात्रोश्च स्वामि-भृत्ययोः ।
भगिन्योः मित्रयोर्भेदं न कुर्याद् गुरुशिष्ययोः ॥८३

पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-भाई, स्वामी-सेवक, बहिन-बहिन, मित्र-मित्र और गुरु-शिष्य में फूट नहीं डालनी चाहिए।

संलापं नैव शृणुयात् गुप्तः कस्यापि सर्वदा ।८४

कभी भी किसी की बातचीत या सलाह छिप कर नहीं सुनना चाहिए।

पराधीनं नैव कुर्यात् तरुणी-धन-पुस्तकम् ।८५

स्त्री, धन तथा पुस्तक को दूसरों के अधीन नहीं रखना चाहिए।

मार्गं विरुध्य न स्थेयम् ।८६

रास्ता रोक कर नहीं बैठना चाहिए।

परवेश्मगतः तत् स्त्रीवीक्षणं नैव कारयेत् ।८७

दूसरे के घर जाकर उस घर की स्त्रियों को नहीं निहारना चाहिए।

नान्याधिकारमन्विच्छेत् ।८८

दूसरे का अधिकार हड़पने का इरादा नहीं रखना चाहिए।

न विद्यया न शौर्येण धनेनाभिजनेन च ।
न बलेन प्रमत्तः स्यात् चातिमानी कदाचन ॥८९

विद्या, शौर्य, धन; कुल तथा बल इनसे कभी प्रमत्त नहीं होना चाहिए और इनका अत्यन्त अभिमान नहीं करना चाहिए।

परद्रव्यं क्षुद्रमपि नादत्तं संहरेदणु ।९०

दूसरे का द्रव्य बहुत साधारण और बहुत थोड़ा भी हो तो उसे बिना उसके दिये (या बिना उससे पूछे) नहीं लेना चाहिए।

न देवचरितं चरेत् ।९१

देवताओं के चरित्र का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

क्षुद्रे गुह्यप्रकाशम् आत्मवान् न कुर्यात् ।९२

ज्ञानवान् पुरुष को क्षुद्र लोगों से अपनी गुप्त बातों को नहीं प्रकाशित करना चाहिए।

कदाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ।९३

कभी भी सच्चरित्रता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

सत्यमपि अश्रद्धेयं न वदेत् ।९४

ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जिस पर किसी को विश्वास न हो।

मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ।९५

जो बातें मर्यादा के बाहर हों—सर्वथा अविश्वनीय हों—उन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

सतां मतं न अतिक्रामेत ।९६

सत्पुरुषों की सम्मति का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ।९७

९१-११४. चाणक्यसूत्र।

जो लोग विश्वास करने योग्य न हों उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ।९८

अपनी घरेलू गोपनीय बातों को प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

"क्षन्तव्यम्" इति पुरुषं न बाधेत ।९९

किसी अपराध को क्षमा कराने के लिए किसी पर विशेष दवाव नहीं डालना चाहिए।

मूर्खेषु विवादो न कार्यः ।१००

मूर्खों के साथ विवाद नहीं करना चाहिए।

पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ।१०१

दूसरों की रहस्यमयी बातों को नहीं सुनना चाहिए।

परविभवेषु आदरो न कर्तव्यः ।१०२

दूसरों की सम्पत्ति पर आदरबुद्धि नहीं प्रकट करनी चाहिए। किसी की कोई वस्तु देखकर 'यह तो बहुत अच्छी चीज है, आप कहाँ से लाये हैं ? कहाँ पाये हैं' इत्यादि बातें नहीं करनी चाहिए।

पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ।१०३

दूसरे के पलाल तक का भी अपहरण नहीं करना चाहिए।

न म्लेच्छभाषणं शिक्षेत ।१०४

म्लेच्छों की तरह असभ्य ढंग से बातें करना नहीं सीखना चाहिए।

कदापि मर्यादां न अतिक्रमेत् ।१०५

कभी भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

मतिमत्सु मूर्ख-मित्र-गुरु-वल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ।१०६

बुद्धिमान्, मूर्ख, मित्र, गुरु एवं प्रियजनों के साथ विवाद नहीं करना चाहिए।

रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेद् गुरुं दैवं च ।१०७

राजा, गुरु एवं देवता के समीप खाली हाथ नहीं जाना चाहिए।

न कदापि देवता अपमन्तव्या ।१०८

कभी भी देवता का अपमान नहीं करना चाहिए।

न खलत्वम् उपेयात् ।१०९

दुष्ट स्वभाव का नहीं होना चाहिए।

प्रियमपि अहितं न वक्तव्यम् ।११०

ऐसी प्रिय बात भी नहीं बोलनी चाहिए जो अहितकर हो।

परायत्तेषु उत्कण्ठां न कुर्यात् ।१११

जो बातें दूसरों के अधीन या अधिकार में हो उनके लिए उत्कण्ठित तथा अधिक लालायित नहीं होना चाहिए।

दैवायत्ते न शोचेत् ।११२

जो बात सर्वथा दैव के अधीन हों उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए।

व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ।११३

व्यवहार में किसी के साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए।

न स्यात् कूटसाक्षी ।११४

झूठी गवाही नहीं देनी चाहिए।

न पथि मूत्रपुरीषं शिलां च समुत्सृजेत् ।११५

---

११५. हारीतस्मृति ।

रास्ते पर पेशाब पैखाना तथा ईंट पत्थर कंकड़ आदि नहीं फेंकना चाहिए।

कुलात् कुलं रहस्यार्थी सञ्चरेन्नानिमित्ततः ।११६

बिना मतलब के केवल दूसरों की गुप्त बातों को जानने के लिए इस घर से उस घर नहीं घूमते रहना चाहिए।

घर्षयेन्न पदं पदा ।११७

पैर से पैर को नहीं रगड़ना चाहिए।

प्रेङ्खोलनं च पादयोः ।११८

पैरों को हिलाते नहीं रहना चाहिए।

पृष्ठतश्च आत्मनः पाणी न संश्लेषयेत् ।११९

पीठ की ओर अपने दोनों हाथों को नहीं बाँधे रहना चाहिए।

न अनर्मपरीहासः कर्तव्यः ।१२०

बिना दिल्लगी की बात के हँसी-परिहास नहीं करना चाहिए।

पदा पादस्य प्रक्षालनम् अधिष्ठानम् च वर्जयेत् ।१२१

पैर से पैर नहीं धोना चाहिए और पैर के ऊपर पेर नहीं रखना चाहिए।

---

११६. वृद्धमनु०।

११७. ,, ,,

११८. ,, ,,

११९. आपस्तम्बधर्मसूत्र०।

१२०. ,, ,,

१२१. ,, ,,

न इष्टकाभिः फलं पातयेत् ।१२२

ईंट से मारकर फल नहीं गिराना चाहिए।

न फलेन फलम् ।१२३

फल से मारकर फल नहीं गिराना चाहिए।

न संहताभ्यां पाणिभ्यां शिर उदरं च कण्डूयेत् ।१२४

दोनों हाथों से शिर और पेट नहीं खुजलाना चाहिए।

न अदृष्टं दृष्टतो ब्रुवीत ।१२५

जिसे स्वयं देखा न हो उसे "मैंने देखा है" ऐसा नहीं कहना चाहिए।

न अश्रुतं श्रुततः ।१२६

जिसे स्वयं सुना न हो उसे "मैंने सुना है" ऐसा नहीं कहना चाहिए।

न अश्लीलं कीर्तयेत् ।१२७

अश्लील बातें नहीं करनी चाहिए।

न नृशंसवादी स्यात् ।१२८

क्रूर वचन नहीं बोलना चाहिए।

नाकस्मादप्रियं वदेत् ।१२९

अकस्मात् किसी से अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिए।

न कश्चित् मर्मणि स्पृशेत् ।१३०

१२२-१२३. वशिष्ठधर्मशास्त्र० अ० ६।

१२४. विष्णुस्मृति अ० ६१.५२।

१२५-१२६. गोभिलगृह्यसूत्र।

१२७-१३०. विष्णुस्मृति ७१।

किसी के मर्म पर आघात करने वाली—हृदय में चुभने वाली बातें नहीं कहनी चाहिए।

न ब्रूयात् परतन्त्राणि प्रकाशं जनसंसदि ।१३१

दूसरों की गुप्त बातों को जनसमूह में नहीं प्रकट करना चाहिए।

गुह्याङ्गामेध्यशब्दानां वचनं निष्ठुरं विदुः।
यदन्यद् वा वचो नीचं स्त्रीपुंसोर्मिथुनाश्रयम् ।।१३२

गुप्ताङ्गवाचक शब्द, विष्ठा आदि अपवित्र वस्तुओं के वाचक शब्द, तथा स्त्री-पुरुष के मैथुनवाचक शब्द निष्ठुर एवं नीच माने जाते हैं। अतः ऐसे शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। ऐसे शब्दों का अधिकांश लोग साधारण बात में भी उच्चारण किया करते हैं।

कलहे न सहायः स्यात् ।१३३

झगड़ा बढ़ाने में सहायक नहीं होना चाहिए। जहाँ तक हो सके झगड़ा मिटाने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः।
ययाऽस्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ।।१३४

दुखी अवस्था में भी कठोर वचन नहीं बोलना चाहिए।

ऐसा काम करने का विचार नहीं करना चाहिए जिससे किसी के साथ द्रोह हो जाने की सम्भावना न हो।

ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए जिससे लोगों को उद्वेग और पीड़ा हो।

---

१३१. विष्णुस्मृति ७१।

१३२. गृहस्थरत्नाकर।

१३३. शुक्रनीति।

१३४-३५. मनुस्मृति २.१६१।

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।१३५

किसी को मारने के लिए तुरन्त डण्टा नहीं उठा लेना चाहिए और क्रोध में आकर तुरत चला नहीं देना चाहिए।

आक्रोशन-विमानाभ्यां नाबुधान् बोधयेद् बुधः ।१३६

यदि किसी नासमझ व्यक्ति को कुछ कहना अथवा समझाना हो तो गाली देकर तथा अपमानसूचक शब्द कह कर कोई बात नहीं समझानी चाहिए।

न दर्शयेत् स्वाधिकार-गौरवं तु कदाचन ।१३७

अपने अधिकार तथा पद का गौरव नहीं दिखाना चाहिए। अर्थात् किसी अधिकारी एवं ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित पुरुष को आवेश में आकर "मैं अमुक हूँ, ऐसा कर डालूँगा" इस तरह को बातें नहीं कहनी चाहिए।

विद्वेषं च विनाशं च मनसापि न चिन्तयेत् ।१३८

मन से भी किसी के साथ द्वेष करने तथा किसी का कुछ नुकसान कर देने की बात नहीं सोचनी चाहिए।

एकवारमप्यशितं यस्यान्नं ह्यादरेण च ।
तदिष्टं चिन्तयेन्नित्यम् ।।१३९

एक बार भी जिसका प्रेमपूर्वक प्रदत्त अन्न खाया हो उसके कल्याण की निरन्तर भावना रखनी चाहिए।

लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः ।१४०

---

१३६. महाभारत, शान्ति० अ० २९९.९।

१३७-१४०. शुक्रनीति।

बुद्धिमानों को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे किसी व्यक्ति अथवा समाज को कष्ट हो।

क्षुद्रान् क्षुद्राचरितांश्च देशान्न सेवेत।१४१

क्षुद्र तथा क्षुद्रलोगों द्वारा आवाद किये हुए स्थानों में नहीं रहना चाहिए।

अनाक्रोशकः।१४२

किसी को कोसना या गाली नहीं देना चाहिए।

अकुलंकुलः।१४३

विना प्रयोजन के इस घर से उस घर नहीं घूमते रहना चाहिए।

ऐहिकः।१४४

बिना आवश्यकता के पुरानी बातों को बराबर नहीं कहते रहना चाहिए।

क्रूरैरनार्यैः परिहासः कथञ्चन न कार्यः।१४५

क्रूर और अनार्य (नीच) पुरुषों के साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए।

न करं मस्तके दद्यात् मस्तकं न करे तथा।१४६

शिर पर हाथ या हाथ पर शिर रखकर नहीं बैठना चाहिए।

न जानुनोः शिरो धार्यम्।१४७

---

१४१. सत्याषाढश्रौतसूत्र २६.८.६०।

१४२. कौपीतकी गृह्यसूत्र० अ० ३ खण्ड ११.९।

१४३-१४४. ,, ,, ,, ,, ११.१०-११।

१४५-१४६. ,, ,, ,, ,,

१४७. वाल्मीकिरामायण, अरण्य० १८.१९।

जानु (ठेहुन) के ऊपर शिर नहीं रखना चाहिए। यह सब शोक-चिन्ता आदि के सूचक कुलक्षण हैं।

नोत्पाटयेत् लोमनखं दशनेन कदाचन ।१४८

शरीर का रोआँ और नख दाँत से नहीं उखाड़ना चाहिए।

ऋणानामप्रदानं च मिथ्यावृद्ध्युपजीवनम्।
निन्दितानां धनादानं साध्वीकन्योक्तिदूषणम् ॥१४९
विषमारणयन्त्राणां प्रयोगो मूलकर्मणाम्।
उच्चाटनाभिचाराश्च राग - विद्वेषण - क्रियाः ॥१५०

ऋण लेकर पुनः उसे ठीक समय से न लौटाना,

छल-कपट से सूद-दरसूद बढ़ाकर उससे जीविका चलाना,

निन्दनीय लोगों का अन्न-धन आदि लेना,

सच्चरित्र कन्याओं पर भी कलङ्क लगाना,

किसी पर विष का, मारणयन्त्रों का तथा जादू-टोना आदि का प्रयोग करना,

उच्चाटन का प्रयोग करना तथा—

लोगों में रागद्वेष तथा वैरविरोध आदि फैलाना,

यह सब काम निन्दनीय माने गये हैं अतः इन्हें नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार—

जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु।
व्रात्यता व्रतसंत्यागः सर्वाहार-निषेवणम् ॥

१४८-१४९. बृहत्पराशरसंहिता, अ० ६.२७६।

१५०. स्कन्दपुराण० ब्राह्मखण्ड० धर्मारण्यखण्ड० अ० ६.७१।

असत् शास्त्राभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।१५१

केवल जीभ और इन्द्रिय की तृप्ति के लिए ही काम करना,

उचित समय पर यज्ञोपवीत संस्कार न करना,

संस्कार हो जाने पर भी उसके नियमों का पालन न करना,

बिना किसी सोच-विचार के सब प्रकार का आहार करना, चाहे वह किसी का दिया हुआ हो और कैसा भी हो,

असत् शास्त्रों एवं असत् ग्रन्थों का अध्ययन करना तथा—

किसी वाद-विवाद में केवल शुष्क तर्क का अवलम्बन करना, कठहुज्जत करना,

ये सब काम निषिद्ध हैं अतः इन्हें नहीं करना चाहिए।

स्त्री-पुत्र-मित्र-सुहृदाम् आशाच्छेदकराश्च ये।
जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयभेदिनः ।।१५२
भेत्ता तडागकूपानां संक्रमाणां रसस्य च।
एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ।।१५३

जो लोग स्त्री, पुत्र, मित्र और सज्जन पुरुषों को आशा देकर पुनः उसका भंग कर देते हैं,

जो लोग सबसे अप्रिय बोला करते हैं,

जो लोग क्रूर कठोर और निर्दय होते हैं,

जो लोग अपने वादों और मर्यादाओं को तोड़ देते हैं,

जो लोग तालाब, कूआँ तथा चौराहा तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया करते हैं तथा—

१५१-१५२. स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कौमारीखण्ड, अ० ४१.५१-५२।
१५३. ” ” ” ” ५३-५४।

जो लोग एक पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठे हुए लोगों को भोजन परोसने में भेद करते हैं,

ये सब लोग निन्दनीय एवं नरकगामी माने गये हैं अतः ऐसा काम नहीं करना चाहिए।

कूट-वेष-क्रियाचाराः कूट-संव्यवहारिणः ।
कूटशासनकर्तारः कूटयुद्धकराश्च ये ॥१५४
निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः ।
मिथ्याप्रसादितो वाक्यम् आकर्णयति यः शनैः ॥१५५
चपलश्चापि मायावी शठो मिथ्याविनीतकः ।
ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ॥१५६
भृत्यान् अतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाऽश्नन्ति बुभुक्षितान् ।
नियमान् स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ॥१५७

जो लोग दूसरों को ठगने के लिए कपटी वेष धारण करते हैं,
जो लोग सब काम कपटपूर्ण किया करते हैं,
जो लोग कपटपूर्ण आचरण करते हैं,
जो लोग व्यवहार अर्थात् लेन-देन में छल-कपट किया करते हैं,
जो लोग कूट शासन करते हैं,
जो लोग कूट युद्ध करते हैं,
जो लोग नौकरों के साथ अत्यन्त निर्दयता का व्यवहार करते हैं,
जो लोग पशुओं को अत्यन्त सताया करते हैं,
जो लोग चापलूसी करने पर बातें सुनते हैं,

१५४-१५५. स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कौमारीखण्ड, अ० ५८-५९।
१५६-१५७. ,, ,, ,, ,, ६४-६८।

जो लोग चपल होते हैं,

जो लोग मायावी अर्थात् छली-कपटी होते हैं,

जो लोग शठ अर्थात् दुष्ट एवं दुर्विनीत होते हैं,

जो लोग मिथ्याविनीत अर्थात् ऊपर-ऊपर से बहुत मीठे और बहुत नम्र परन्तु भीतर से बहुत घातक होते हैं,

जो लोग, वुभुक्षित स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुर्बल, रोगी, नौकर, अतिथि और भाई-बन्धुओं को छोड़ कर स्वयं भोजन कर लेते हैं,

जो लोग स्वयं नियम बना कर उन्हें तोड़ देते हैं, और—

जो लोग अपनी इन्द्रियों को कावू में नहीं रखते,

ये सब लोग दुराचारी माने गये हैं अतः ऐसा काम नहीं करना चाहिए।

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः।
एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥१५८

यदि मनुष्य को अपने दुश्चरित्र—अपने पाप के कारण कोई बुरा फल भोगना पड़े तो उसे उसका दोष दूसरे के शिर नहीं मढ़ना चाहिए। बहुत लोग बुराई तो स्वयं करते हैं, पर जब उसका दुष्परिणाम होता है तो दोष दूसरे को लगा देते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए।

न अपरीक्षितमुपयुञ्ज्यात् ।१५९

बिना ठीक देखे सुने किसी वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिए।

द्वितीयमपराधं न कस्यचित् क्षमेत ।१६०

---

१५८. महाभारतभीष्मपर्व, अ० १५.२।

१५९-१६०. विष्णुस्मृति अ० ३.६२-६६।

किसी के दूसरे अपराध को नहीं सहन करना चाहिए। किसी के द्वारा अपराध किये जाने पर आगे पुनः अपराध न करने के लिए चेतावनी देते हुए उसे क्षमा किया जा सकता है पर उसी के द्वारा दुबारा अपराध किये जाने पर उसे क्षमा नहीं करना चाहिए।

परशय्यासनोद्यान-गृहयानानि वर्जयेत् । अदत्तानि ।१६१

दूसरों की शय्या, आसन, उद्यान, गृह तथा सवारी आदि का बिना उनके दिये या बिना उनसे पूछे उपयोग नहीं करना चाहिए।

न वृथा शपथं कुर्यात् स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।१६२

छोटी-छोटी बातों के लिए बेकार शपथ नहीं करना चाहिए।

नेशे बलस्येतिचरेदधर्मम् ।१६३

मैं "बलवान् हूँ, समर्थ हूँ" ऐसा समझ कर धर्म एवं न्याय विरुद्ध काम नहीं करना चाहिए।

न त्वेवात्माऽवमन्तव्यः पुरुषेण विपश्चिता ।
न ह्यात्मपरिभूतस्य भूतिर्भवति शोभना ।।१६४

बुद्धिमान् पुरुष को अपने को अपमानित तथा हीन नहीं समझना चाहिए। क्योंकि जो व्यक्ति अपने को हीन समझ लेता है उसकी अच्छी प्रगति नहीं होती, वह आगे नहीं बढ़ पाता।

●

---

१६१. याज्ञवल्क्यस्मृति १.१६०।

१६२. मनुस्मृति ८.१११।

१६३. महाभारत २५.११-१६।

१६४. ,, २५.५८।

५. घर की सज्जा एवं स्वच्छता

भवनमासन्नोदकं वृक्षवाटिकावद् विभक्तकर्मकक्षं

द्विवासगृहं कारयेत् ।[१]

घर ऐसा होना चाहिए जिसके समीप ही कूआँ आदि जलके साधन हों, आस-पास में पेड़ तथा फुलवारी लगी हो तथा पाक, भोजन, शयन, स्नान, अध्ययन तथा उपासना आदि विभिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग कमरे वने हों।

वाह्ये च वासगृहे सुश्लक्ष्णम्, उभयोपधानं, मध्ये विनतं,

शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात्; प्रतिशय्यिका च ।[२]

घर के वाहर एक और वासगृह (बँगला) बनवाना चाहिए। उसमें सोने तथा आराम करने के लिए ऐसे पलंग चौकी आदि साधन रखने चाहिएँ जो सुन्दर और मुलायम हों, जिन पर शिर तथा पैर के लिए दो तकिये हों, जो मध्य में ऊँचे नहीं बल्कि कुछ झुके हुए हों, और जिन पर सफेद चादर बिछे हों। उसके साथ ही एक छोटी पलंग या खटिया-मचिया भी पास में रखनी चाहिए।

तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् ।[३]

पलंग के शिरहाने की ओर दर्भासन पर देवमूर्ति या देवता के चित्र रखना चाहिए और सोते समय देवता का ध्यान कर लेना चाहिए।

वेदिका च ।[४]

पलंग के बगल में पलंग के समान ही ऊँचाई वाली काठ या पत्थर

१-६. वात्स्यायन कामसूत्र, अधि० १ अ० ४ ।

की एक चौकी रहनी चाहिएं जिस पर चन्दन फूल-माला एवं पान आदि सामग्री रखी जा सके।

भूमौ पतद्ग्रहः।५

पलंग के नीचे जमीन पर पान खाकर थूकने के लिए पीकदान रखी रहनी चाहिए।

नागदन्तावसक्ता च वीणा, चित्रफलकं, वर्तिकासमुद्गको यः कश्चित् पुस्तकः, कुरण्टकमालाश्च।६

घर में खूँटी पर एक वीणा भी, कपड़े से ढँकी हुई, लटकायी रहनी चाहिए। चित्र बनाने के सामान—कागज, रंग एवं ब्रश आदि भी घर में रहना चाहिए। अपनी रुचि की कोई पुस्तक भी रखी रहनी चाहिए तथा कुरण्टक पुष्प की माला भी रखनी चाहिए जो जल्दी मुर्झाती नहीं।

वेश्म च शुचि, सुसंमृष्टस्थानम्, विरचितविविधकुसुमम्, श्लक्ष्णभूमितलम्, हृद्यदर्शनम्, त्रिषवणाचरितबलिकर्म, पूजितदेवायतनं कुर्यात्।७

घर को सदा पवित्र एवं साफ-सुथरा रखना चाहिए, घर के प्रत्येक स्थान में झाड़ू लगा रहना चाहिए, घर के विभिन्न भागों में फूलों से तरह-तरह की रचनाएँ बनी रहनी चाहिएँ, घर के निचले भाग को सदा चिकना रखना चाहिए, घर को। दर्शनीय बनाये रहना चाहिए, तीनों समय बलिकर्म किया जाना चाहिए तथा घर में जो देवस्थान या देव-मन्दिर हो उसमें नियमित रूप से प्रतिदिन पूजा होती रहनी चाहिए।

अनुद्वारं गृहद्वारं (न कुर्वीत)।८

---

७. वात्स्यायन कामसूत्र, अधि० ४ अ० १।

८-९. गोभिलगृह्यसूत्र ४.७.१८-१९।

अपने घर का दरवाजा ऐसा रखना चाहिए जो किसी दूसरे घर के दरवाजे के सामने न पड़े।

यथा न संलोकी स्यात् ।९

घर का दरवाजा ऐसा रखना चाहिए जिससे घर के भीतरी भाग को बाहर के लोग न देख सकें।

उज्ज्वलानि विधेयानि गृहोपकरणानि च ।
गृहं मार्जनसेकाद्यैः स्वच्छं कार्यं दिने दिने ।।१०

घर के समस्त उपकरणों को–वस्तुओं को–उज्ज्वल (चमकदार) बना कर रखना चाहिए तथा घर को झाड़-बहार कर तथा पानी छिड़क कर प्रतिदिन स्वच्छ करना चाहिए।

प्रातःकाले स्त्रिया कार्यं गोमयेनोपलेपनम् ।
प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति ।।११

स्त्रियों को प्रतिदिन प्रातःकाल घर को गोमय से लीपना चाहिए। ऐसा करने से उन्हें दुःख का सामना नहीं करना पड़ता है। (यह नियम फर्श के लिए नहीं है। फर्श को प्रतिदिन प्रातः धोना या गीले कपड़े से पोंछना चाहिए)।

स्पृशन्ति रश्मयो यस्य गृहं सम्मार्जनादृते ।
भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः ।।१२

जिस मनुष्य के घर को झाड़ू-बहारू लगाने के पूर्व ही सूर्य की किरणें स्पर्श कर लेती हैं उसके पितर एवं देवमाताएँ उस घर से विमुख हो जाती हैं। अतः सूर्योदय से पूर्व ही घर की सफाई हो जानी चाहिए।

१०. स्कन्दपुराण, वैष्णव० २२.५६-५७।

११-१२. विष्णुपुराण, तृ० अं०, ११.९-१०।

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च समुत्सृजेत् ।
पात्रावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे ॥१३

मूत्र एवं पुरीष घर से दूर जाकर करना चाहिए ।

बरतन धोने के पानी तथा जूठे अन्न आदि को घर के आँगन में नहीं फेंकना चाहिए ।

निष्ठीवनं च श्लेष्माणं गृहाद् दूरे विनिक्षिपेत् ।१४

थूक एवं खँखार आदि घर से दूर फेंकना चाहिए ।

शौचकार्येषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ।
न विलम्बेत मेधावी ॥१५

सफाई एवं स्वच्छता के सभी कामों में, वे बड़े हों या छोटे, देरी नहीं करनी चाहिए । कहीं गन्दगी होने पर उसे तुरन्त साफ कर देना चाहिए ।

---

१३. महाभारत शान्तिपर्व २२८.६१ ।

१४. स्कन्दपुराण काशी० ३८.८८ ।

१५. ब्रह्मपुराण २२१.१०२ ।

६. शरीर एवं स्वास्थ्य की रक्षा

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं च यत् ।
महता तत् प्रयत्नेन शरीरमिह पालयेत् ॥[१]

धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि शरीर से ही होती है अतः शरीर को बहुत सावधानी से सुरक्षित रखना चाहिए।

सर्वत एवात्मानं गोपायेत् ।[२]

सब प्रकार से अपने शरीर एवं स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए।

स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत् ।[३]

अपनी शक्ति का अनुमान करके किसी कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

न अतिसाहसमाचरेत् ।[४]

अति साहस नहीं करना चाहिए।

प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत् ।[५]

अपनी प्रकृति का बराबर ध्यान रखना चाहिए अर्थात् अपनी प्रकृति को ध्यान में रख कर कोई कार्य करना चाहिए।

न बुद्धीन्द्रियाणाम् अतिभारमादध्यात् ।[६]

---

१. ब्रह्मपुराण १३६.४० ।
२. गौतमधर्मसूत्र ९.३१ ।
३. ,, २.२४ ।
४. चाणक्यसूत्र अ० २.४३ ।
५-१९. चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८ ।

बुद्धि-इन्द्रियों पर बहुत अधिक भार नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से इन्द्रियाँ असमय में ही निर्बल और बेकार हो जाती हैं।

न एकः शून्यगृहं न च अटवीमनुप्रविशेत् ।७

अकेले भयंकर किसी शून्य गृह में अथवा जंगल में नहीं जाना चाहिए।

न व्यालान् उपसर्पेन्न द्रंष्ट्रिणो न विषाणिनः ।८

व्याल (साँप) दंष्ट्री (दाढ़ वाले जन्तु) तथा विषाणी (सींघ वाले) जन्तुओं के समीप नहीं जाना चाहिए।

न जलोग्रवेगम् अवगाहेत ।९

उग्र वेग से बहने वाले जल में स्नान नहीं करना चाहिए।

न अग्न्युत्पातमभितश्चरेत् ।१०

जहाँ आग लगी हो वहाँ उसके आस-पास नहीं घूमना चाहिए।

न उदके चिरं स्नायात् ।११

पानी में बहुत देर तक नहीं नहाना चाहिए।

न नक्तं अदेशे चरेत् ।१२

रात में अनुचित तथा भयंकर स्थानों में नहीं घूमना चाहिए।

न साहसातिस्वप्न-प्रजागर-स्नान-पानाऽशनानि आसेवेत ।१३

साहस, अधिक सोना, अधिक जागना, अधिक स्नान, अधिक पानी पीना तथा अधिक भोजन इनका सेवन नहीं करना चाहिए।

पुरोवाताऽतपाऽवश्यायाऽतिप्रवातान् जह्यात् ।१४

सामने से आने वाली तेज़ हवा, धूप, सर्दी, तथा आँधी आदि से बँच कर रहना चाहिए।

न गिरि-विषममस्तकेषु अनुचरेत् ।१५

पर्वतों के विषम—ऊँचे-नीचे शिखरों पर नहीं घूमना चाहिए।

न द्रुमम् आरोहेत ।१६

पेड़ पर नहीं चढ़ना चाहिए।

न कूलच्छायाम् उपासीत ।१७

नदी के अडार की छाया में नहीं बैठना चाहिए।

न असुनिभृतः अग्निम् उपासीत ।१८

असावधान होकर आग नहीं तापना चाहिए।

खट्वायां च न उपदध्यात् ।१९

खाट के ऊपर आग नहीं रखनी चाहिए।

न कूपम् अवरोहेत ।२०

कूएँ पर नहीं चढ़ना चाहिए।

न कूपम् अवेक्षेत ।२१

कूएँ में नहीं झाँकना चाहिए।

न गर्तम् अवेक्षेत ।२२

गड्ढे में नहीं झाँकना चाहिए।

नारोहेत् शिखरं नरः ।२३

वृक्षों मन्दिरों तथा मकानों की चोटियों पर नहीं चढ़ना चाहिए।

---

२०. आपस्तम्बधर्मसूत्र १.५.१५.२१।

२१. वशिष्ठस्मृति अ० १२।

२२. बौधायनस्मृति, द्वितीय प्रश्न, तृतीय अध्याय।

२३-२४. विष्णुपुराण।

प्रदीप्तं वेश्म न विशेत् ।२४

जिस घर में आग लगी हो उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिए।

विषमाऽरोहणाऽवरोहणानि वर्जयेत् ।२५

ऊँची-नीची जमीन पर नहीं चढ़ना-उतरना चाहिए।

प्रेषयोरन्तरेण न गच्छेत् ।

वत्सतन्तीं च नोपरि गच्छेत् ।२६

दो हिंडोले के बीच से नहीं जाना चाहिए।

बछड़े के पगहे के ऊपर पैर रख कर नहीं जाना चाहिए।

युद्ध्यतां वदताञ्चैव सर्वेषामपि सर्वदा ।

मध्येन नैव गन्तव्यम् ।२७

आपस में लड़ते हुए तथा बातचीत करते हुए लोगों के बीच से नहीं जाना चाहिए।

नैको गच्छेद् व्याल-व्याघ्र-चोरेषु च प्रवाधितुम् ।२८

साँप, वाघ-सिंह आदि हिंस्र जन्तु तथा चोर-डाकुओं को मारने के लिए अकेले नहीं जाना चाहिए।

नासहायो व्रजेद् रात्रौ ।२९

रात में बिना किसी साथी के अकेले नहीं जाना चाहिए।

---

२५. आपस्तम्बधर्मसूत्र १.११.२५।

२६. ,, ,, १०.१६.१५।

२७. बोधायनधर्मसूत्र।

२८. शुक्रनीति। ३.१६१।

२९. ,, ,,

कर्ण-नासिकयोः काष्ठं कण्डूति चापि नाचरेत् ।३०

कान और नाक में लकड़ी-तिनका आदि नहीं डालना चाहिए और उससे खुजलाना भी नहीं चाहिए।

स्पर्धेत न बलीयसा ।३१

अपने से बलवान् व्यक्ति से बराबरी नहीं करनी चाहिए।

न दुष्टयानानि आरोहेत् ।३२

खराब एवं टूटी-फूटी सवारियों पर नहीं चढ़ना चाहिए।

नावं च सांशयिकीं नाधिरोहेत् ।३३

जो नाय सन्देहयुक्त हो, उस पर नहीं चढ़ना चाहिए।

नाविनीतैः व्रजेद्धुर्यैः ।३४

जो घोड़ा, हाथी आदि सवारी विनीत अर्थात् सिखाये हुए न हों उन पर नहीं चढ़ना चाहिए।

शिर से भार नहीं ढोना चाहिए।

शकटात् पञ्चहस्तं तु दशहस्तं तु वाजिनः।
दूरतः शतहस्तं च तिष्ठेन्नागाद् वृषाद्दश ।।३५

---

३०. स्वस्थपुरुष।

३१. नीतिसंग्रह।

३२. ,, ,,

३३. वशिष्ठस्मृति १२-४२।

३४. मनुस्मृति ४.६८।

३५. शुक्रनीति ३।

गाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से सौ हाथ और बैल से दस हाथ दूर रहना चाहिए।

न भारं शिरसा वहेत् ।[३६]

शिर से भारी बोझ नहीं ढोना चाहिए।

कालं नियम्य कार्याणि ह्याचरेन्नान्यथा क्वचित् ।[३७]

समय का विभाग करके कार्यों को करना चाहिए ऐसा नहीं कि जब जो मन में आवे तभी किया करे।

न वेगान् धारयेद् धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः ।
न रेतसो न वातस्य न छर्द्याः क्षवथोर्न च ॥
नोद्‌गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः ।
न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च ॥[३८]

बुद्धिमान् पुरुष को पेशाब, पैखाना, वीर्य, वायु, वमन, छींक, ढंकार, जम्भाई, भूख, प्यास, आँसू, निद्रा और परिश्रम के कारण अधिक आने वाला श्वास—इनका जब वेग आवे तो उसे रोकना नहीं चाहिए। इनके वेगों को रोकने से अनेकानेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं।

व्यायाम-हास्य-भाष्याध्व-ग्राम्यधर्म-प्रजागरान् ।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥[३९]

---

३६. अष्टाङ्गहृदय २.३९।

३७. शुक्रनीति अ० ३.१४१।

३८. चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ७.३-४।

३९-४०. ,, ,, ,, ३५।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि व्यायाम, हँसी, भाषण, रास्ता चलना, स्त्रीप्रसङ्ग तथा जागरण आदि के उचित होते हुए भी इनका मात्रा से अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। उचित मात्रा में ही इनका सेवन करना चाहिए।

नाऽनृजुः क्षुयात्, नाद्यात्, न शयीत ।४०

टेढ़े-मेढ़े ढंग से न छींकना चाहिए, न खाना चाहिए और न सोना चाहिए।

तथा कर्मसु वर्तेत समर्थो धर्ममाचरेत् ।
यथा शरीरं न ग्लायेन्न् नेयान् मृत्युवशं तथा ।।४१

अस्वस्थता या असमर्थता की अवस्था में धर्म अथवा आचार की विशेष चिन्ता न कर इस प्रकार सब काम करना चाहिए जिससे कि शरीर को कोई कष्ट न हो तथा न कोई जीवन को खतरा हो। बाद में स्वस्थ तथा समर्थ होने पर धर्माचार का पूर्णरूप से पालन करना चाहिए।

---

४१. महाभारत शान्तिपर्व २६५.४१।

७. वेष-भूषा एवं प्रसाधन

नित्यं स्नानम् । द्वितीयकमुत्सादनम् । तृतीयकः फेनकः । चातुर्थकमायुष्यम् । सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः ॥[१]

प्रतिदिन स्नान करना चाहिए । दूसरे दिन उबटन लगाना चाहिए । तीसरे दिन फेनक साबुन आदि का उपयोग करना चाहिए और चौथे दिन हजामत बनवाना चाहिए । काँख के पसीने को बराबर पोंछते रहना चाहिए ।

क्लृप्त-केश-नख-श्मश्रुः दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।[२]

केश, नख एवं दाढ़ी बनवाये रहना चाहिए, शिष्टता से रहना चाहिए, सफेद वस्त्र धारण करना चाहिए तथा स्वच्छ रहना चाहिए ।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेष-वाग्-वृत्ति-सारूप्यम् आचरन् विचरेदिह ॥[३]

अपनी अवस्था के अनुरूप वेष धारण करना चाहिए ।
अपनी नौकरी-पेशा के अनुरूप वेष धारण करना चाहिए ।
अपनी धन-सम्पत्ति के अनुरूप वेष धारण करना चाहिए ।
अपनी योग्यता के अनुरूप वेष धारण करना चाहिए, तथा—
अपने कुल-देश-जाति के अनुरूप वेष धारण करना चाहिए ।

(इसी प्रकार अवस्था आदि के अनुरूप ही वाणी का भी प्रयोग करना चाहिए)

---

१. वात्स्यायन कामसूत्र अधि० १ अ० ४ ।

२. मनुस्मृति ४.५ ।

३. मनुस्मृति, अ० ४.१८ ।

नित्यम् अनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात् ।४

सदा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिए।

सदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। तथा—

शरीर को सदा सुगन्धित रखना चाहिए। सुगन्धित वस्तुओं के धारण तथा शरीर एवं वस्त्र की स्वच्छता से अपने को दुर्गन्धित होने से बचाये रहना चाहिए।

साधुवेषः ।५

भद्र पुरुषों का-सा वेष धारण करना चाहिए। अभद्र, अनुचित तथा बेढंगा नहीं।

उद्धतवेषधरो न स्यात् ।६

उद्दण्डतासूचक वेष नहीं धारण करना चाहिए।

न चामङ्गल्यवेषः स्यात् ।७

अमङ्गलसूचक वेष नहीं धारण करना चाहिए।

न रक्तमुल्वणं वासो न नीलं तत् प्रशस्यते ।८

अत्यन्त उत्कट रक्तवर्ण का तथा नीलवर्ण का वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए।—

वस्त्रोपानहमाल्योपवीतानि अन्यधृतानि न धारयेत् ।९

---

४. चरकसंहिता सूत्रस्थान, अ० ८।

५. ,, ,, ,, ,,

६. चाणक्य सूत्र।

७. मार्कण्डेयपुराण अ० ३४.८६।

८. ,, ,,

९. विष्णुस्मृति अ० ७१.४६।

दूसरों के पहिने हुए वस्त्र, जूता, माला तथा यज्ञोपवीत को नहीं पहिनना चाहिए।

न चातिविकृतं तथा ।[१०]

अत्यन्त विकृत, बेढंगा तथा विचित्र वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए।

अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ।
अन्यत् रथ्यासु देवानां अर्चायामन्यदेव हि ॥[११]

शयन के समय, बाहर जाने-आने के समय तथा पूजा-पाठ के समय भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण करना चाहिए।※

न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ।[१२]

रुपया-पैसा रहते हुए फटा-पुराना तथा गन्दा कपड़ा नहीं पहनना चाहिए।

शोभनं वासो भर्तव्यमिति श्रुतिः ।[१३]

सदा सुन्दर वस्त्र पहनना चाहिए ऐसी श्रुति की आज्ञा है।

---

१०. महाभारत अनु० १०४।

११. " " "

१२. मनुस्मृति अ० ४.३४।

१३. वाराहगृह्यसूत्र खं० ९.१७।

※ आपस्तम्बधर्मसूत्र में स्त्रीसहवास के लिए भी भिन्न वस्त्र धारण करने का विधान है। यथा —

स्त्रीवाससैव सन्निपातः स्यात् । २.१.२०।

वर्ज्यं च मलिनं वस्त्रं दशाभिश्च विवर्जितम् ।१४

गन्दा तथा बिना किनारी का कपड़ा नहीं पहनना चाहिए।

न चापि नीचीवासाः स्यात् न विपर्यस्तवस्त्रधृक् ।१५

धोती या साड़ी आदि इस तरह नहीं पहनना चाहिए कि वह बहुत नीचे तक लटका रहे और न कोई वस्त्र उलटे-पलटे ढंग से पहनना चाहिए।

काम्यं यशस्यमायुष्यं अलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम् ।
श्रीमत् पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बरधारणम् ।।१६

सुन्दर एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करने से शोभा बढ़ती है, यश होता है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, दरिद्रता नष्ट होती है, प्रसन्नता होती है, सौभाग्य बढ़ता है, सभाओं में सम्मान होता है और सबको अच्छा लगता है अतः सदा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिए।

धन्यं मङ्गल्यमायुष्यं श्रीमद् व्यसनसूदनम् ।
हर्षणं काम्यमोजस्यं रत्नाभरणधारणम् ।।१७

रत्न एवं आभूषण धारण करना धनवर्द्धक, मङ्गलकारक, स्वास्थ्य-रक्षक, शोभावर्द्धक, व्यसनों का निवारक, प्रसन्नताकारक, रुचिकर तथा बलवर्द्धक होता है अतः रत्न एवं आभूषण का धारण करना चाहिए।

विभवानुरूपम् आभरणम् ।१८

विभव के अनुरूप अलङ्कार धारण करना चाहिए।

१४.-१५. स्कन्दपुराण, माहेश्वर खं० अ० २१. १६४-१६३।

१६.-१७. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ५.९५,९७।

१८. चाणक्यसूत्र ५.३६।

वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम् ।
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम् ॥[१९]

चन्दन एवं सुगन्धित फूलमाला धारण करना वीर्यवर्द्धक, सुगन्ध-वर्द्धक, स्वास्थ्यप्रद, शोभावर्द्धक, पुष्टि और बलप्रद, मन को प्रसन्न रखने वाला तथा अलक्ष्मीनाशक होता है अतः चन्दन, इतर आदि सुगन्धि पदार्थ तथा सुगन्धि फूल-माला आदि धारण करना चाहिए।

न निर्गन्धोग्रगन्धि रक्तं च माल्यं बिभृयात् ।[२०]

बिलकुल गन्धशून्य, उत्कट गन्ध वाली तथा रक्तवर्ण की माला नहीं धारण करनी चाहिए।

बिभृयात् जलजं रक्तमपि ।[२१]

परन्तु यदि लाल कमल के फूल की बनी माला हो तो लाल माला भी धारण करना चाहिए।

चक्षुष्यं स्पर्शनहितं पादयोर्व्यसनापहम् ।
बल्यं पराक्रमसुखं वृष्यं पादत्रधारणम् ॥[२२]

जूता का धारण करना नेत्रों के लिए हितकारक, स्पर्श के लिए हितकर, पैरों को आराम देने वाला, बलवर्द्धक, पराक्रम और सुख देने वाला तथा वीर्यवर्द्धक होता है अतः जूता धारण करना चाहिए।

घर्मानिलरजोऽम्बुघ्नं छत्रधारणमुच्यते ।[२३]

---

१९. चरकसंहिता सूत्रथान अ० ८।

२०. ,, ,,

२१-२२. विष्णुस्मृति अ० ७१.१०-११।

२३-२६. चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ८।

७

छत्ता धारण करने से धूप, हवा, धूल और पानी से रक्षा होती है अतः छत्ता धारण करना चाहिए।

स्खलतः सम्प्रतिष्ठानं शत्रूणां च निषूदनम्।
अवष्टम्भनमायुष्यं भयघ्नं दण्डधारणम्॥२४

दण्ड एवं छड़ी आदि का धारण करना, गिरने वालों के लिए सहारा, शत्रुओं का निवारक, शरीरका अवलम्बन, आयुवर्द्धक तथा भय को दूर करने वाला होता है। अतः आवश्यकतानुसार दण्ड धारण करना चाहिए।

त्रिः पक्षस्य केश-श्मश्रु-लोम-नखान् संहारयेत्।२५

पक्ष में तीन बार अर्थात् प्रति पाँचवें दिन शिर के बाल तथा दाढ़ी-मूँछ बनवाना चाहिए और नखों को कटवाना चाहिए।

प्रसाधितकेशः।२६

शिर के केशों को कंघी आदि से बराबर स्वच्छ तथा सुसज्जित रखना चाहिए।

न रूढश्मश्रुरकस्मात्।२७

बिना किसी विशेष कारण के दाढ़ी-मूँछ नहीं बढ़ाये रहना चाहिए।

प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृ - वियोगतः।
कचानां वपनं कुर्यात् वृथा न विकचो भवेत्॥२८

प्रयाग में, तीर्थयात्रा में तथा पिता, माता आदि की मृत्यु हो जाने पर केशों का मुण्डन कराना चाहिए।

बिना किसी आवश्यकता के केश नहीं मुँड़ाये रहना चाहिए।

---

२७. गौतमस्मृति।

२८. तीर्थचिन्तामणि ५.३.७।

मृतके सूतके चैव व्रतान्ते निष्कृतौ तथा।
विवाहे द्वादशाहे च सीमन्ते राजशासने॥
क्षौरं सद्यः प्रयुञ्जीत देहरङ्गोपजीविनाम्।
एवम्भूतेषु चान्येषु प्राप्तेष्वावश्यकेष्वपि॥
श्मश्रुरोमनखच्छेदे नास्ति कालविचारणा॥२९

मृतक, सूतक, व्रत की समाप्ति, प्रायश्चित्त, विवाह, द्वादशाह तथा सीमन्त के समय दाढ़ी-बाल बनवाने एवं नख कटवाने में दिन एवं तिथि आदि का विचार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार राजसेवा में नियुक्त व्यक्तियों तथा नट-नर्तकों के लिए भी दिन एवं तिथि का विचार करना आवश्यक नहीं होता।

ऐसा ही अन्य किसी आवश्यक कार्य के उपस्थित हो जाने पर भी करना चाहिए। अर्थात् जभी विशेष आवश्यकता हो तभी क्षौरकार्य करा लेना चाहिए।

तैले जले तथा वक्त्रमादर्शे च मलान्विते।
न पश्येत्॥३०

तेल, पानी तथा मलिन दर्पण में मुँह नहीं देखना चाहिए।

ताम्बूलचर्वणं नित्यमक्ष्णोरञ्जनमेव च।
कुङ्कुमं चापि सिन्दूरं कज्जलं कञ्चुकं कचः॥
कवरी च प्रशस्तं स्यात् सुगन्धं स्रक्सुमादिकम्॥३१

नित्य ताम्बूल का सेवन करना चाहिए तथा आँखों में आंजन

---

२९. बृहद्दैवज्ञरंजन।

३०. बृहद्धर्मपुराण २.९९.३३।

३१. लोहितस्मृति ६६१.६२।

लगाना चाहिए। कुङ्कुम, सिन्दूर, काजल, कंचुक, केश एवं कवरी आदि को भी उत्तम रखना चाहिए तथा फूल-माला आदि भी सुगन्धित धारण करना चाहिए।

धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः।
सदा मङ्गल्यवेशः स्यान्नवाऽमाङ्गल्यवान् भवेत् ॥३२

सदा धवल वस्त्र पहने रहना चाहिए तथा सदा मङ्गलसूचक वेष में रहना चाहिए। कभी अमाङ्गलिक वेषभूषा नहीं रखनी चाहिए।

स्वशक्त्या भूषयेत्तनुम् ।३३

अपनी शक्ति के अनुरूप शरीर को वस्त्र-भूषण से अलंकृत रखना चाहिए।

सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च तथौषधीः।
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात् प्रयतो नरः॥
प्रस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धिश्चारुवेषधृक्।
सिताः सुमनसो हृद्या बिभृयाच्च नरः सदा ॥३४

सदा स्वच्छ धोती और चादर, प्रशस्त औषधियाँ तथा गरुड़-पुराणोक्त उत्तमोत्तम रत्न धारण करना चाहिए।

अपने केशों को खूब चिकना तथा निर्मल रखना चाहिए, कोई सुगन्धित पदार्थ लगाये रहना चाहिए, रमणीय वेष धारण करना चाहिए तथा सदैव मनोहर फूल-माला पहने रहना चाहिए।

---

३२. ब्रह्मपुराण २२१.८१।

३३. स्मृतिमुक्ताफल।

३४. विष्णुपुराण।

८. आलाप-संलाप एवं भाषण

हिताहितं मनुष्याणां केवलं वचसि स्थितम् ।
तस्मात् संयोजयेद् वाचम् अप्रमत्तः निरीक्ष्य च ॥[1]

मनुष्यों का हित और अहित केवल उनके वचन पर निर्भर है। अतः खूब सावधान होकर और उचित-अनुचित का पूरा विचार कर वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

पूर्वाभिभाषी ।[2]

किसी के मिलने पर पूर्वाभिभाषी होना चाहिए अर्थात् पहले अपनी ही ओर से बोलने तथा कुशल-मंगल पूछने का उपक्रम करना चाहिए। इस प्रतीक्षा में नहीं रहना चाहिए कि जब दूसरा व्यक्ति पहले कुछ बोले तो हम बोलें।

स्मितपूर्वाभिभाषी ।[3]

स्मित अर्थात् मन्द मुस्कान के साथ—प्रसन्नता सूचित करते हुए—बोलना चाहिए। शुष्क और रोषपूर्ण मुद्रा में नहीं।

हितमितमधुरार्थवादी काले ।[4]

समयोपयोगी बचन बोलना चाहिए। असामयिक नहीं।

हितकर बचन बोलना चाहिए। अहितकर नहीं।

परिमित वचन बोलना चाहिए। अधिक बोलने का अभ्यास ठीक नहीं।

मधुर वचन बोलना चाहिए। अप्रिय, नीरस और रूक्ष नहीं।

---

१. देवलस्मृति।

२-३-४. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ८।

. . . . वाग्दोषान् द्विनव शृणु ।
अपेतार्थमभिन्नार्थम् अप्रवृत्तं तथाधिकम् ॥
अश्लक्ष्णं चापि सन्दिग्धं पदान्ते गुरु चाक्षरम् ।
पराङ्मुखमुखं यच्च अनृतं चाऽप्यसंस्कृतम् ॥
विरुद्धं यत् त्रिवर्गेण न्यूनं कष्टातिशब्दकम् ।
व्युत्क्रमाभिहितं यच्च सशेषं चाऽप्यहेतुकम् ।
निष्कारणञ्च . . . . ॥५

अपेतार्थ आदि वाणी के अठारह दोष हैं । अतः इन दोषों से रहित वाणी का प्रयोग करना चाहिए । यथा—

जिस वाणी के उच्चारण करने पर भी श्रोता को अर्थ का ठीक-ठीक ज्ञान न हो उसे "अपेतार्थ" कहते हैं । ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए ।

जिस वाणी से अर्थभेद की स्पष्ट प्रतीति न हो उसे "अभिन्नार्थ" कहते हैं । अभिन्नार्थ वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

जिसके उच्चारण न करने पर भी अर्थ का समुचित ज्ञान हो जाय उसे "अधिक" कहते हैं । इस प्रकार की अधिक अर्थात् अनावश्यक एवं निरर्थक वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए । बहुत लोगों को बातचीत करते समय शकुन्तक्रिया के रूप में भी अनेक निरर्थक शब्दों को बार-बार उच्चारण करने का अभ्यास होता हैं । परन्तु निरर्थक शब्दों का उच्चारण करना ठीक नहीं ।

अस्पष्ट तथा अपरिमार्जित वाणी को "अश्लक्ष्ण" कहते हैं । ऐसी वाणी का प्रयोग न कर स्पष्ट तथा परिमार्जित वाणी का प्रयोग करना चाहिए ।

५-६. स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड, अ० ४५.६२.७२-७५ ।

जिसके उच्चारण से सुनने वाला व्यक्ति सन्देह में पड़ जाय उसे **"सन्दिग्ध"** कहते हैं। ऐसी सन्दिग्धार्थक वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। बहुत लोग पत्र लिखने, सन्देश देने, तथा कुछ बड़े-बड़े नेता वक्तव्य देने में, ऐसी वाणी का प्रयोग कर दिया करते हैं। उन्हें ऐसा करने से बचना चाहिए।

पदान्त अक्षर का गुरु उच्चारण करना भी वाणी का एक दोष है। कुछ लोग बोलते समय वाक्य के अन्तिम स्वर का कुछ गुरु उच्चारण कर देते हैं। ऐसा करना उचित नहीं।

वक्ता जिस अर्थ को व्यक्त करना चाहता है उससे विपरीत अर्थ की ओर जाने वाली वाणी को **"पराङ्मुख"** कहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि वक्ता कहना चाहते हैं और कुछ और कह डालते हैं और कुछ। ऐसी वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस (पराङ्मुख) दोष का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रोता की ओर मुँह न करके अर्थात् उससे दूसरी ओर मुँह करके वाणी नहीं बोलनी चाहिए। अर्थात् श्रोता की ओर मुँह करके बातचीत करनी चाहिए।

असत्य वाणी **"अनृत"** कहलाती है। उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

व्याकरण से अशुद्ध वाणी को **"असंस्कृत"** कहते हैं। असंस्कृत वाणी का व्यवहार नहीं करना चाहिए। अनेक शिक्षित व्यक्ति भी इस ओर ध्यान कम देते हैं। कम-से-कम शिक्षित व्यक्तियों को अशुद्ध शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के विपरीत विचार प्रकट करने वाली वाणी **"त्रिवर्ग-विरुद्ध"** कहलाती है। ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए। अर्थात् जो बातचीत हो वह किसी काम की हो और उचित काम की हो। बेकार न हो।

आवश्यक शब्दों में भी कमी हो जाना "न्यून" कहलाता है। वाणी में इस प्रकार की न्यूनता होना ठीक नहीं। किसी अर्थ को व्यक्त करने में जितने शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो उनका अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

जिसके उच्चारण में क्लेश हो उसे "कष्ट शब्द" कहते हैं। सरल शब्दों के रहते हुए कष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। हाँ, वीरता-प्रदर्शन के समय ऐसे शब्दों का प्रयोग करना उचित माना गया है।

अतिशयोक्तिपूर्ण वाणी को "अतिशब्द" कहते हैं। काव्य आदि के अतिरिक्त साधारण वार्तालाप में अतिशयोक्तिपूर्ण वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी"। इस नीति का अवलम्बन नहीं करना चाहिए।

जहाँ क्रम का उल्लंघन करके वाणी का प्रयोग हो उसे "व्युत्क्रमा-भिहित" कहते हैं। क्रमविरुद्ध वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वाक्य पूरा होने पर भी यदि अभिप्रेत बात पूरी न हुई तो उसे "सशेष" कहते हैं। सशेष वाणी नहीं बोलनी चाहिए। जो कुछ कहना हो उसे साङ्गोपाङ्ग कहना चाहिए, उसमें कुछ बाकी नहीं लगा देना चाहिए।

जहाँ उचित तर्क अथवा युक्ति का अभाव हो उसे "अहेतुक" दोष कहते हैं। अतः युक्तियुक्त एवं तर्कसम्मत वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

विना कारण किसी शब्द का प्रयोग किया जाय तो उसे 'निष्कारण' कहते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अर्थात् विना किसी विशेष कारण के किन्हीं विशेष शब्दों का प्रयोग सहसा नहीं कर डालना चाहिए।

वक्तव्ये तु यदा श्रोता वक्तारमवमन्यते।
वक्ता चाप्यथ श्रोतारं तदा वाक्यं न रोहति ॥[६]

वार्तालाप के प्रसंग में यदि श्रोता वक्ता का तथा वक्ता श्रोता का अपमान करता है तो उस वार्तालाप का अच्छा परिणाम नहीं होता। अतः वक्ता और श्रोता को बातचीत करते समय परस्पर सम्मान, स्नेह एवं साम्मनस्य का भाव रखना चाहिए। व्याख्यान के समय भी वक्ता एवं श्रोता को इस नियम पर ध्यान रखना चाहिए।

बह्वल्पार्थाक्षरं कुर्यात् संलापं कार्यसाधकम् ।७

ऐसी बातचीत करनी चाहिए जिसमें अक्षर तो थोड़े हों पर अर्थ अधिक हो और कार्य भी सिद्ध हो जाय।

अविचार्योत्तरं देयं सहसा न वदेत् क्वचित् ।८

यदि किसी बात का उत्तर देना हो तो सोच-विचार कर देना चाहिए। बिना सोचे-विचारे झटपट कोई बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए।

न च हास्येन भाषणम् ।९

सभी बातें हँस-हँस कर नहीं करनी चाहिए।

न विगृह्य कथां कुर्यात् ।१०

लड़ते-झगड़ते और शोर-गुल करते हुए बातें नहीं करनी चाहिए।

कथाभङ्गं न कुर्वीत ।११

यदि कोई बात पहले से चल रही हो तो बिना उसके समाप्त हुए बीच में ही अन्य किसी बात द्वारा उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिए।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेष-वाग्-बुद्धि-सारूप्यम् आचरन् विचरेदिह ।।१२

७-१०. शुक्रनीति ३.६१-६६।

११-१२. मनुस्मृति ४.१२।

अपनी अवस्था के अनुरूप बातें करनी चाहिए। ऐसा नहीं कि बालक वुड्ढों की तरह और वुड्ढे बालक की तरह बातें करें।

अपने कर्म अर्थात् अपनी नौकरी-पेशा आदि के अनुरूप बातें करनी चाहिए। ऐसा नहीं कि कोई निम्नकोटि का कर्मचारी उच्च कर्मचारी की भाँति बड़ी-बड़ी और कोई उच्च पदाधिकारी निम्नकोटि के कर्मचारी की भाँति छोटी-छोटी बातें करे।

अपनी साम्पत्तिक योग्यता (हैसीयत) के अनुरूप बातें करनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि कोई दश रुपये का आदमी दश हजार की बातें करने लगे।

अपने अध्ययन और ज्ञान के अनुरूप बातें करनी चाहिए। ऐसा नहीं कि कोई अल्पज्ञ व्यक्ति बड़े विद्वान् जैसी बातें करे।

अपने देश-जाति एवं कुल के अनुरूप बातें करनी चाहिए। "देशी मुर्गी विलायती बोली" का उदाहरण नहीं बनना चाहिए।

(इसी प्रकार वेष और बुद्धि भी अवस्था आदि के अनुरूप रखनी चाहिए।

अयुक्तं यत् कृतं चोक्तं न बलाद् हेतुनोद्धरेत् ।[१३]

यदि कोई अनुचित काम हो गया हो या अनुचित बात मुँह से निकल गयी हो तो उसका बलपूर्वक, अनुचित तर्कों से, समर्थन करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह सम्भाषेत ।[१४]

म्लेच्छ, अपवित्र और अधार्मिक व्यक्तियों के साथ बातचीत नहीं करनी चाहिए।

---

१३. शुक्रनीति अ० ३.३५।

१४. गौतमस्मृति अ० ९.१९।

सम्भाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् ।१५

ऐसे लोगों से आवश्यकता पड़ने पर यदि बातचीत करनी ही पड़े तो उसके बाद मन से पुण्यात्मा पुरुषों का स्मरण कर लेना चाहिए।

न संशये प्रत्यक्षवद् ब्रूयात् ।१६

जिस विषय में सन्देह हो उस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहना चाहिए।

अपशब्दाश्च नो वाच्या मित्रभावाच्च केष्वपि ।१७

मित्रभाव से भी किसी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नाश्लीलं कीर्तयेत् किञ्चित् प्रलापं च न कारयेत् ।१८

न किसी के साथ कोई अश्लील बात करनी चाहिए और न निरर्थक बात करनी चाहिए।

अत्युक्तिमन्यदोषोक्तिम् असभ्योक्तिं च वर्जयेत् ।
भाषेत वचनं नित्यम् अभिजातं हितं मितम् ।।१९

किसी के साथ संभाषण करते समय अत्युक्ति, दूसरों के दोषों का वर्णन तथा असभ्यतापूर्ण बचनों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। ऐसा बचन बोलना चाहिए जो शालीनतापूर्ण हो, हितकर हो तथा परिमित हो अर्थात् उचित मात्रा में हो, आवश्यकता से अधिक न हो।

वदेद् वृद्धानुकूलं यत् न बालसदृशं क्वचित् ।२०

१५-१६. आ० ध० प० २, पं० ५, क० १२.२१।

१७. शुक्रनीति ३.४.३१३।

१८. शुक्रनीति ३.३१६।

१९. नीतिवाक्यामृत १६.२८.५३।

२०. बृहद्धर्मपुराण उत्तर० ६.८१।

सदा सयाने लोगों की तरह बात करनी चाहिए। बच्चों की तरह बात कभी भी नहीं करनी चाहिए।

परमर्मस्पर्शकरम् अश्रद्धेयम् असत्यम् अतिमात्रं च न भाषेत।२१

ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिए जो दूसरों के मर्म को पीड़ा पहुँचाने वाला हो, अश्रद्धेय हो तथा असत्य हो। इसी प्रकार बहुत अधिक मात्रा में भी नहीं बोलना चाहिए।

भगलिङ्गादिशब्दांश्च नोच्चरेत् परगोचरम्।२२

दूसरों के साथ वार्तालाप करते हुए भग, लिङ्ग आदि अश्लील शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चाऽन्यायेन पृच्छतः।२३

विना किसी के पूछे तथा अनुचित ढंग से भी पूछने पर किसी से कोई बात नहीं करनी चाहिए।

संभाषण के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण का एक शिक्षाप्रद प्रसङ्ग :

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥
अविस्तरमसन्दिग्धं अविलम्बितमद्रुतम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे॥

२१. मनुस्मृति २.११०।
२२. शुक्रनीति २.२२१।
२३. मनुस्मृति २.११०।

संस्कारक्रमसम्पन्नाम् अद्रुताम् अविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तम् उद्यतासेररेरपि ॥२४

वनवास के समय किष्किन्धा में हनुमानजी की बातें सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा—

लक्ष्मण ! अवश्य ही इन्होंने व्याकरण का अच्छा अध्ययन किया है क्योंकि इतने विस्तृत भाषण में भी कहीं किसी अपशब्द का–अशुद्ध शब्द का उच्चारण नहीं किया। इसके अतिरिक्त वार्तालाप करते समय इनके मुख पर, नेत्र पर, ललाट पर, भौहों पर तथा अन्य भी किसी अंग पर कोई दोष या कोई विकार नहीं दीख पड़ा। (जैसा कि बहुत लोगों में देखा जाता है)।

इन्होंने जो कुछ कहा उसमें कहीं अनावश्यक विस्तार नहीं था, कोई बात सन्देहयुक्त या अस्पष्ट नहीं थी। बोलने का क्रम भी न तो द्रुत था और न विलम्बित। स्वरों में भी ऊँचाई-निचाई का दोष नहीं था। मध्यम स्वर में ही वाक्यों का उच्चारण किया। इनकी वाणी संस्कारयुक्त, क्रमयुक्त तथा हृदयहारिणी है। ऐसी वाणी को सुनकर हाथ में तलवार उठाये शत्रु का भी हृदय प्रसन्न और अनुकूल हो सकता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रभावकारी वार्तालाप या भाषण करते समय वक्ता को उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए।

●

---

२४. वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धा० ३.२९-३३।

९. यात्रा एवं गमनागमन

मुक्तवेगश्च गमन - स्वप्नाहार - सभा - स्त्रियः ।
पाणिनाऽलभ्य निष्क्रामेत् रत्नपूज्याज्यमङ्गलम् ।।१

यदि कहीं जाते समय मूत्र एवं पुरीष की शंका प्रतीत हो तो उससे निवृत्त होकर जाना चाहिए। इसी प्रकार सोने, भोजन करने, सभा में जाने तथा स्त्रीसहवास करने के समय भी शंका होने पर उससे निवृत्त होकर यह सब काम करना चाहिए।

यात्रा के समय रत्न, घृत, पूज्यजन तथा माङ्गलिक पदार्थों का स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिए।

नोर्ध्व न तिर्यक् दूरं वा निरीक्षन् पर्यटेद् बुधः ।२

बुद्धिमान् व्यक्ति को ऊपर, तिरछा तथा इधर-उधर ताकते हुए नहीं चलना चाहिए।

युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद् विलोकयन् ।३

भूमि को चार हाथ आगे की ओर देखते हुए चलना चाहिए।

वर्षातपादिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत् ।।४

जो लोग शरीर की सुरक्षा चाहते हों उन्हें वर्षा और धूप में छाता

---

१. अष्टाङ्गसंग्रह ३।

२-३. विष्णुपुराण ३.१२.३९।

४-५. ,, ,,.१८।

लगा कर, रात में और जंगल में जाते हुए छड़ी-डण्टा लेकर तथा जूता पहन कर चलना चाहिए।

................नातितूर्णं न सन्ततम् ।

न शत्रुणा नाविदितैर्नैको नाऽधार्मिकैः सह ॥५

बहुत जल्दी-जल्दी नहीं चलना चाहिए और लगातार भी बहुत दूर तक नहीं चलना चाहिए।

शत्रु, अपरिचित व्यक्ति तथा दुराचारी पुरुष के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए। अच्छी तरह समझ-बुझ कर यात्रा में किसी का साथ करना चाहिए।

किसी बीहड़ स्थान की यात्रा अकेले नहीं करनी चाहिए।

अविज्ञातेन मार्गेण सङ्कटेन च न व्रजेत् ।६

जो मार्ग अज्ञात तथा सङ्कटपूर्ण हो उस मार्ग से नहीं जाना चाहिए। यह नियम साहसिक यात्रा करने वालों के लिए नहीं है।

पांशूत्करावर्षिणि वाति वाते संसक्तधाराजलदे च मेघे ।
अत्यातपे चापि तथाऽन्धकारे
स्वस्थस्तु सन्न क्वचिदभ्युपेयात् ॥७

जिस समय धूल और मिट्टी के साथ भयंकर हवा बहती हो, लगातार मूसलाधार वर्षा हो रही हो, बहुत कड़ी धूप हो तथा घोर अन्धकार हो उस समय, स्वस्थता की अवस्था में, कहीं नहीं जाना चाहिए। किसी अनिवार्य प्रयोजन के आ पड़ने पर उपर्युक्त अवस्था में भी जाना-आना अनुचित नहीं।

६-७. कामन्दकीयनीतिसार ७.३७-३८ ।

सद्‌यानेनापि गच्छेन्न हट्टमार्गे नृपोऽपि च ।८

शासकों को भी सवारी पर चढ़ कर सङ्कीर्ण और घने बाजार में नहीं चलना चाहिए। भले ही वह सवारी अच्छी ही क्यों न हो।

क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकराः पथि ।।९

"कहाँ जाते हो, रुक जाओ, मत जाओ, वहाँ जाने से तुमको क्या लाभ होगा" इस प्रकार के तथा और भी ऐसे शब्द जो अनिष्टसूचक होते हैं वे यात्रा के लिए हितकर नहीं होते। अतः किसी की यात्रा के समय ऐसे शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

मार्गं गुरुभ्यो बलिने व्याधिताय शवाय च ।
राज्ञे श्रेष्ठाय व्रतिने यानगाय समुत्सृजेत् ।।१०

किसी तङ्ग मार्ग से जाते समय यदि उसी मार्ग से उधर से गुरुजन, बलवान् व्यक्ति, रोगी, शव (मुर्दा) राजा या शासक, स्नातक या विद्वान् तथा सवारी से कोई व्यक्ति आता हो तो इन लोगों के लिए रास्ता दे देना चाहिए।

पन्था देयो वरस्य च ।११

विवाह करने जाते हुए तथा विवाह करके आते हुए वर को मार्ग दे देना चाहिए।

मूकान्धबधिराणां च ।१२

---

८. शुक्रनीति ३.२९९।
९. गृहस्थरत्नाकर मत्स्यपुराण।
१०. शुक्रनीति ३.४०।
११. मनुस्मृति २.१३८।
१२. ब्रह्मपुराण २२१.४०।

मूक (गूँगे) अन्धे तथा बहरे लोगों को मार्ग देना चाहिए। अर्थात् स्वयं रास्ते से हट जाना चाहिए तथा उन्हें जाने देना चाहिए।

बाल-वृद्ध-मत्तोन्मत्तोपहतदेह-भाराक्रान्त-स्त्री-स्नातक-प्रव्रजितेभ्यः।[१३]

बालक, वृद्ध, मत्त (पागल), उन्मत्त (उन्मादी), जिसके शरीर में किसी प्रकार की चोट आदि लगी हो या घाव हुए हों, जो भारी बोझा ढो रहा हो, स्त्री, स्नातक, तथा साधु-संन्यासी इनके लिए भी रास्ता छोड़ देना चाहिए।

अशिष्ट-पतित-मत्तोन्मत्तानाम् आत्मस्वस्त्ययनार्थेन सर्वैरेव दातव्यः।[१४]

अशिष्ट (असभ्य), पतित, मत्त एवं उन्मत्त लोगों को, अपने हित की दृष्टि से, सब लोगों को रास्ता दे देना चाहिए। अन्यथा अपनी ही हानि होना सम्भव है।

राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः।[१५]

❀ उपर्युक्त सभी व्यक्ति चाहे आगे से आते हों या पीछे से उन्हें मार्ग देना चाहिए।

(मनुस्मृति २.१३८ श्लोक पर मेधातिथि भाष्य)

यदि दोनों ओर से एक ही तरह के दो व्यक्ति आते-जाते हों तो उनमें से जो अपेक्षाकृत अवस्था या गुणों के कारण अधिक मान्य हो उसके लिए मार्ग देना चाहिए।

(याज्ञवल्क्यस्मृति १.११७ श्लोक पर मिताक्षरा)

१३. शंखलिखित पृ० १६.८६।

१४. आपस्तम्बधर्मसूत्र।

१५.-१६. वशिष्ठस्मृति।

राजा और स्नातक के समागम में राजा को स्नातक के लिए मार्ग दे देना चाहिए।

सर्वैरेव च वध्वा ऊह्यमानायै ।१६

यदि नवविवाहिता वधू आती हो तो उसके लिए सब लोगों को रास्ता छोड़ देना चाहिए।

अद्वारेण च नातीयात् ग्रामं वा वेश्म वाऽवृतम् ।१७

किसी गाँव तथा बन्द मकान में अनुचित मार्ग से प्रवेश नहीं करना चाहिए।

अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्म-परवेश्मनोः ।१८

अपने तथा दूसरे के घर में कभी अनुचित मार्ग से प्रवेश नहीं करना चाहिए। इससे लोगों के मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठ सकती हैं।

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत् ।१९

दूसरे के घर, स्थान, आफिस, तथा सीमा में उसकी अनुमति लेकर प्रवेश करना चाहिए।

खादन् न गच्छेदध्वानम् ।२०

रास्ते में खाते हुए नहीं चलना चाहिए।

न मध्याद् गमनं भाषाशालिनोः स्थितयोरपि ।२१

---

१७. मनुस्मृति ४.७३।

१८. स्कन्दपुराण काशी० ३८.६५।

१९. स्मृतिचन्द्रिका।

२०. शुक्रनीति ३.१४३।

२१. ,, ,, ,,

यदि दो व्यक्ति बातचीत कर रहे हों तो उनके बीच होकर नहीं जाना चाहिए।

न मध्ये पूज्ययोर्यायात् ।२२

दो पूज्य जनों के बीच होकर नहीं जाना चाहिए।

अनुज्ञाप्य वा अतिक्रामेत् ।२३

यदि निकलने के लिए दूसरा मार्ग न हो तो "मैं जाना चाहता हूँ" इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर जाना चाहिए।

यानं वाहनमारोहेत् ज्ञातं ज्ञातोपपादितम् ।२४

ऐसे यान (सवारी) पर चढ़ना चाहिए जिसकी अच्छाई और बुराई मालूम हो और जिसकी व्यवस्था किसी जानकार व्यक्ति द्वारा की गयी हो।

नाविनीतैः व्रजेद् धुर्यैः न च क्षुद्व्याधिपीडितैः ।
न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैः न वालधिविरूपितैः ।।२५

हाथी, घोड़ा, बैल आदि जो वाहन दुष्ट स्वभाव के हों और साजे-सिखाये न हों उन पर सवारी नहीं करनी चाहिए।

जो वाहन भूख-प्यास से पीड़ित तथा रोगग्रस्त हों उन पर सवारी नहीं करनी चाहिए।

जिनके सींघ, आँख, खुर तथा पूँछ आदि अंग टूटे-फूटे, कटे-फटे तथा विकृत हो गये हों उन पर भी सवारी नहीं करनी चाहिए।

---

२२. अग्निपुराण १५५.२१।

२३. आपस्तम्बधर्मसूत्र प्र० २, प० ५, क० १२.८।

२४. कामन्दकीयनीतिसार ७.३०।

२५.-२६. मनुस्मृति ४.६७-६८।

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यं आशुगैः लक्षणान्वितैः।
वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन् भृशम् ॥२६

जो वाहन शिक्षित हों, तेज चलने वाले हों, शुभ लक्षणों से युक्त हों, तथा सुन्दर रंग और रूप वाले हों उन्हीं पर चढ़ना चाहिए।

सवारियों को हाँकते समय अंकुश, चाबुक अथवा डण्टा छड़ी आदि से बरावर उन्हें मारते नहीं रहना चाहिए।

महावात-समुद्भूताम् अपरीक्षितनाविकाम्।
अन्यनौ-प्रतिवद्धां च नोपेयान्नावमातुराम् ॥२७

ऐसी नौका पर यात्रा नहीं करनी चाहिए जिसका नाविक अपरीक्षित हो, ज़ो दूसरी बड़ी नौका में बँधी हो तथा टूटी-फूटी हो।

जिस समय तेज हवा या आँधी चलती हो उस समय नौका पर यात्रा नहीं करनी चाहिए।

दूसरे के घर जाने पर :

न वार्यमाणः प्रविशेत्, नाऽद्वारेण, न चाऽसने।
स्वयं तिष्ठेत् परगृहे, युक्तनिद्रं न बोधयेत ॥२८

जिस स्थान या मकान में जाने का रोक हो, या कोई रोकता हो तों वहाँ नहीं जाना चाहिए।

किसी स्थान पर या मकान में अनुचित मार्ग से प्रवेश नहीं करना चाहिए।

किसी के घर जाने पर वहाँ स्वयं किसी आसन पर नहीं बैठ जाना चाहिए। वहाँ के व्यक्तियों द्वारा संकेत मिलने पर किसी आसन पर बैठना चाहिए।

---

२७. कामन्दकीयनीतिसार ७.३३।

२८.२९. अष्टाङ्गसंग्रहः अ० ३।

किसी के घर किसी व्यक्ति से मिलने जाने पर यदि वह व्यक्ति सोया हुआ हो और उसका उस समय का सोना अनुचित न हो तो उसे जगाना नहीं चाहिए।

नाचरेद् पाणि-वाक्-पाद-दृग्-मेढ्रोदर-चापलम्।[२९]

किसी दूसरे स्थान या दूसरे के घर जाने पर वहाँ हाथ, वाणी, पैर, दृष्टि, गुप्तेन्द्रिय तथा पेट आदि किसी भी इन्द्रिय से किसी प्रकार की चंचलता या अनुचित आचरण नहीं करना चाहिए। सर्वथा शील, संयम एवं शिष्टता के साथ बैठना चाहिए। अर्थात्—

हाथ से कोई सामान इधर-उधर नहीं करना चाहिए और न बेकार छूना चाहिए।

वाणी से बेकार, अनुचित एवं असामयिक बातें नहीं करनी चाहिए।

पैर से इधर-उधर बेकार घूमना, पैर हिलाना या बराबर पैर इधर-उधर करना वर्जित रखना चाहिए।

दृष्टि से इधर-उधर देखना, अनुचित रूप से देखना तथा अनावश्यक वस्तुएँ देखना वर्जित रखना चाहिए।

गुप्तेन्द्रियों को बार-बार छूना या खुजलाना नहीं चाहिए तथा सर्वथा सुगुप्त रखना चाहिए।

किसी प्रकार की खाने-पीने की वस्तु न स्वयं उठानी या खानी चाहिए और न उन पर लालचभरी दृष्टि डालनी चाहिए।

परवेश्मगतः तत्स्त्रीवीक्षणं नैव कारयेत्।[३०]

दूसरे के घर जाने पर वहाँ की स्त्रियों को विशेष दृष्टि डाल कर नहीं निहारना चाहिए।

अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्।[३१]

मित्रभाव से तथा निश्छलभाव किसी दूसरे व्यक्ति की स्त्री का अवलोकन अनुचित नहीं होता।

---

३०. शुक्रनीति ३.३१२। ३१. वाल्मीकीयरामायण किष्किन्धा० ३०।

१०. संगति एवं साहचर्य

यादृशैः सन्निवसति यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥[१]

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की संगति करता है और जैसा—दुर्जन या सज्जन—बनना चाहता है वैसा ही बन जाता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को संगति एवं साहचर्य पर आरम्भ से ही विशेष ध्यान देना चाहिए।

सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नाऽसद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥[२]

सज्जन पुरुषों के साथ बैठना चाहिए, सज्जन पुरुषों के साथ संगति करनी चाहिए तथा लड़ाई-झगड़ा चाहे मैत्री भी सज्जन पुरुषों के साथ ही करनी चाहिए। असज्जन एवं दुष्ट लोगों के साथ किसी प्रकार का भी व्यवहार नहीं करना चाहिए।

कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचाराऽवलम्बिभिः ।
प्राज्ञैरपिशुनैः शस्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः ॥[३]

सज्जनों के साथ मित्रता करनी चाहिए, सदाचारी लोगों के साथ मित्रता करनी चाहिए, बुद्धिमान, चुगली न करने वाले तथा प्रतिष्ठित

---

१. महाभारत शान्तिपर्व २९८.३२ ।

२. „ वनपर्व १.२६ ।

३. मार्कण्डेयपुराण ३४.९१ ।

लोगों के साथ मित्रता करनी चाहिए और जो लोग काम-धाम में सक्रिय सहयोग देने वाले हों उन लोगों के साथ मैत्री करनी चाहिए।

नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः।
गच्छेत् मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्यादिदूषकैः ॥४

उद्धत, उन्मत्त, मूढ़, अशिष्ट, शीलहीन तथा चोरी आदि दोष लगाने वाले लोगों के साथ बुद्धिमान् व्यक्ति को मैत्री नहीं करनी चाहिए।

न चाऽतिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः।
नानृतकैस्तथा क्रूरैः सहासीत कदाचन ॥५

जो लोग बहुत खर्चीले स्वभाव के हों, लोभी-लालची हों, वैरी हों, मिथ्याभाषी हों तथा क्रूर स्वभाव के हों उनका कभी भी साथ नहीं करना चाहिए।

सार्द्धं न वलिभिः कुर्यान्न न्यूनैर्न च निन्दितैः।
न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥६

अपने से वलिष्ठ तथा अपने से हीन लोगों के साथ, निन्दित लोगों के साथ, प्रत्येक बात में सदा शंका रखने वाले और भाग्यवादी लोगों के साथ संगति एवं मैत्री नहीं करनी चाहिए।

कार्याक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव विटसङ्गिभिः।
निःस्वैर्न वादैकपरैर्नरैश्चान्यैस्तथाऽधमैः ॥७

जो लोग काम करने में असमर्थ हों, बदनाम हों, बदमाश लोगों के

४-५-६. ,, ३४.८८.८९.९०।

७. ब्रह्मपुराण २२१.८४।

साथी हों, दरिद्र हों, हमेशा विवाद करने वाले हों तथा और भी जो नीच प्रकृति के लोग हों, उनके साथ मैत्री नहीं रखनी चाहिए।

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत् सह।
निनीषुः कुलमुत्कर्षम् अधमानधमांस्त्यजेत् ॥८

जो व्यक्ति अपने कुल को ऊँचा उठाना चाहें उन्हें उत्तम-उत्तम लोगों के साथ सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए और अधम-अधम लोगों का परित्याग कर देना चाहिए।

न अवरान् उपासीत ।९

अपने से नीच पुरुषों की संगति नहीं करनी चाहिए।

न जिह्मं रोचयेत् ।१०

कपटी एवं कुटिल लोगों का साथ पसन्द नहीं करना चाहिए।

न अनार्यमाश्रयेत् ।११

अनार्य लोगों का सहारा नहीं लेना चाहिए।

न पापवृत्तान् स्त्री-मित्र-भृत्यान् भजेत् ।१२

पापी एवं दुराचारी स्त्री, मित्र तथा नौकरों से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

न अधार्मिकैर्न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत ।१३

अधार्मिक तथा राजशत्रुओं के साथ नहीं बैठना चाहिए।

न क्षुद्रैः ।१४

---

८. मनुस्मृति ४.२४० ।

९-१६. चरकसंहिता सूत्रस्थान ८ ।

क्षुद्र स्वभाव एवं क्षुद्र विचार के लोगों के साथ नहीं बैठना चाहिए।

न दुष्टैः ।१५

दुष्ट लोगों के साथ नहीं बैठना चाहिए।

न बाल-वृद्ध-लुब्ध-मूर्ख-क्लिष्ट-क्लीबैः

सह सख्यं कुर्यात् ।१६

बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, दीर्घरोगी तथा नपुंसक लोगों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए।

न मलिनवाससा सह संविशेत् ।१७

गन्दे कपड़े वाले व्यक्ति के साथ नहीं बैठना चाहिए।

---

१७. वशिष्ठस्मृति १२.४।

११. प्रणाम एवं आशीर्वाद

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥[१]

जो मनुष्य बराबर अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का अभिवादन करता है और सदा उनके सम्पर्क और सेवा में रहता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चार वस्तुएँ बढ़ा करती हैं। अतः प्रत्येक नर-नारी को अपने से श्रेष्ठ जनों को प्रणाम करना चाहिए और श्रेष्ठ जनों को उन्हें यथोचित आशीर्वाद देना चाहिए।

पादोपसङ्ग्रहणं समवायेऽन्वहम् ।[२]
माता-पितृ-तद्बन्धूनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां
तद्गुरूणाञ्च ।[३]

माता, पिता तथा उनके बन्धुओं (मामा, मौसी, चाचा, चाची, बुआ आदि), जेठ भाइयों, गुरुओं तथा उनके गुरुओं का भी, मिलने पर उपसंग्रहण अर्थात् प्रतिदिन पैर छूकर प्रणाम करना चाहिए।

दाहिने हाथ से दाहिने चरण को तथा बाएँ हाथ से बाएँ चरण को छूकर प्रणाम करना उपसंग्रहण कहलाता है।

समवाये परस्य ।[४]

उपर्युक्त व्यक्तियों से यदि एक साथ ही भेंट हो जाय तो उनमें जो

---

१. मनुस्मृति २.१२१ ।

२-३-४. गौतमधर्मसूत्र, प्र० १, अ० ५.१.३.४ ।

सबसे श्रेष्ठ हों उनका सर्वप्रथम चरणस्पर्श करना चाहिए तथा इसी क्रम से दूसरों का भी।

सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाभिवादनम्।[५]

चाहे गुरु हों अथवा अन्य कोई श्रेष्ठ पुरुष, सबको खड़े होकर तथा कुछ आगे बढ़ कर ही नमस्कार करना चाहिए, बैठे-बैठे नहीं।

स्वनाम प्रोच्य 'अयमहम्' इत्यभिवादो ज्ञसमवाये।[६]

विज्ञ व्यक्तियों के मिलने पर अपने नाम का उच्चारण करते हुए "यह मैं अमुक हूँ" ऐसा कह कर अभिवादन करना चाहिए। (यह नियम गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों के लिए है)।

नाविप्रोष्य स्त्रीणाम् अमातृपितृव्यभार्याभगिनीनाम्।[७]

माता चाची तथा बड़ी बहनों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंका चरण-स्पर्श कर प्रणाम नहीं करना चाहिए परन्तु प्रवास से आने पर अन्य स्त्रियों का भी चरणस्पर्श कर प्रणाम करना उचित है।

नोपसंग्रणं भ्रातृभार्याणां स्वसॄणाम्।[८]

प्रवास से लौटने पर भी छोटी भाभियों तथा बहनों का चरणस्पर्श कर प्रणाम नहीं करना चाहिए।

कनिष्ठं नाभिवादयेत्।[९]

अपने से छोटी अवस्था के व्यक्ति को प्रणाम नहीं करना चाहिए।

---

५. गौतमधर्मसूत्र प्र० १, प० ४, कां० १४.१६।

६-७-८. गौतमधर्मसूत्र प्र० १, अ० ६.५.७.८।

९. पद्मपुराण सृष्टि० ५१.११३।

ऋत्विक्-श्वसुर-पितृव्य-मातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थानमभिवाद्याः ।१०

पुरोहित, श्वसुर, चाचा और मामा छोटे भी हों तो उठ कर प्रणाम करना चाहिए।

विषमगतायाऽगुरवे नाभिवाद्यम् ।११

यदि गुरु से अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति कहीं बहुत ऊँची-नीची जमीन पर खड़े हों तो उन्हें प्रणाम नहीं भी किया जा सकता है।

अन्वारुह्य वाऽभिवादयीत ।१२

अथवा ऊपर जाकर या नीचे उतर कर प्रणाम कर लेना चाहिए। परन्तु गुरु जहाँ कहीं भी हों और यदि दीख पड़े तो उन्हें उनके पास जाकर अवश्य प्रणाम करना चाहिए।

ज्ञायमाने वयोविशेषे वृद्धतरायाभिवाद्यम् ।१३

जहाँ एक से अधिक व्यक्ति हों वहाँ उनकी अवस्था समझ कर उनमें जो अधिक अवस्था वाले हों उन्हें पहले प्रणाम करना चाहिए और पीछे क्रमशः उनसे कम अवस्था वालों को।

भ्रातृषु भगिनीषु च यथापूर्वमुपसंग्रहणम् ।१४

भाई और बहनों में भी अवस्थानुसार जो श्रेष्ठ हों उन्हें पहले प्रणाम करना चाहिए और पीछे कनिष्ठों को।

---

१०. गौतमधर्मसूत्र प० ३, अ० ६.९।

११-१२. आ० प० १, प० ४, क० १४.१५।

१३. „ „ „ „ „ १४.१३

१४. „ „ „ „ „ १४.८।

स्त्रियो नमस्या वृद्धाश्च ।१५

अपने से वृद्ध स्त्रियों को नमस्कार करना चाहिए।

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नीवत् समास्ता गुरुभार्यया ।।१६

मौसी, मामी, सास तथा बूआ यह सब गुरुपत्नी के समान होती हैं। अतः गुरुपत्नी के समान ही इनका अभिवादन तथा पूजा-सत्कार करना चाहिए।

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ।।१७

अपने भाई की सवर्णा ज्येष्ठ भार्या का प्रतिदिन चरणस्पर्श कर प्रणाम करना चाहिए। परन्तु जाति तथा सम्बन्धियों की अन्य ज्येष्ठ भार्याओं का चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम प्रवास से आने पर ही करना चाहिए, प्रतिदिन नहीं।

स्त्रीपुंयोगेऽभिवादनतोऽनियममेके ।१८

पति एवं पत्नी के मिलने पर पत्नी को, बिना किसी विशेष उपचार के, पति का अभिवादन करना चाहिए।

पतिवयसः स्त्रियः ।१९

स्त्रियों की अवस्था पति के तुल्य मानी जाती है। अतः जिनके पति अपने से श्रेष्ठ हों उन स्त्रियों को प्रणाम करना चाहिए।

---

१५. स्मृतिमुक्ताफलम् पृ० ९० ।

१६-१७. मनुस्मृति १३१-१३२।

१८. आ० ध० प्र० १, प० ४, क० १४.१८ ।

१९. ,, ,, ,, ,, ,, १४.७ ।

प्रोष्य च समागमे ।२०

स्वयं परदेश से लौटने पर जो श्रेष्ठ लोग मिलें उन्हें प्रणाम करना चाहिए तथा यदि श्रेष्ठ लोग परदेश से आवें तो मिलने पर उन्हें भी प्रणाम करना चाहिए।

अजाकर्णेन विदुषो मूर्खाणामेकपाणिना ।२१

समझदार लोगों को बकरी के कान के समान दोनों अञ्जलियों को बना कर नमस्कार करना चाहिए। एक हाथ से नमस्कार गँवार लोग किया करते हैं।

न सोपानद् वेष्टितशिरा अवहितपाणिर्वा अभिवादयीत ।२२

जूता पहने हुए प्रणाम नहीं करना चाहिए।

शिर पर पगड़ी अथवा टोपी लगाये हुए प्रणाम नहीं करना चाहिए।

हाथ में कोई सामान लिये हुए प्रणाम नहीं करना चाहिए।

यज्ञशालायां सभायां देवतायतने च प्रत्येकं न नमस्कुर्यात् ।२३

यज्ञशाला, सभा-सम्मेलन तथा मन्दिर आदि भीड़ के स्थानों में प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग नमस्कार नहीं करना चाहिए। ऐसे स्थानों में सबको एक साथ ही प्रणाम कर लेना चाहिए।

---

२०. " " " " " "

२१. कृत्यसारसमुच्चये।

२२. आ० ध०, प्र० १, प० ४, क० १४.१९।

२३. हिरण्यकेशिगृह्यसूत्रशेष प० १.१५।

न समवायेऽभिवादनमत्यन्तशः ।२४

बहुत लोगों की भीड़ में नमस्कार करना हो तो, जिसको नमस्कार करना हो उसके अत्यन्त समीप जाकर नमस्कार नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थिति में दूर से ही नमस्कार कर लेना चाहिए।

धावन्तं क्रोधयुक्तं च नावधानञ्च नो नमेत् ।२५

जो व्यक्ति दौड़ रहा हो, क्रोधयुक्त हो तथा असावधान हो उसे प्रणाम नहीं करना चाहिए।

न नमेत् पृष्ठतश्चैव ।२६

पीछे की ओर से प्रणाम नहीं करना चाहिए।

पिबन् खादन् न चानमेत् ।२७

पीते हुए और खाते हुए प्रणाम नहीं करना चाहिए।

उच्चैःस्थलगतो वापि प्रणमेन्न कदाचन ।२८

ऊँचे स्थान से प्रणाम नहीं करना चाहिए। जिन्हें प्रणाम करना हो उनके पास आकर प्रणाम करना चाहिए।

आशीर्वाच्या नमस्कार्यैः ।२९

जिन्हें प्रणाम किया जाय उन्हें प्रणाम करने वाले को आशीर्वाद देना चाहिए।

---

२४. बौधयनस्मृति १.२.३१।

२५. बृहद्धर्मपुराण उत्तर० १.३०।

२६. ,, ,, १.३२।

२७-२८. ,, ,, १.३३।

२९-३१. स्मृतिमुक्ताफलम् पृ० १११।

वयस्यस्तु पुनर्नमेत् ।३०

परन्तु जिसे प्रणाम किया जाय वह यदि समान अवस्था का हो या मित्र हो तो उसे आशीर्वाद न देकर प्रणाम ही करना चाहिए ।

कृतेऽभिवादने यस्तु न कुर्यात् प्रतिनन्दनम् ।
नाऽभिवाद्यस्स विज्ञेयः ।३१

प्रणाम करने पर जो व्यक्ति न प्रणाम करे और न आशीर्वाद दे वह प्रणाम करने योग्य नहीं होता ।

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽध्यात्मिकमेव वा ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ।।३२

अनेक प्रणम्य पुरुषों के उपस्थित होने पर उनमें से जो लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान का दाता हो, उसे सबसे पहले प्रणाम करना चाहिए ।

समानग्रामे च वसतामन्येषामपि वृद्धतराणां
प्राक् प्रातराशात् ।३३

गुरु के अतिरिक्त एक गाँव में रहने वाले और भी अपने से अधिक अवस्था के लोगों का भोजन के पहले प्रणाम करना चाहिए ।

छोटे लोगों का भी अभिवादन :

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्यभिवादनम् ।
छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो जैष्ठ्यस्य कारणम् ।।३४

---

३२. मनुस्मृति २.११७ ।

३३. आपस्तम्बधर्मसूत्र १.५.१३ ।

३४. श्रीमद्भागवत ६.७.३३ । (विश्वरूप ऋषि से देवताओं की उक्ति)

हे ब्रह्मन् ! विशेष परिस्थिति में अपने से छोटे व्यक्ति के भी चरणों का अभिवादन करना गर्हित नहीं माना जाता। फिर वेदज्ञान को छोड़ कर केवल अवस्था बड़प्पन का कारण भी नहीं है। अतः छोटी अवस्था के भी वेदज्ञ विद्वान् व्यक्ति का चरणस्पर्शपूर्वक अभिवादन करना चाहिए।

प्रणाम तथा आशीर्वाद के शब्द :

प्रणाम के लिए—**अभिवादये** (अभिवादन करता हूँ) **नमामि** (नमस्कार करता हूँ) **प्रणमामि** (प्रणाम करता हूँ) **प्रणतोऽस्मि** (प्रणाम करता हूँ) **नमस्ते** (आपको नमस्कार) **वन्दे** (वन्दना करता हूँ) **नमस्करोमि** (नमस्कार करता हूँ) **नमोनमः** (नमस्कार-नमस्कार) आदि संस्कृत पदों का प्रयोग करना चाहिए।

आशीर्वाद के लिए—**आयुष्मान् भव** (दीर्घजीवी होवो) **चिरंजीव** (बहुत दिनों तक जीओ) **कल्याणमस्तु** (कल्याण हो) **मंगलमस्तु** (मंगल हो) **स्वस्ति अस्तु** (कल्याण हो) **कुशलमस्तु** (कुशल हो) **सौभाग्यमस्तु** (सौभाग्य हो) आदि संस्कृत पदों का प्रयोग करना चाहिए।

●

१२. कुशल-प्रश्न

कुशलमवरवयसं वयस्यं पृच्छेत् ।[१]

जो व्यक्ति अवस्था में अपने समान अथवा अपने से कनिष्ठ हो उससे कुशल-प्रश्न करना चाहिए। अपने से अधिक श्रेष्ठ पुरुषों से कुशल-मंगल पूछना छोटी अवस्था वालों के लिए उचित नहीं होता।

अरण्ये च स्त्रियम् ।[२]

यदि किसी जंगल अथवा और किसी भयंकर स्थान में अकेली कोई स्त्री दीख पड़े तो उससे भी उसकी अवस्था, उसके वहाँ आने का कारण तथा आवश्यक सहायता आदि के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करना चाहिए। बिना उससे पूछे आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

दर्शने दर्शने नित्यं सुखप्रश्नमुदाहरेत् ।[३]

जब-जब प्रियजनों से मुलाकात हो तब-तब उनसे कुशल-मंगल पूछना चाहिए।

कुशल-मङ्गल पूछने का यह सामान्य नियम है परन्तु देश, काल एवं पात्र के अनुसार अनेक प्रकार से कुशल-मङ्गल पूछा जाता है तथा इस कुशल-प्रश्न का सम्बन्ध न केवल उस व्यक्ति के शरीरमात्र से सम्बन्धित होता है प्रत्युत उसका सम्बन्ध उस व्यक्ति के सभी परिजनों तथा सभी सम्बन्धित वस्तुओं से होता है। रामायण, महाभारत तथा पुराणादि ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिलते हैं जो बहुत ही

---

१. आ० ध० प्र० १, प० ४, कां० १४.२३।

२. ,, ,, २८।

३. महाभारत शान्तिपर्व, १९३.१९।

व्यावहारिक, मनोहर तथा शिक्षाप्रद प्रतीत होते हैं। ऐसे कुछ प्रसंग यहाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं।

शबरी से श्रीरामजी द्वारा कुशल-प्रश्न :

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ॥
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥[४]

तुम्हारी दिनचर्या में विघ्न तो नहीं होते? तुम्हारा तप बढ़ तो रहा है? आहार और क्रोध पर तुम्हारा नियन्त्रण तो रहता है? तुम्हारे सभी नियम यथावत् चल तो रहे हैं? तुम्हारा मन प्रसन्न तो रहता है? तुम्हारी गुरुशुश्रूषा सफल तो हो रही है?

वशिष्ठजी एवं भरतजी के द्वारा भारद्वाजजी से कुशल-प्रश्न :

वशिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम्।
शरीरेषुऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥[५]

महर्षि वशिष्ठ तथा भरतजी ने महर्षि भारद्वाजजी से उनके शरीर, अग्नि, शिष्य तथा आश्रम के वृक्ष एवं मृग-पक्षियों के कुशल-मंगल के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

विश्वामित्रजी द्वारा राजा दशरथ से कुशल-प्रश्न :

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ॥

---

४. मनुस्मृति २.१२७।

५. वाल्मीकिरामायण, अरण्यकाण्ड ७४.८-९।

पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ।
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत् सुधार्मिकः ।।
अपि ते सन्नताः सर्वे सामन्ता रिपवो जिताः ।
दैवं च मानुषं चापि कर्म ते साध्वनुष्ठितम् ।।६

महर्षि विश्वामित्र ने शास्त्रानुसार आतिथ्य स्वीकार कर राजा दशरथ से कुशल-मंगल पूछा। उन्होंने नगर, कोश, जनपद, बन्धु एवं मित्र आदि सभी का कुशल पूछते हुए राजा से प्रश्न किया कि आपके राज्य के सभी सामन्त आपके वश में तो हैं ? आपके शत्रु पराजित तो रहते हैं ? आप अपने दैव एवं मानुष कर्तव्य का पालन अच्छी तरह से करते तो हैं ?

महर्षि जैमिनि से पक्षियों का कुशल-प्रश्न :

कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु ।
वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ।।
अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः ।
भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः ।।७

ब्रह्मन् ! आपके आश्रम में मृग, पक्षी, वृक्ष, लता, गुल्म, त्वक्सार एवं तृण आदि समस्त जीव-जन्तु एवं वृक्ष-लता आदि सकुशल तो हैं ? अथवा हमलोगों को ऐसा प्रश्न करना ही उचित नहीं है। क्योंकि आपके पास रहने वालों का अकुशल कैसे हो सकता है ?

---

६. ,, ,, बालकाण्ड १८ ।

७. मार्कण्डेयपुराण ४.१९-२० ।

राजा पृथु द्वारा मुनियों से कुशल-प्रश्न पूछने में संकोचप्रदर्शन :

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ।
कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥८

राजा पृथु ने मुनियों से कहा—निरन्तर आत्मा में ही रमण करने वाले आप जैसे मुनीश्वरों से कुशल पूछना ही अनुचित है। क्योंकि आपलोगों में "यह कुशल है और यह अकुशल है" इस प्रकार की वृत्तियाँ कभी होती ही नहीं हैं।

कुशल प्रश्न के कुछ अन्य प्रसङ्ग :

१—भगवान् राम का भरत से कुशल-प्रश्न ।
(वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड १००.७-७५)

२—महर्षि नारद का युधिष्ठिर से कुशल-प्रश्न ।
(महाभारत, सभापर्व ५.१७-१२५)

३—महर्षि कश्यप का अदिति से कुशल-प्रश्न ।
(श्रीमद्भागवत ८.१६.४-१०)

४—गोप-गोपियों का बलभद्रजी से कुशल-प्रश्न ।
(श्रीमद्भागवत ११.६५,५-१५)

५—महाराज युधिष्ठिर से राजर्षि आर्ष्टिषेण द्वारा कुशल-प्रश्न ।
(महाभारत वनपर्व अ० १५९)

---

८. श्रीमद्भागवत ४.२२.१४।

१३. दैनिक कार्य-सम्पादन

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ।[१]

काम करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। बेकार रह कर नहीं।

अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् धर्मतः कामतोऽर्थतः ।[२]

धर्म, धनार्जन तथा सुखसम्बन्धी विविध कार्यों के सम्पादन द्वारा दिन-रात के समय को सार्थक बनाना चाहिए। कोई भी समय निरर्थक नहीं जाने देना चाहिए।

........कर्मैव गुरुरीश्वरः ।
तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥[३]

कर्म अर्थात् अपना-अपना कर्तव्य ही मनुष्य का गुरु है और ईश्वर है। अतः मनुष्य को चाहिए कि पूर्वसंस्कारों के सातत्य में वर्णाश्रम के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए कर्म की ही पूजा करे। क्योंकि जिस कर्म के द्वारा मनुष्य की जीविका अच्छी तरह चले वह कर्म ही उसका इष्टदेव एवं आराध्य होता है।

आरभेत हि कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥[४]

---

१. ईशोपनिषद् २।

२. कृत्यरत्नाकर।

३. श्रीमद्भागवत १०.२४.१८।

४. मनुस्मृति ९.३००।

काम करनेसे बार-बार थक जाने पर भी बराबर नये-नये काम करते रहना चाहिए। क्योंकि जो मनुष्य बार-बार काम करता रहता है उसकी श्री बराबर बढ़ती रहती है।

यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत् प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥५

जिस काम के करने से अन्तरात्मा को सन्तोष हो वही काम करना चाहिए। जो काम अन्तरात्मा के प्रतिकूल हों उन्हें नहीं करना चाहिए। (यह स्वतन्त्रता अच्छे कामों के ही लिये हैं निन्दित कामों के लिए नहीं)।

पूर्वं निश्चित्य पश्चात् कार्यमारभेत्।६

कौन काम करना और कैसे करना इन सब बातों का पहले निश्चय करके कोई कार्य आरम्भ करना चाहिए।

कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या।७

कार्य करते समय दीर्घसूत्रता नहीं करनी चाहिए।

कालवित् कार्यं साधयेत्।८

समय की गतिविधि को समझते हुए कार्य करना चाहिए।

दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत्।९

बुरे परिणाम वाले कार्यों को नहीं करना चाहिए।

क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात् सर्वकृत्येषु।१०

कोई भी काम करते समय क्षणमात्र को व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए।

---

५. मनुस्मृति अ० ४.१६१।

६-१०. चाणक्यनीतिसूत्र अ० २.९.१०.१५.१४-१७।

देशकालविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ।११

देश-काल की परिस्थिति को देखते हुए कोई कार्य करना चाहिए।

यो यस्मिन् कुशलः तं तस्मिन्नेव नियोजयेत् ।१२

जो व्यक्ति जिस काम के करने में कुशल हो उसे उसी काम में लगाना चाहिए।

अज्ञानिना कृतमपि बहु न मन्तव्यम् ।१३

यदि कोई गँवार व्यक्ति एक बार कोई अच्छा भी काम कर दे तो इतने ही से उसे बहुत सम्मान नहीं देना चाहिए। क्योंकि एक बार किसी काम के संयोगवश अच्छा हो जाने पर भी दूसरे काम बिगड़ सकते हैं।

सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ।१४

कार्य सिद्ध हो जाय तभी उसका प्रकाशन करना चाहिए।

कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ।१५

यदि बहुत काम करने हों तो उनमें जो काम अधिक लाभदायक हो उसी को करना चाहिए।

अप्रतीकारेषु अनादरो न कर्तव्यः ।१६

यदि कोई काम ऐसा आ पड़े जिसका करना सर्वथा अनिवार्य हो तो उसके प्रति अनादर बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। अर्थात् उसे किसी न किसी प्रकार करना ही चाहिए।

११-१४. ,, अ० २.१८.२५.२७.२९-अ.३.६०, अ० ४.१९।
१५. ,, अ० ३.६०।
१६. ,, अ० ४.१९।

कार्यानुरूपः प्रयत्नः ।१७

जैसा काम करना हो उसके अनुरूप ही प्रयत्न करना चाहिए। न बड़े काम के लिए छोटा प्रयत्न करना चाहिए और न छोटे काम के लिए बड़ा।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत ।१८

जो काम कल करना हो उसे आज ही कर लेना चाहिए।

आपराह्णिकं पूर्वाह्ण एव कुर्वीत ।१९

जो काम अपराह्ण में करना हो उसे पूर्वाह्ण में ही करना चाहिए। (इन दोनों सूत्रों का तात्पर्य यह है कि किसी काम के लिए "आजकल-आजकल" नहीं करना चाहिए। उसे यथासम्भव शीघ्र ही कर लेना चाहिए)

व्यवसायी सदा च स्यात् ।२०

किसी न किसी काम में बराबर लगा रहना चाहिए।

नाकार्ये तु मतिं कुर्यात् ।२१

अनुचित काम करने की ओर बुद्धि नहीं ले जानी चाहिए।

असत्कार्य - नियोक्तारं गुरुं वापि प्रबोधयेत् ।२२

यदि गुरु भी अनुचित काम करने के लिए कहें तो उन्हें समझा-बुझा देना चाहिए पर बुरा काम नहीं करना चाहिए।

---

१७. चाणक्यनीतिसूत्र अ० ५.३८।

१८-१९. चाणक्यनीतिसूत्र अ० २.२२-२३।

२०-२१. शुक्रनीति अ० ३.११२।

२२-२७. शुक्रनीति अ० ३.११९.१४५-१४९.२९६।

नातिक्रमेल्लघुं चापि क्वचित् सत्कार्यबोधकम् ।२३

यदि कोई साधारण व्यक्ति भी अच्छा काम करने के लिए कहे तो उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

उत्तमैरननुज्ञातं कार्यं नेच्छेच्च तैः सह ।२४

बड़े लोगों के साथ मिल कर तब तक कोई काम करने का विचार नहीं करना चाहिए जब तक कि उनकी सम्मति न मिल जाय।

अत्यावश्यमनावश्यं क्रमात् कार्यं समाचरेत् ।२५

अत्यावश्यक और अनावश्यक कार्यों को क्रमशः करना चाहिए। अर्थात् पहले अधिक आवश्यक कार्य को करना चाहिए और पीछे साधारण कार्य को।

कालं नियम्य कार्याणि ह्याचरेत् नान्यथा क्वचित् ।२६

तत्तत् कार्यों के लिए समय विभाग बना कर काम करना चाहिए। अनियमित रूप से काम नहीं करना चाहिए।

यत्कार्ये यो नियुक्तः स भूयात् तत्कार्यतत्परः ।२७

जो जिस काम में नियुक्त हो उसे तत्परता के साथ उस काम को करना चाहिए।

न कार्यकालमतिपातयेत् ।२८

काम करने के समय को बेकार नहीं बिताना चाहिए अथवा उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

न अपरीक्षितम् अभिनिविशेत् ।२९

२८-३३. चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८.२८-२९।

बिना समझे-बूझे एक दम किसी काम में नहीं पड़ जाना चाहिए।

न क्रोधहर्षौ अनुविदध्यात् ।३०

क्रोध और हर्ष के आवेश में कोई काम बिना सोचे-विचारे नहीं कर बैठना चाहिए।

न सिद्धौ उत्सेकं गच्छेत् ।३१

किसी काम के सिद्ध हो जाने पर अत्यधिक हर्ष नहीं प्रकट करना चाहिए।

न असिद्धौ दैन्यम् ।३२

काम के सिद्ध न होने पर दैन्य और विषाद भी नहीं प्रकट करना चाहिए।

न 'कृतम्' इति आश्वसेत् ।३३

"कर लिया, काम हो गया" ऐसा समझ कर किसी काम से उपेक्षा नहीं कर बैठना चाहिए। उस पर आगे भी ध्यान रखना चाहिए।

आरम्भं तस्य कुर्याद्धि यत् समाप्तिं सुखं व्रजेत् ।३४

उसी काम का आरम्भ करना चाहिए जो सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाय।

न च व्ययाधिकं कार्यं कर्तुमीहेत पण्डितः ।३५

बुद्धिमान् पुरुष को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिसमें आयसे अधिक व्यय ही हो जाने की सम्भावना हो।

---

३४. शुक्रनीति ४.२११।

३५. ,, ३.२६५।

अति सर्वं नाशहेतुस्ततोऽत्यन्तं विवर्जयेत् ।३६

किसी भी काम में अति करना अपने ही नाश का कारण होता है अतः किसी भी काम में अति नहीं करना चाहिए।

.......................द्राक् स्वकार्यं प्रसाधयेत् ।
उद्योगेन बलेनैव बुद्ध्या धैर्येण साहसात् ।
पराक्रमेणार्जवेन मानमुत्सृज्य साधकः ॥३७

काम करने वाले को चाहिए कि मान-प्रतिष्ठा का विशेष ध्यान न रख कर उद्योग, बल, बुद्धि, धैर्य, साहस, पराक्रम तथा आर्जव (सरलता) आदि उपायों से अपना काम पहले सिद्ध करे।

---

३६. ,, ३.२१९।
३७. ,, ३.११६।

१४. धनोपार्जन तथा सुखोपभोग

पञ्चविंशतिवर्षं यावत् क्रीडा विद्यां व्यसनात् कुर्यात् ।
अत उत्तरमर्थार्जनम् ।१

पचीस वर्ष तक क्रीड़ा-व्यायाम आदि का सेवन तथा विद्याओं का अध्ययन विशेष रूप से करना चाहिए। इसके पश्चात् धन का उपार्जन करना चाहिए।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्वीच्छेत् नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥२

पहले की अपनी गरीबी का ध्यान करते हुए अपने को कभी हीन-भाव से नहीं देखना चाहिए और न अपने भाग्य को कोसना चाहिए। इसके विपरीत मृत्यु के अन्तिम क्षण तक धन-सम्पत्ति कमाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और इसे कभी भी दुर्लभ नहीं मानना चाहिए।

अद्रोहेणैव भूतानाम् अल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय जीवेत् ।३

ऐसी जीविका से जीवन निर्वाह करना चाहिए जिसमें किसी के भी साथ किसी प्रकार का द्रोह न करना पड़े और यदि कदाचित् करना भी पड़े तो बहुत कम।

---

१. बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र १.५८।

२. मनुस्मृति ४.१३७।

३. ,, ४.२।

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ।।४

अनिन्दित और धर्माविरुद्ध काम करते हुए और शरीर को भी बहुत क्लेश न देते हुए इतना धन कमाना चाहिए जिससे कि अपना तथा कुटुम्ब का भी अच्छी तरह निर्वाह हो जाय।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।५

जो धन कमाने वाला व्यक्ति सुख-शान्ति से रहना चाहता हो उसे परम सन्तोष* रखते हुए संयमितरूप से धनार्जन करना चाहिए।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ।
अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वधर्मबहिष्कृतः ।।६

जो धन न्याय के द्वारा उपार्जित हो उसी से अपना तथा कुटुम्ब का भी भरण-पोषण करना चाहिए। इसके विपरीत जो व्यक्ति अन्याय

४-५. मनुस्मृति ४.१२।

६. पाराशरस्मृति १२.२-३।

*सन्तोष शब्द की व्याख्या करते हुए कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि—'जितने धन से अपना तथा अपने आश्रित परिवार एवं सेवकों का भरण-पोषण हो सके और आवश्यक पञ्चमहायज्ञों का, अर्थात् हवन, देवपूजा, अतिथिसत्कार एवं भिक्षुओं तथा पशु-पक्षियों के लिए अन्नदान आदि कर्तव्यों का पालन हो सके उतना धन अवश्य कमाना चाहिए' उससे अधिक धन कमाने की स्पृहा न रखना ही सन्तोष कहलाता है। अतः उपर्युक्त आवश्यकता से अधिक धन बिटोरने में, सुख-शान्ति चाहने वाले व्यक्ति को, संयम रखना चाहिए।

यथासम्भव-भृत्यात्मप्राणधारणावश्यक - पञ्चयज्ञाद्यनुष्ठानमात्रोचित-धनानधिका स्पृहा सन्तोषः। तमतिशयितमालम्ब्य प्रचुरधनार्जने संयमं कुर्यात्।

से धन कमाता और उससे जीवन निर्वाह करता है वह सब धर्मों से बहिष्कृत हो जाता है।

परोपघातक्रियया वर्जयेदर्जनं श्रियः।
अप्यल्पहानिः सोढव्या वैरेणार्थागमं त्यजेत् ॥७

दूसरे को कष्ट देकर अथवा दूसरे की हानि कर धनोपार्जन नहीं करना चाहिए। थोड़ी सी हानि भी होती हो तो सह लेनी चाहिए पर किसी के साथ वैर-विरोध एवं लड़ाई-झगड़ा करके धनार्जन नहीं करना चाहिए।

उत्कोच-द्यूत-चौर्यार्ति-प्रतिरूपक-साहसैः।
व्याजेनोपार्जितं यच्च तत् कृष्णं समुदाहृतम् ॥८

घूस, जूआ, चोरी एवं लूट-पाट, अत्याचार-भ्रष्टाचार, नकली काम, बलात्कार तथा छलकपट से जो धन कमाया जाता है वह काला धन कहलाता है। ऐसा धन नहीं कमाना चाहिए और न रखना चाहिए।

धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम्।
एकेनांशेन धर्मस्तु कर्तव्यो भूतिमिच्छिता।
एकेनांशेन कामश्चाप्येकमंशं विवर्धयेत् ॥९

धर्म से ही धन कमाना चाहिए और उसका तीन प्रकार से उपयोग करना चाहिए। एक अंश से धार्मिक काम करना चाहिए, दूसरे अंश से सुखोपभोग करना चाहिए और तीसरे अंश को धनवृद्धि के काम में लगाना चाहिए।

---

७. विष्णुपुराण तृतीय अंश ८.२३।

८. नारदस्मृति।

९. महाभारत।

दत्तभुक्तफलं धनम् ।[१०]

दान और उपभोग ये ही दो धन कमाने के फल हैं। अतः धन होने पर उसका दान और उपभोग दोनों ही करना चाहिए।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।[११]

जो कुछ धन कमाया जाय उसका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए तथा दूसरे की धन-सम्पत्ति को हड़पने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

जीवितं धर्मकामौ च धने यस्मात् प्रतिष्ठितौ ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धनहिंसां विवर्जयेत् ॥[१२]

जीवन तथा धर्म एवं काम ये तीनों धर्म के ऊपर ही प्रतिष्ठित हैं। अर्थात् सब का आधार धन ही है। इसलिए किसी भी प्रकार धन की हिंसा नहीं करनी चाहिए। अपव्यय, दुरुपयोग तथा नष्ट होने से धन को बचाये रहना चाहिए।

आपदर्थे धनं रक्षेत् ।[१३]

संकट के समय के लिए भी कुल धन सुरक्षित रखना चाहिए।

सुखोपभोग :

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत, न निस्सुखः स्यात् ।[१४]

धर्म और अर्थ की हानि न करते हुए तदनुकूल काम का अर्थात्

---

१०. महाभारत उद्योग० ३९.६६।

११. ईशोपनिषद् १।

१२. विष्णुस्मृति ५२.१६।

१३. महाभारत उद्योग० ३७.१८।

१४. कौटलीय अर्थशास्त्र।

सब प्रकार के विषयसुख का सेवन करना चाहिए। सुखरहित नहीं रहना चाहिए।

नो खल्वयं प्रेक्षावतां समाचारो यद् दुःखभिया सुख-परित्याग इति। अपितु सुखं दुःखाद् विभिद्य उपाददते दुःखं च वर्जयन्ति।१५

....तस्माद् दुःखभयात् नानुकूलवेदनीयमैहिकं वामुष्मिकं वा सुखं परित्यक्तुमुचितम्।१६

सांसारिक जीवन में दुःख के भय से सुख का भी परित्याग कर देना विद्वानों की मान्यता नहीं है। अपितु वे दुःख में से सुख को अलग कर सुख का ग्रहण करते हैं और दुःख का परित्याग कर देते हैं।

....इसलिए दुःख के भय से ऐहिक अथवा आमुष्मिक अनुकूल सुख का परित्याग करना उचित नहीं है।

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्॥१७

जिन सुखों का सेवन करने से भी धर्म और अर्थ से मनुष्य हीन नहीं होता उन सुखों का भलीभाँति सेवन करना चाहिए। सब प्रकार सुख का परित्याग करने का मूढ़व्रत नहीं लेना चाहिए।

अहिरण्यम्, अदासीकम्, अल्पान्नाद्यम् अगोरसम्।
गृहं कृपणवृत्तीनां नरकस्यापरो विधिः॥१८

---

१५. न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका ५.६२।

१६. ब्रह्मसूत्र के १, १, १ सूत्र पर भामती व्याख्या।

१७. महाभारत उद्योग० ३९.६२।

१८. महाभारत।

जिस घर में सोना न हो, नौकर-चाकर न हों, पर्याप्त खाद्य-पेय सामग्री न हो तथा दूध, दही और घी न हो वह निर्धन लोगों का घर एक दूसरे प्रकार का नरक ही होता है।

अपि चाऽत्र (गृहस्थाश्रमे) माल्याऽभरण-वस्त्राभ्यङ्ग-नित्योपभोग-नृत्यगीतवादित्र -श्रुतिसुख - नयनाभिरामदर्शनानां प्राप्तिः, भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-पेय-चोष्याणाम् अभ्यवहार्याणां विविधानामुपभोगः स्वविहारसन्तोषः कामसुखावाप्तिरिति ।१९

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए महर्षि भृगु कहते हैं—

इस गृहस्थाश्रम की यह भी विशेषता है कि इसमें नित्य नये-नये माल्य, आभरण, वस्त्र एवं अनुलेपन (तेल-उबटन) आदि का उपभोग होता है, नृत्य, गीत एवं वादित्र आदि श्रुतिसुखद तथा नयनाभिराम वस्तुओं के दर्शन का अवसर मिलता है तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय एवं चोष्य आदि विविध खाद्य-पेय वस्तुएँ मिलती रहती हैं। अपने उद्यान में घूमने-फिरने का आनन्द प्राप्त होता है और कामसुख की भी उपलब्धि होती है।

इस वचन के अनुसार गृहस्थाश्रमी स्त्री-पुरुषों को समस्त सुख-साधनों का संग्रह तथा उपभोग करना चाहिए।

नैकः सुखी ।२०

सुखों का उपभोग अकेले नहीं करना चाहिए।

एकः स्वादु न भुञ्जीत ।२१

---

१९. महाभारत शान्ति० १९१.६१।

२०. शुक्रनीति ३.१३।

२१. महाभारत उद्योग० ३३.५३।

स्वादिष्ट वस्तुओं का अकेले भोजन नहीं करना चाहिए।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यति लालयेत् ।[२२]

इन्द्रियों को उनके उचित सुखोपभोग से वञ्चित कर कष्ट नहीं देना चाहिए पर उन्हें अधिक दुलारना तथा उच्छृङ्खल भी नहीं बनाना चाहिए।

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना ।
तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ।।[२३]

गृहस्थ को धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों के साधन-सम्पादन हेतु प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि इनके सिद्ध होने पर ही इस लोक एवं परलोक में भी मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है।

---

२२. शुक्रनीति ३.१६।

२३. ब्रह्मपुराण २११.१०।

१५. ज्ञानार्जन तथा स्वाध्याय

स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।१

स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् ।२

स्वाध्याय में निरन्तर लगे रहना चाहिए।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् ।३

ऋपिप्रणीत ग्रन्थां के स्वाध्याय के द्वारा ऋपियों की पूजा करनी चाहिए।

द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवाऽपरा च ।४

परा (ब्रह्मविद्या या अध्यात्मविद्या) एवं अपरा (भौतिकविद्या या लौकिकविद्या) इन दोनों विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ।।५

बुद्धि वढ़ाने वाले इतिहास, पुराण एवं नीतिशास्त्र आदि ग्रन्थों का, धन-सम्पत्ति वढ़ाने वाले कृपि, वाणिज्य एवं अर्थशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थों का

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली।

२. मनुस्मृति ३.६५।

३. ,, ३.७१।

४. मुण्डकोपनिषद्।

५. मनुस्मृति ४.१९।

तथा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र आदि सबके लिए हितकारक ग्रन्थों का यथाऽवसर प्रतिदिन अध्ययन करना चाहिए।

इसी प्रकार वैदिक ग्रन्थों तथा अन्य शास्त्रों का भी अध्ययन एवं अवलोकन करते रहना चाहिए।

श्रद्दधानः शुभां विद्याम् आददीताऽवरादपि ।[६]

अपने से छोटी जाति, कुल अथवा अवस्था के व्यक्ति से भी उत्तम विद्या या ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद् वा
वैश्यात् शूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम्।
श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं
न श्रद्धिनं जन्म-मृत्यू विशेताम् ॥[७]

श्रद्धालु व्यक्ति को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या किसी नीच व्यक्ति

६. ,, ४.१५८।

७. महाभारत शान्तिपर्व ३१८.८८।

❀ दूसरे देश के विद्वानों से ज्ञानार्जन और उनका सम्मान :

वराहमिहिर ने अपनी वृहत्संहिता के द्वितीय अध्याय में गर्गाचार्य का एक श्लोक उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्याः स्युः।

म्लेच्छ ग्रीक विद्वानों में यह ज्योतिषशास्त्र वहुत उत्तम रूप से प्रतिष्ठित है। अतः वे भी ऋषियों के समान ही पूज्य हैं। इस उक्ति के अनुसार विदेशी विद्वानों का भी उत्तम ज्ञान ग्रहण करना चाहिए और उनका आदर-सम्मान भी करना चाहिए।

से भी ज्ञान प्राप्त कर उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए। जो व्यक्ति कहीं से भी श्रद्धा के साथ ज्ञान प्राप्त करता है वह जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।८

विनयपूर्ण व्यवहार, प्रश्न एवं जिज्ञासा तथा सेवा-शुश्रूषा के द्वारा ज्ञानियों एवं गुरुजनों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।९

जो व्यक्ति श्रद्धावान् होता है, ज्ञानार्जन में बराबर संलग्न रहता है तथा इन्द्रियों पर संयम रखता है वही ज्ञान प्राप्त करता है।

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।१०

एक-एक क्षण से तथा एक-एक कण से विद्या एवं धन का संग्रह करना चाहिए। ज्ञानार्जन तथा धनार्जन में एक-एक क्षण तथा एक-एक कण का महत्त्व मान कर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

यः पठति लिखति पश्यति परिपृच्छति पण्डितानुपाश्रयति।
तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीदलमिव विकाश्यते बुद्धिः॥११

जो व्यक्ति बराबर पढ़ता है, लिखता है, ग्रन्थों का अवलोकन करता है, विद्वानों से ज्ञातव्य विषयों को पूछता रहता है तथा उनके सम्पर्क में रहता है उसकी बुद्धि उसी प्रकार विकसित होती रहती है जिस प्रकार दिवाकर की किरणों से कमल का फूल विकसित होता है।

पठतो नास्ति मूर्खत्वम्।१२

---

८. भगवद्गीता ४.३४।

९.-१०. ४.३९।

११. सुभाषितरत्नभाण्डागार।

१२. ,, ,,

जो व्यक्ति बराबर कुछ पढ़ता रहता है वह मूर्ख नहीं रहता।

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यात् अश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥[१३]

प्रलाप करता हुआ चाहे पागल आदमी हो अथवा बच्चों जैसी बातें करता हुआ बालक हो, सब प्रकार के लोगों से उसी प्रकार उत्तम बातें ग्रहण कर लेनी चाहिए जिस प्रकार पत्थर के ढेर में से सुवर्ण ग्रहण कर लिया जाता है।

पढ़ने और उच्चारण करने की रीति :

न अवपतितम्।[१४]

हीन मात्रा में नहीं पढ़ना चाहिए।

न अतिमात्रम्।[१५]

अधिक मात्रा में नहीं पढ़ना चाहिए।

न तान्तम्।[१६]

रूक्ष तथा कर्कश स्वर से नहीं पढ़ना चाहिए।

न विस्वरम्।[१७]

अशुद्ध स्वर से तथा बिना स्वर के नहीं पढ़ना चाहिए।

न अनवस्थितपदम्।[१८]

प्रत्येक पद को बिना सुष्पष्ट तथा पृथक् किये नहीं पढ़ना चाहिए।

न अतिद्रुतम्।[१९]

बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पढ़ना चाहिए।

---

१३. महाभारत उद्योग० ३४.३३।

१४-२३. चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८।

न विलम्बितम् ।२०

बहुत धीरे-धीरे भी नहीं पढ़ना चाहिए तथा रुक-रुक कर भी नहीं पढ़ना चाहिए।

न अतिक्लीवम् ।२१

बहुत निष्प्राण होकर नहीं पढ़ना चाहिए। पर इसके विपरीत औद्धत्य और वीरता प्रदर्शन पूर्वक भी पढ़ना ठीक नहीं है।

न अत्युच्चैः स्वरैः ।२२

अत्यन्त उच्च स्वर से नहीं पढ़ना चाहिए।

न अतिनीचैः स्वरैः अध्ययनमभ्यसेत् ।२३

अत्यन्त नीच स्वर से भी नहीं पढ़ना चाहिए। अर्थात् न ऐसा ही पढ़ना चाहिए कि कान फट जाय और न ऐसा ही पढ़ना चाहिए कि किसी को सुनाई ही न पड़े।

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।।२४

गाते हुए नहीं पढ़ना चाहिए।

बहुत शीघ्रता से नहीं पढ़ना चाहिए।

शिर हिलाते हुए नहीं पढ़ना चाहिए।

अपने से लिख कर—बिना उसे किसी योग्य व्यक्ति से दिखाये—नहीं पढ़ना चाहिए।

बिना अर्थ समझे हुए नहीं पढ़ना चाहिए। तथा—

कण्ठ से वर्णों का अल्प तथा अस्पष्ट उच्चारण करते हुए नहीं पढ़ना चाहिए। (जो लोग इन नियमों के विपरीत पढ़ते हैं वे निकृष्ट कोटि के पाठक होते हैं)

माधुर्य्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमत्वञ्च षडेते पाठके गुणाः ॥२५

मधुरता के साथ पढ़ना चाहिए ।
अक्षरों का साफ-साफ अलग-अलग उच्चारण करना चाहिए ।
पदों को अलग-अलग करके पढ़ना चाहिए ।
सुन्दर स्वर से पढ़ना चाहिए ।
धीरता के साथ पढ़ना चाहिए । तथा—
लय अर्थात् विराम तथा छन्द के साथ पढ़ना चाहिए ।
(ये छः उत्तम पाठकों के गुण हैं)

शङ्कितं भीतमुद्घुष्टं अव्यक्तम् अनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ॥२६
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम् ।
व्याकुल तालहीनं च पाठदोषाश्चतुर्दश ॥२७

शङ्कित के रूप में नहीं पढ़ना चाहिए ।
भीत (डरे हुए) के रूप में नहीं पढ़ना चाहिए ।
उद्घोष के रूप में नहीं पढ़ना चाहिए ।
अस्पष्ट रूप में नहीं पढ़ना चाहिए ।
नाक से बोलते हुए नहीं पढ़ना चाहिए ।
कौए के समान कण्ठ दबा कर नहीं पढ़ना चाहिए ।
केवल मूर्धा से ही उच्चारण नहीं करना चाहिए ।
अक्षरों को स्थानरहित उच्चारण नहीं करना चाहिए ।
नीरस उच्चारण नहीं करना चाहिए ।

२४-२५. पाणिनीयशिक्षा ३२ ।

२६-२९. याज्ञवल्क्यशिक्षा २.२८.२९ ।

स्वरहीन उच्चारण नहीं करना चाहिए।

अक्षरों को अलग-अलग करके उच्चारण नहीं करना चाहिए।

विषम आघात देकर उच्चारण नहीं करना चाहिए।

व्याकुल की तरह उच्चारण नहीं करना चाहिए, तथा तालहीन उच्चारण नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त चौदह पाठ्यदोष माने गये हैं। इस प्रकार का उच्चारण या वाचन नहीं करना चाहिए।

मधुरं च न चाव्यक्तं व्यक्तं चापि न पीडितम्।२८

अक्षरों का मधुर उच्चारण करना चाहिए पर माधुर्य भी इतना नहीं होना चाहिए कि अक्षरों का स्पष्ट श्रवण न हो।

साथ ही अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण भी इस प्रकार नहीं करना चाहिए जिससे मालूम पड़े कि अक्षरों को दबा कर उच्चारण हो रहा है।

पठन् नाऽन्यमतिर्भवेत्।२९

पढ़ते समय मन में अन्य बातों को नहीं सोचना चाहिए। तन्मना होकर पढ़ना चाहिए।

१६. लेख तथा पत्र-व्यवहार

शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् शुभान् ।
अक्षरान् वै लिखेद् यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः ॥[१]

शिर पर की रेखा से संयुक्त अक्षरों को लिखना चाहिए।

पूरे-पूरे अक्षरों को लिखना चाहिए। अक्षरों के रूप को बिगाड़ कर नहीं।

समान पंक्ति में अक्षरों को लिखना चाहिए।

सुन्दर अक्षरों को लिखना चाहिए।

जो व्यक्ति इस प्रकार अक्षरों को लिखता है वही श्रेष्ठ लेखक है।

अतिकार्श्यम् अतिस्थौल्यं वैषम्यं पङ्क्तिवक्रता ।
अतुल्यानां च सादृश्यं अविभागः पदेषु च ॥
लेखदोषा इमे प्रोक्ताः सन्त्याज्या लेखकैः सदा ॥[२]

अत्यन्त छोटे-छोटे अक्षरों का लिखना,

अत्यन्त मोटे-मोटे अक्षरों का लिखना,

किसी अक्षर को छोटा और किसी अक्षर को बड़ा लिखना,

पंक्ति (लाइन) को टेढ़ी करके लिखना,

जो अक्षर बराबर न हों उनको भी बराबर—एक समान करके लिखना, तथा—

पदों को अलग-अलग करके न लिखना,

ये सब लेख के दोष हैं। इन दोषों से बच कर लिखना चाहिए।

---

१. अग्निपुराण अ० २१५.२७ ।

२. विश्वभारती पञ्चम वर्ष तृतीय अंक ।

अर्थक्रमः सम्बन्धः परिपूर्णता माधुर्यम् औदार्यम् स्पष्टत्वम् इति लेखसम्पत् ।३

अर्थक्रम, सम्वन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य और स्पष्टता ये लेख के गुण हैं।

अत्र यथावत् अनुपूर्वक्रियाप्रधानस्य अर्थस्य पूर्वमभिनिवेश इति अर्थस्य क्रमः ।४

प्रधान अर्थ (विषय) और अप्रधान अर्थ (विषय) को पूर्वापर यथानुक्रम में रखना अर्थक्रम कहलाता है।

प्रस्तुतस्य अर्थस्य अनुरोधात् उत्तरस्य विधानमासमाप्तेः इति सम्वन्धः ।५

जिस विषय का आरम्भ किया गया हो उसका सम्बन्ध रखते हुए आगे का विषय लिखना सम्बन्ध कहलाता है।

अर्थपदाक्षराणाम् अन्यूनातिरिक्तता, हेतूदाहरणदृष्टान्तैः अर्थोपवर्णना, अश्रान्तपदता इति परिपूर्णता ।६

अर्थ, पद तथा अक्षरों में कमी-वेशी न करना, हेतु उदाहरण एवं दृष्टान्त के द्वारा अर्थ प्रतिपादन करना तथा अभिलषित अर्थ को व्यक्त करने के लिए ढीले, निर्बल शब्दों का प्रयोग न कर जोरदार शब्दों का प्रयोग करना परिपूर्णता कहलाता है।

सुखोपनीत-चार्वर्थ-शब्दाभिधानं माधुर्यम् ।७

सरलता से समझने योग्य एवं रमणीय अर्थ एवं शब्द का प्रयोग करना माधुर्य कहलाता है।

३-९. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २.१०, ४८.१४।

१०-१५. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २ अ० १०.५९-६४।

अग्राम्यशब्दाभिधानम् औदार्यम् ।८

देहाती, अश्लील एवं असभ्य शब्दों का प्रयोग न करना औदार्य कहा जाता है।

प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वम् ।९

प्रसिद्ध एवं स्पष्टार्थक शब्दों का प्रयोग स्पष्टता कहलाता है। इन गुणों से युक्त लेख लिखना चाहिए।

अकान्तिः व्याघातः पुनरुक्तम् अपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः ।१०

अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द और संप्लव ये लेख के दोषहैं।

तत्र कालपत्रम् अचारुविषमविरागाक्षरत्वम् आकन्तिः ।११

गन्दे कागज पर लिखना, सुन्दर अक्षर न बनाना, छोटा-बड़ा अक्षर लिखना, तथा चमकदार अक्षर न लिखना अकान्ति कहलाता है।

पूर्वस्य पश्चिमेनानुपपत्तिः व्याघातः ।१२

आगे-पीछे के लेख का परस्पर सम्बन्ध नहोना व्याघात कहलाताहै।

उक्तस्याविशेषेण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम् ।१३

कही हुई बात को ही विना किसी विशेषता के पुनः दुहराना पुनरुक्त कहलाता है।

लिङ्ग-वचन-काल-कारकाणाम् अन्यथा प्रयोगः अपशब्दः ।१४

लिङ्ग वचन काल एवं कारकों का अशुद्ध प्रयोग अपशब्द कहलाता है।

अवर्गे अवर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लवः ।१५

जहाँ विराम करना उचित न हो वहाँ विराम करना तथा जहाँ उचित हो वहाँ न करना और गुण का विपर्यास कर देना संप्लव कहलाता है।

इन दोषों से रहित लेख लिखना चाहिए।

पत्र-व्यवहार :

स्वकीयवृत्तज्ञानार्थं लिख्यते यत् परस्परम्।
श्रीमङ्गलपदाद्यं वा सपूर्वोत्तरपक्षकम्॥
असन्दिग्धमगूढार्थं स्पष्टाक्षरपदं सदा।
अन्यव्यावर्तक - स्वात्म - परपित्रादिनाम युक्॥
एकद्विबहुवचनैर् यथार्ह - स्तुति - संयुतम्।
समा - मास - तदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम्॥१६

अपना तथा अपने लोगों का समाचार जानने के लिए जो परस्पर पत्र लिखा जाता है उसे क्षेमपत्र कहते हैं। इसमें निम्नलिखित बातें होनी चाहिए—

श्रीमङ्गलपदाद्यं वा,

पत्र के आरम्भ में श्री आदि मांगलिक पद होना चाहिए।

सपूर्वोत्तरपक्षकम्,

पूर्व और उत्तर दोनों पक्ष की बातें लिखी जानी चाहिए।

असन्दिग्धम् ।१७

पत्र सन्देहयुक्त बातों से रहित होना चाहिए।

अगूढार्थम्,

१६-२६. शुक्रनीति अ० २, १०५-१०८।

गूढार्थक पत्र नहीं लिखना चाहिए।

स्पष्टाक्षरपदं तथा ।१९

अक्षरों और पदों को बराबर साफ-साफ लिखना चाहिए।

अन्यव्यावर्तक-स्वात्म-परपित्रादिनामयुक् ।२०

दूसरों की व्यावृत्ति के लिए अपने तथा अपने पिता आदि के नाम से युक्त होना चाहिए।

एकद्विबहुचनैर् यथार्ह-स्तुति-संयुतम् ।२१

एकवचन द्विवचन और बहुवचनों से यथोचित प्रशंसा के साथ पत्र लिखना चाहिए।

समा-मास-तदर्धाहर्नामज्यात्यादिसंयुतम्,

वर्ष, मास, पक्ष तथा दिन आदि से चिह्नित पत्र होना चाहिए।

कार्यबोधि ।२२

ऐसा पत्र लिखना चाहिए जिससे कार्य का ज्ञान स्पष्ट रूप से हो जाय।

सुसम्बन्धम् ।२३

बातें परस्पर संबद्ध होनी चाहिए।

नत्याशीर्वाद-पूर्वकम् ।२४

पत्र यथोचित प्रणाम एवं आशीर्वाद के साथ लिखना चाहिए।

स्वाम्य-सेवक-सेव्यार्थम् ।२५

स्वाम्य स्वामी तथा सेवक के भाव से युक्त पत्र होना चाहिए।

●

१७. क्रीडा एवं आमोद-प्रमोद

पञ्चनाडिका हास्यक्रीडा स्निग्धैः ।[१]

पाँच नाड़ी पर्यन्त प्रियमित्रों के साथ हास्य-विनोद एवं क्रीडा करनी चाहिए।

तुल्यशीलवयोभिः क्रीडितव्यम् ।[२]

समान शील और समान अवस्था वालों के साथ एकान्त में अर्थात् अपने समाज में खेलना चाहिए।

गजाश्वक्रीडे व्यक्ते ।[३]

हाथी और घोड़ों के खेल प्रकट अर्थात् सार्वजनिक रूप से खेलने चाहिए।

क्रीडेन्नाज्ञैः ।[४]

जो खेलना न जानते हों उनके साथ नहीं खेलना चाहिए।

तथा न क्रीडयेत् कैश्चित् कलहाय यथा भवेत् ।[५]

खेल में ऐसी कोई वात नहीं होनी चाहिए जिससे खेलने वालों में परस्पर झगड़ा हो जाय।

---

१. वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र १.३९।

२. ,, ,, १.२४।

३. ,, ,, १.२५।

४. स्कन्दपुराण ब्रा० ध० ६.७१।

५. शुक्रनीति अ० ३।

पक्षद्वये समान् कुर्याद् भृत्यान् केलिसुखोचितान् ।
न बालान्नातिवृद्धांश्च न स्थूलान्न रुजान्वितान् ॥
समानवयसो दक्षान् लघुसंचारकोविदान् ।
गणमेकान्ततो रम्यं स्वीकृत्य क्रीडनं चरेत् ॥६

जो लोग क्रीड़ासुख के पात्र हों ऐसे लोगों को दो भागों में समान संख्या में बाँट कर क्रीड़ा करनी चाहिए ।

जो बालक हों, अतिवृद्ध हों एवं मोटे तथा रोगी हों उनके साथ क्रीड़ा नहीं करनी चाहिए ।

जो लोग समान अवस्था के हों, चतुर हों और फुर्ती से चलने एवं दौड़ने में कुशल हों ऐसे लोगों का सुन्दर संघ बनाकर क्रीड़ा करनी चाहिए ।

गृहीतप्रसाधनस्य अपराह्णे गोष्ठीविहाराः ।७

दिन का काम करने के बाद अपराह्ण में विहारोचित वेषभूषा धारण कर मित्रों के साथ गोष्ठीविहार करना चाहिए ।

प्रदोषे च सङ्गीतकानि ।८

घटानिबन्धनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्,
उद्यानगमनम्, समस्याः क्रीडाश्च प्रवर्तयेत् ।९

सन्ध्या के समय सङ्गीत का आयोजन करना चाहिए ।

नागरिकों को सामूहिक रूप से घटानिबन्धन, गोष्ठीसमवाय, समापानक, उद्यानगमन तथा समस्याक्रीड़ा आदि मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए ।

घटानिबन्धन—महीने या पक्ष के अन्त में अथवा जो दिन जिस देवता के नाम से प्रसिद्ध हो उस दिन उस देवता की सामूहिक पूजा-

---

६. मानसोल्लास भाग ३.४.३६०-३६१ ।

७-८-९. वात्स्यायन कामसूत्र अधि० १ अ० ४ ।

अर्चा तथा नृत्य, गीत, वाद्य, नाटक, खेल-तमाशा आदि का एक या एकाधिक दिन आयोजन करना घटानिवन्धन कहलाता है।

गोष्ठीसमवाय—सभा में या एक-दूसरे के घर में विद्या, बुद्धि, शील, धन और अवस्था में समान नागरिकों का इकट्ठा होना, समयानुरूप चर्चा करना तथा काव्य-साहित्य एवं कला सम्बन्धी समस्याओं पर चिन्तन-मनन करना गोष्ठीसमवाय कहलाता है।

समापानक—समय-समय पर नागरिकों का एक-दूसरे के घर जाकर जलपान गोष्ठी में सम्मिलित होना और विविध प्रकार के रसमय पेय-पदार्थों का पीना-पिलाना समापानक कहलाता है।

उद्यानगमन—समय-समय पर सजधज के साथ बाग-बगीचों में जाना, वहाँ भ्रमण करना तथा खेल-तमासे आदि से मनोरंजन करना उद्यानगमन या वनविहार कहलाता है। इसी प्रकार समय-समय पर जलविहार का भी आयोजन किया जाना चाहिए।

समस्याक्रीड़ा—लोकप्रसिद्ध पर्वों, त्यौहारों एवं उत्सवों के दिन सामूहिक रूप से सर्वसाधारण तथा विशिष्ट प्रकार के खेल-कूद का आयोजन समस्याक्रीड़ा कहलाता है।

सुसंस्कृत नागरिकों को सामूहिक रूप से उक्त कार्यकलापों का समय-समय पर आयोजन करते रहना चाहिए।

नाक्षैर्दीव्येत् कदाचित्तु ।[१०]

जुआ कभी भी नहीं खेलना चाहिए।

सार्वजनिक मनोरंजन—खेल-तमासा आदि में चन्दा दान :

प्रेक्षायामनंशदः स्वस्वजनो न प्रेक्षेत ।[११]

---

१०. मनुस्मृति ४.७४।

११-१२. कौटलीय अर्थशास्त्र अधि० ३, अ० १०।

यदि कोई नागरिक सार्वजनिक मनोरंजन के कार्यों में अपने हिस्से का चन्दा न दे तो उसे और उसके परिवार को उस खेल-तमासे में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

प्रच्छन्न-श्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ।१२

यदि वे छिपकर तमासा देखें या सुनें और जो गाँव के सर्वहितकारी कामों में भाग न लें उनसे दुगुना चन्दा वसूल करना चाहिए।

भारतीय क्रीड़ा एवं आमोद-प्रमोद के विविध भेदों के विस्तृत ज्ञान के लिए निम्नलिखित ग्रन्थों का अवलोकन उपयोगी होगा।

१. वात्स्यायन कामसूत्र अधि० १, अ० ४ नागरकवृत्त।

२. श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अ० ११, ११, १८।

३. मानसोल्लास तृतीय भाग, अ० १६-२०।

(वीस प्रकार के विनोदों तथा बीस प्रकार की क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन।

४. शूलपाणि आचार्यकृत चतुरङ्गदीपिका (शतरंज का वर्णन)।

५. हस्तिशास्त्र।

६. अश्वशास्त्र।

७. श्यैनिकशास्त्र। (शिकार खेलने का शास्त्र)

८. कौटलीय अर्थशास्त्र।

९. महाभारत आदिपर्व १३४-१३५।

(पाण्डवों तथा दुर्योधन आदि कौरवों के अस्त्र-शस्त्र शिक्षा की परीक्षा एवं प्रतियोगिता तथा उसकी सजावट एवं तैयारी का रोचक वर्णन)।

१८. सभा एवं राजदरबार

न तत्र उपविशेत् यत एनमन्य उत्थापयेत् ।[१]

सभा में ऐसे स्थान पर नहीं बैठना चाहिए जहाँ से कोई उठा दे ।

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी ।।[२]

या तो सभा में जाना ही नहीं चाहिए और यदि जाना चाहिए तो समञ्जस अर्थात् न्याययुक्त बातें कहनी चाहिए। क्योंकि सभा में जाकर जो कुछ नहीं बोलता (चुपचाप सब बैठे-बैठे सुनता रहता है) अथवा बातों को बिगाड़ कर बोलता है, अनुचित और न्यायविरुद्ध बोलता है वह पाप का भागी होता है ।

विजृम्भण-क्षुतोद्गार-हास्यादीन् पिहिताननः ।
कुर्यात् सभासु नो नासा-शोधनं हस्तमोटनम् ।।[३]

सभा-सम्मेलनों में, जँभाई, छींक, ढकाँर तथा हास्य आदि; हाथ से मुँह ढँक कर सभ्यता के साथ करना चाहिए ।

सभास्थल में अँगुली आदि से नाक की सफाई तथा हाथ मरोड़ना एवं अँगुली वजाना आदि अनुचित चेष्टाएँ नहीं करनी चाहिए ।

कुर्यात् पर्यस्तिकां नैव न च पादप्रसारणम् ।
न निद्रां विकथां नापि सभायां कुक्रियां न च ।।[४]

---

१. बौधायनस्मृति २.३.५६ ।

२. मनुस्मृति ८.१३ ।

३-४. विवेकविलास २.९४-९५ ।

सभाओं में पलत्थी लगा कर तथा पैर पसार कर नहीं बैठना चाहिए।

सभास्थल में सोना तथा ऊँघना नहीं चाहिए।

वहाँ पर अप्रासङ्गिक तथा अनावश्यक बातें नहीं करनी चाहिए। तथा–

सभा में कोई अनुचित, निषिद्ध तथा निरर्थक काम नहीं करना चाहिए।

राजदरबार :

आयुक्त-प्रदिष्टायां भूमौ अनुज्ञातः प्रविशेत् ।[५]

राजसभा में वहाँ के आयुक्त (प्रबन्धक) द्वारा जहाँ बैठने का प्रवन्ध किया गया हो वहाँ उसकी अनुमति लेकर प्रवेश करना तथा बैठना चाहिए।

उपविशेच्च पार्श्वतः सन्निकृष्टविप्रकृष्टः ।[६]

राजसभा में आवश्यकतानुसार राजा अथवा अध्यक्ष के समीप अथवा अलग जहाँ उचित हो, बैठना चाहिए।

परासनं, विगृह्य कथनम्, असभ्यम्, अप्रत्यक्षम्, अश्रद्धेयम्, अनृतं च वाक्यम्, उच्चैरनर्मणि हासम्, वातष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात् ।[७]

दूसरे के आसन पर बैठना,

किसी के साथ झगड़ कर बातें करना,

५-९. कौटलीय अर्थशास्त्र, योगवृत्ताधिकरण अ० ४.५-९।

असभ्यतापूर्ण बातें करना,

जो बातें प्रत्यक्ष देखी हुई न हों उन्हें कहना,

ऐसी बातें करना जिन पर किसी को श्रद्धा-विश्वास न हो सके,

झूठ वचन बोलना,

विना हँसी की बातों के भी जोर से हँसना, तथा--

अधोवायु और खँकार शब्द के साथ छोड़ना आदि बातें सभाओं में नहीं करनी चाहिए।

मिथः कथनमन्येन, जनवादे द्वन्द्वकथनं, राज्ञो वेषमुद्धत-कुहकानां च, रत्नातिशय-प्रकाशाभ्यर्थनम्, एकाक्ष्योष्ठनिर्भोगं भ्रुकुटीकर्म, वाक्यापक्षेपणं च ब्रुवति, बलवत्संयुक्तविरोधं, स्त्रीभिः स्त्रीदर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थ्यैश्च प्रति-संसर्गम्, एकार्थचर्यां, संघातं च वर्जयेत्।८

दूसरे के साथ आपस में बातें या कानाफूसी नहीं करनी चाहिए।

लोगों के विवाद में किसी एक पक्ष को लेकर विवाद नहीं करना चाहिए।

राजा का तथा उद्धतों एवं पाखण्डियों का वेष नहीं धारण करना चाहिए।

सबके सन्मुख राजा से उत्तम-उत्तम रत्नों को नहीं माँगना चाहिए।

एक आँख और ओंठ को मोड़ कर भौहें नहीं चलानी चाहिए।

राजा की बातों में बीच में नहीं टोकना चाहिए।

बलवान् से सम्बन्ध रखने वालों से विरोध नहीं करना चाहिए।

स्त्री, स्त्रियों के सेवक, सामन्तों के दूत, राजा के द्वेषी तथा तिरस्कृत एवं अनर्थ करने वालों से संसर्ग नहीं करना चाहिए।

एक ही बात बार-बार नहीं कहनी चाहिए।
संघ, पार्टी या दल नहीं बनाना चाहिए।
(ये नियम विशेष कर राजपुरुषों के लिए हैं)।

अभिहास्येष्वभिहसेद् घोरहासांश्च वर्जयेत् ।९

राजा के हँसने पर, काठ की तरह खड़ा न होकर, स्वयं भी हँसना चाहिए परन्तु भयंकर रूप से नहीं हँसना चाहिए।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति
सत्यं न तद् यच्छलनाऽनुविद्धम् ॥१०

वह सभा नहीं जिसमें वृद्ध लोग न हो,
वे वृद्ध नहीं जो धर्म की बात न करते हों,
वह धर्म नहीं जिसमें सत्य न हो, और
वह सत्य नहीं जिसमें छिपे रूप से छल-कपट हो।

इस उक्ति के अनुसार सभाओं में वृद्ध लोगों का सम्मिलित होना अनिवार्य है पर उन्हें कोई छल-कपट न रखते हुए सचाई के साथ धर्म का प्रतिपादन करना चाहिए।

•

---

१०. विदुरनीति २.५८।

१६. गंगास्नान एवं सेवा

वस्त्रस्य क्षालनं चैव स्वगात्रमलकर्षणम् ।
उच्छिष्टक्षेपणं चैव पादक्षालनमेव च ।।
अपानवायुनिस्सारं निष्ठीवनमथापि वा ।
गङ्गायां शपथं नैव प्राणान्तेऽपि समाचरेत् ।।[१]

गंगाजी में कपड़ों की धुलाई-सफाई नहीं करनी चाहिए ।
अपने शरीर के मैल की सफाई नहीं करनी चाहिए ।
जूठा अन्न-जल आदि नहीं फेंकना चाहिए ।
पैर आदि की सफाई नहीं करनी चाहिए ।
अधोवायु का निस्सारण नहीं करना चाहिए ।
थूकना खँखारना नहीं चाहिए । तथा ।
शपथ नहीं खाना चाहिए ।
यह सब काम गंगाजी में किसी हालत में भी नहीं करना चाहिए ।

त्यक्तुं मूत्रपुरीषादि गङ्गातीरं विवर्जयेत् ।[२]

गंगा के किनारे पेशाब-पैखाना आदि नहीं करना चाहिए ।

मिथ्यावाक्यं शोक-मोह-नास्तिक्यं पापचित्तताम् ।
कटुवाक्यं परपीडाकरं कार्यं च वर्जयेत् ।।[३]

गङ्गाजी के किनारे झूठ नहीं बोलना चाहिए ।
शोक-दुःख आदि की बातें नहीं करनी चाहिए ।
मोह, अज्ञान आदि की बातें नहीं करनी चाहिए ।
नास्तिकता की बातें नहीं करनी चाहिए ।
चित्त में पाप की बातें नहीं सोचनी चाहिए ।
किसी से कटुवचन नहीं बोलना चाहिए । तथा--

१-२-३. वृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड अ० ५४-५७ ।

आये हुए लोगों को किसी प्रकार का भी कष्ट हो ऐसा काम नहीं करना चाहिए। अर्थात् किसी को धक्का न लग जाय, किसी पर छींटा न पड़ जाय, किसीका कोई सामान न गिर जाय, किसीका कोई सामान इधर-उधर न हो जाय इन सब बातों पर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

न तीर्थे स्त्र्याकुले स्नायात्, नाऽसज्जनसमावृते ।
न स्नायात् क्षोभितास्वप्सु न स्वयं क्षोभयेत् तथा ॥४

जिस घाट पर अधिक स्त्रियाँ स्नान करती हों वहाँ स्नान नहीं करना चाहिए।

जिस घाट पर दुर्जन नहा रहे हों वहाँ स्नान नहीं करना चाहिए।

जहाँ का पानी गँदला हो वहाँ नहीं स्नान करना चाहिए।

स्वयं भी पानी को किसी प्रकार गन्दा नहीं करना चाहिए।

सायं प्रातश्च मध्याह्ने गङ्गायास्तटमार्जनात् ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य मार्जयते शिवः ॥५

जो व्यक्ति सायंकाल, प्रातःकाल तथा मध्याह्न समय में गङ्गा के तट की सफाई करता है उसके कोटि-कोटि जन्म के अर्जित पाप को शिवजी नष्ट कर देते हैं।

पाषाणैरिष्टिकाभिर्वा मृदा वा भक्तिसंयुतः ।
शोभयेत् तटमीशायाः स पुनर्जन्मवञ्चितः ॥६

जो व्यक्ति गङ्गा के तट को पत्थर, इंट अथवा मिट्टी से बना कर सुन्दर रखता है वह पुनर्जन्म के कष्ट से रहित हो जाता है।

---

४. वृहत्पराशरसंहिता, अ० २.११५।
५.. ,, ,, १११
६-७. वृहद्धर्मपुराण ५८.१९-२०।

२०. देवदर्शन, पूजन एवं प्रदक्षिणा

यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे ।[१]

सवारी पर चढ़ कर अथवा जूता-खड़ाऊँ पहन कर मन्दिर में जाना,

देवोत्सवाद्यसेवा च,[२]

देवता के उत्सव आदि में सेवा-शुश्रूषा न करना,

अप्रणामस्तदग्रतः ॥[३]

देवता के आगे जाकर प्रणाम न करना,

उच्छिष्टे वाऽथवाशौचे भगवद्दर्शनादिकम् ।[४]

उच्छिष्ट अथवा अशौच की अवस्था में देवदर्शन करना,

एकहस्तप्रणामश्च,[५]

देवता को एक हाथ से प्रणाम करना,

तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम् ॥[६]

देवमूर्ति के आगे प्रदक्षिणा करना,

पादप्रसारणञ्चाग्रे,[७]

देवता के आगे पैर पसार कर बैठना,

तथा पर्यङ्कबन्धनम् ।[८]

शयनं भक्षणं वापि,[९-१०]

देवता के आगे सोना तथा भोजन करना,

१-३३. पद्मपुराण, पातालखण्ड ७९.३६-४४ ।

मिथ्याभाषणमेव च ॥११

देवता के सामने झूठ बोलना,

उच्चैर्भाषा मिथोजल्पो,१२-१३

देवता के सामने जोर से बोलना तथा गपसप करना,

रोदनानि च विग्रहः ।१४-१५

देवता के सामने रोना तथा लड़ाई-झगड़ा करना,

निग्रहानुग्रहौ चैव,१६-१७

देवता के सामने किसी पर निग्रह तथा अनुग्रह करना,

नृषु च क्रूरभाषणम्॥१८

देवमन्दिरमें लोगों के साथ क्रूर वाणी बोलना,

कम्बलावरणश्चैव,१९

कम्वल आदि जैसा बहुत भारी परिच्छद लेकर देवमन्दिर जाना।

परनिन्दा परस्तुतिः ।२०-२१

देवता के आगे दूसरों की निन्दा और स्तुति करना,

अश्लीलभाषणश्चैव,२२

देवता के स्थान पर अश्लील भाषा में बातचीत करना,

अधोवायु-विमोक्षणम् ॥२३

देवता के आगे नीचे की हवा छोड़ना,

शक्तौ गौणोपचारश्च,२४

शक्ति रहते हुए भी साधारण सामग्री से पूजा करना,

अनिवेदितभक्षणम् ।२५

बिना नैवेद्य लगाये भोजन करना,

तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम् ॥२६

तत्तत् समय में उत्पन्न हुए फलों को अर्पित न करना,

विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनादिके ।२७

काम में लाने से बचे हुए पदार्थों का देवपूजा के वस्तुओं में उपयोग करना,

पृष्ठीकृत्यासनञ्चैव,२८

देवता को पीठ की ओर करके बैठना,

परेषामभिवादनम् ॥२९

देवता के सामने दूसरों को नमस्कार करना,

गुरौ मौनं, निजस्तोत्रं,३०-३१

गुरु के विषय में मौन धारण करना तथा अपनी प्रशंसा करना,

देवतानिन्दनं तथा ।३२

देवता की निन्दा करना,

अपराधा इमे विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः ॥३३

ये बत्तीस देवतासम्बन्धी अपराध हैं। देवमन्दिर में इन दोषों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

देवागारे न निष्ठीवेत् क्षुतं चात्र विवर्जयेत् ।
सोपानत्कचरणस्तु न विशेत् तत्र कर्हिचित् ॥३४

देवमन्दिर में थूक-खँखार नहीं फेंकना चाहिए तथा जूता पहन कर मन्दिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

---

३४. स्मृतिमुक्ताफलम् ।

३५. ,,

प्रणम्य दण्डवद्-भूमौ उत्थायोत्थाय तन्मनाः ।
स्वाध्यायवदनः कुर्याद् अष्टाङ्गेन नमस्क्रियाम् ।।३५

देवमन्दिर में जानेपर तन्मय होकर कोई स्तोत्र पढ़ते हुए जमीन पर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए।

पूजन :

परभाषां नीचकथाम् अशुचिस्पर्शनं तथा ।।
पूजासनपरित्यागम् असमाप्ते सुरार्चने ।
क्रोधं हिंसाञ्च पैशुन्यं चित्तचाञ्चल्यमेव च ।।
अहं त्वञ्च ममेत्यादि-बुद्धिं शोकं भयं तथा ।
त्वरां च विषये चिन्तां वर्जयेत् पूजको जनः ।।३६

पूजा के समय पूजकों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए। यथा—

नीच लोगों की चर्चा नहीं करनी चाहिए,
अपवित्र वस्तुओं का स्पर्श नहीं करना चाहिए,
बिना पूजन समाप्त हुए पूजासन का परित्याग नहीं करना चाहिए,
क्रोध, हिंसा एवं पैशुन्य (चुगली) नहीं करना चाहिए,
चित्त को चञ्चल नहीं करना चाहिए,

हम-तुम, हमारा-तुम्हारा आदि विचार मन में नहीं लाना चाहिए,

शोक, भय एवं त्वरा (जल्दीबाजी) नहीं करनी चाहिए तथा विषयचिन्तन नहीं करना चाहिए।

---

३६. वृहद्धर्मपुराण पूर्व० ५७.२७-२९. ।

प्रदक्षिणा :

असंसृष्टकरः कैश्चित् मन्दं कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ।३७-३८

किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ में हाथ मिला कर प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिए।

प्रदक्षिणा करते समय धीरे-धीरे चलना चाहिए, तेजी से नहीं।

तथा प्रदक्षिणं कुर्यात् अश्रृण्वंश्च पदध्वनिम् ।३९

प्रदक्षिणा करते समय पैर इस प्रकार रखना चाहिए जिससे पैर रखने का शब्द न सुनाई पड़े।

संघट्टमतिसम्मर्दं मार्गरोधं विचिन्तयन् ।
अनुकूलेन भक्तः सन् शनैर्दद्यात् पदं बुधः ।।४०

बुद्धिमान् भक्त को प्रदक्षिणा करते समय—"किसी से धक्का न लग जाय, अत्यन्त भीड़ न हो जाय तथा रास्ता न रुक जाय" इन बातों पर ध्यान देते हुए सबकी अनुकूलता के साथ धीरे-धीरे पैर रखना चाहिए।

३७-४०. स्कन्द०, माहे० अरुणा० अ० ९.३६.३७.४० ।

२१. आश्रमों तथा सिद्धस्थानों में प्रवेश

व्यजनं पादुकां छत्रं चामरं केशमोचनम् ।
ताम्बूलमुल्बणं वेषमुत्सृजन् प्रविशेच्छनैः ॥[१]

पंखा, जूता-खड़ाऊँ, छत्ता, चँवर, केशमोचन, ताम्बूल (पान) तथा उद्धत वेष इनका परित्याग कर शान्ति से धीरे-धीरे आश्रम आदि पुण्य स्थानों में प्रवेश करना चाहिए।

पादप्रक्षालनं स्नानमभ्यङ्गं दन्तधावनम् ।
मूत्रं निष्ठीवनं क्षौरं शयनं स्त्रीनिषेवणम् ॥
वीरासनं च दुर्वाक्यमासवं हास्य-रोदनम् ॥
केशमोचनमुष्णीपं प्रपदोद्घाटनं तथा ।
द्यूत-कुक्कुट-मल्लादियुद्धमित्यादि चाम्बिके ॥
गुरुयोगि-महायोगि-सिद्धपीठाश्रमेषु च ।
नाचरेदाचरन् मोहात् देवताशापमाप्नुयात् ॥[२]

पैर धोना, स्नान करना, तेल-उबटन लगाना, दाँतन करना, पेशाब करना, थूकना, क्षौर बनवाना, सोना, स्त्रीप्रसंग करना, वीरासन से बैठना, दुर्वचन बोलना, आसव पीना, हँसना—हासपरिहास करना, रोना, केश नोंचना, पगड़ी बाँधना, जंघा आदि को बिना ढँके रखना, जूआ खेलना, मुर्गा आदि लड़ाना तथा कुस्ती लड़ना यह सब काम गुरु, योगी, महायोगी तथा सिद्धमहात्माओं के स्थानों एवं आश्रमों में नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से देवता शाप देते हैं।

१-२. चिदम्बर रहस्य ।

शासकों को भी आश्रमों में शिष्टता एवं सादगी के साथ प्रवेश करना चाहिए। इस सम्बन्ध में वाल्मीकिरामायण का एक प्रसंग निम्नलिखित है। यथा—

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः॥
पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम्॥[३]

भरतजी ने भरद्वाज आश्रम में जाते समय एक कोश पहले ही अपने सभी साथ में आये लोगों और सेना को एक जगह रोककर और अस्त्र-शस्त्रों एवं समस्त वस्त्रादि सामग्री को वहीं रखकर केवल दो रेशमी वस्त्रों से ही पुरोहित को आगे करके मन्त्रियों के साथ पैदल ही चलकर आश्रम में प्रवेश किया।

महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करते समय राजा दुष्यन्त की रथ से उतर कर सारथि के प्रति उक्ति—

विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्।[४]

तपोवनों में विनीत वेष में प्रवेश करना चाहिए अतः तुम इस धनुष और इन आभरणों को रख लो।

३. वाल्मीकिरामायण अयोध्या० ९०.१-२।

४. अभिज्ञानशाकुन्तल प्रथम अङ्क।

२२. पर्व एवं उत्सव

कुर्याद् गृहस्थः सर्वेषां देवानामुत्सवक्रियाम् ।[१]

गृहस्थ को चाहिए कि जिन-जिन देवताओं के नाम से जो-जो पर्व-उत्सव मनाये जाते हैं उन सबको यथासमय मनाया करे ।

नित्यं पर्वसु सुस्नाताः स्वनुलिप्ताः स्वलंकृताः ।
उपवासतपःशीलाः ।[२]

पर्वों के दिन विशेष रूप से स्नान करना चाहिए, चन्दन गन्ध आदि लगाना चाहिए, वस्त्र अलंकार आदि से सुसज्जित रहना चाहिए तथा उपवास एवं तप से पवित्र आचरण रखना चाहिए ।

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥[३]

पर्व के दिन देवताओं का दर्शन करना चाहिए, धर्मात्मा और श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं गुरुजनों का दर्शन करना चाहिए तथा अपने स्वामी या अधिकारी के समीप भी मिलने-जुलने के लिए जाना चाहिए ।

पर्वसु शान्तिहोमौ कुर्यात् ।[४]

पर्व के दिन शान्तिकर्म तथा हवन-यज्ञ करना चाहिए ।

---

१. बृहद्धर्मपुराण उत्तरखण्ड अ० ६.१०१ ।

२. महाभारत शान्तिपर्व २२८.३६ ।

३. मनुस्मृति अ० ४.१५३ ।

४. विष्णुस्मृति ७१.८४ ।

न उत्सवेषु शयनम् ।[५]

उत्सवों के समय सोना नहीं चाहिए। यथासम्भव सदा जागृत और आलस्यहीन होकर उत्सवसम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करना चाहिए।

उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ।
पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥[६]

सभी पर्वों में स्नान करके पवित्र, स्वच्छ एवं अलङ्कारों से अलंकृत होकर रहना चाहिए, उपवास करना चाहिए तथा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिए।

सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः ।
गुरु-देवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥[७]

अपने-अपने जन्म के दिन सब लोगों को जन्मदिन का उत्सव मनाना चाहिए और उस दिन मङ्गल जल से स्नान कर गुरुजनों, देवों एवं विप्रों का पूजन एवं सत्कार तथा हवन करना चाहिए।

बालकों का जन्मदिन माता-पिता को मनाना चाहिए।

---

५. अग्निवेश्य गृह्यसूत्र प्र० २, अ० ६.७।

६. महाभारत अनु० १०४.८८।

७. संस्कारप्रकाश।

२३. यज्ञ, दान एवं तप

यज्ञो दानं तपश्चैव न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।१

यज्ञ दान एवं तप इनका परित्याग नहीं करना चाहिए, इनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए ।

जिस दिन कोई यज्ञ करना हो तथा निमन्त्रितों को भोजन कराना हो उस दिन निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए—

तदहः शुचिः अक्रोधनः अत्वरित अप्रमत्तः
सत्यवादी स्यात् ।२

यज्ञ के दिन शरीर तथा वस्त्र से पवित्र रहना चाहिए ।
किसी पर क्रोध या रोष नहीं करना चाहिए ।
किसी काम में (त्वरा) जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिंए ।
किसी काम में असावधानी नहीं करनी चाहिए तथा—
सत्य बोलना चाहिए ।

अध्व-मैथुन-श्रम-स्वाध्यायान् वर्जयेत् ।३

यज्ञ के दिन—रास्ता चलना, किसी प्रकार का मैथुन करना, यज्ञसम्बन्धी कामों को छोड़ कर अन्य किसी काम में परिश्रम करना, तथा पढ़ना-लिखना आदि कामों को नहीं करना चाहिए ।

आवाहनादि वाग्यत उपस्पर्शनात् ।४

जब से यज्ञकर्ताओं को बुलावे और जब तक उन्हें भोजन करा कर

---

१. भगवद्गीता ।

२-४. कातीयश्राद्धसूत्र प्रथम कण्डिका ।

बिदा न कर दे तब तक वाणी पर संयम रखना चाहिए अर्थात् कम बोलना चाहिए और सोच-विचार कर बोलना चाहिए।

आमन्त्रिताश्च एवम् ।५

इसी प्रकार आमन्त्रित लोगों को भी इन्हीं नियमों का पालन करना चाहिए।

आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन ।६

यज्ञ में जिनको भोजन के लिए आमन्त्रण दिया गया हो उन्हें निर्दिष्ट समय पर उपस्थित हो जाना चाहिए। देरी नहीं करनी चहिए।

न पंक्त्यां विषमं दद्यात् न याचेत् न च दापयेत् ।७

एक पंक्ति में बैठे हुए व्यक्तियों को परोसने में विषमता नहीं करनी चाहिए। किसी से विषमतापूर्वक दिलाना भी नहीं चाहिए।

एक पंक्ति में भोजन करने वालों को ऐसी कोई चीज अपने लिए अकेले नहीं माँगनी चाहिए जो औरों के लिए सुलभ न हो।

न अनियुक्तः अग्रासनं गच्छेत् ।८

यज्ञकर्ता के बिना कहे किसी निमन्त्रित व्यक्ति को भोजन में अग्र आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

न अग्रासनस्थः प्रथममश्नीयात् ।९

जो निमन्त्रित व्यक्ति अग्र आसन पर बैठाया गया हो उसे और लोगों से पहले ही भोजन करना आरम्भ नहीं करना चाहिए।

---

५. ,, ,, ,,

६. ,, ,, ,,

७. मनुस्मृति।

८-९-१०. श्राद्धकाशिका व्याख्या में आदित्यपुराण का वन्दन।

न अधिकं दद्यात् न प्रतिगृह्णीयात् ।१०

यज्ञ आदि में न परोसने वालों को आवश्यकता से अधिक परोसना चाहिए और न भोजन करने वालों को आवश्यकता से अधिक लेना चाहिए।

न अवृतो यज्ञे, न धर्मार्थं जुगुप्सेत ।११

विना वुलाये किसी के यज्ञ में नहीं जाना चाहिए।

किसी के यज्ञ में जाकर वहाँ के धर्मकार्यों तथा व्यवस्था आदि की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

सत्कर्मोपार्जितं द्रव्यम् अन्नञ्च व्रतजापयोः ।
चोरिताद् वञ्चिताद् मिथ्यागृहीतान्न फलं भवेत् ॥
यत् सात्त्विकं भवेदन्नं परद्रोहाद्नुपार्जितम् ।
तदेवान्नमनुष्ठाने प्रयुञ्जीत न चान्यथा ॥१२

व्रत तथा किसी प्रकार के यज्ञ, पूजा-पाठ आदि में, जो द्रव्य सत्कर्म द्वारा ईमानदारी से उपार्जित किया गया हो, उसी को लगाना चाहिए।

चोरी द्वारा कमाया हुआ धन धर्मकार्य में नहीं लगाना चाहिए।

ठग कर, धोखा देकर तथा छल-कपट द्वारा कमाया हुआ धन धर्मकार्य में नहीं लगाना चाहिए।

बिना परिश्रम के, बिना काम किये हुए, मिथ्या तथा अनुचित रूप से हाथ लगाये हुए धन से धर्मकार्य नहीं करना चाहिए।

दूसरे का द्रोह न कर, दूसरे को हानि न पहुँचा कर जो द्रव्य उपार्जित हो तथा सात्विक हो उसी से धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन चाहिए।

---

११. कौषीतकी गृह्यसूत्र अ० ३, खं० ११.६।

१२. कृत्यसारसमुच्चय।

अधर्मोपार्जितैरर्थैः यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुंक्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥[१३]

मरने के पश्चात् मृत व्यक्ति की हितकामना से जो श्राद्ध आदि कर्म किया जाता है वह सब भी अधर्म द्वारा उपार्जित द्रव्य से नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से जिस मृत व्यक्ति के लिए वह सब काम किया जाता है उसे उस कर्म का कोई फल नहीं मिलता।

दातव्यमन्नं विधिवत् सत्कृत्य न तु लीलया ।
सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ॥
न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि ।
यज्ञकर्मसु ये व्यग्राः पुरुषाः शिल्पिनस्तथा ॥
तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम् ।
ये स्युः सम्पूजिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन च ॥
यथा सर्वं सुविहितं न किञ्चित् परिहीयते ।
तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥[१४]

यज्ञ में सब लोगों को विधिवत् सत्कार के साथ भोजन कराना चाहिए, उपेक्षा के साथ नहीं, जिससे कि सभी वर्णों के लोग पूजा एवं सत्कार प्राप्त कर सकें।

काम या क्रोध किसी भी कारण से, यज्ञ में समागत व्यक्तियों को अवज्ञा नहीं होनी चाहिए।

जो लोग यज्ञ के कामों में लगे हुए हों और जो यज्ञ के शिल्पी हों

---

१३. महाभारत उद्योग ३९.६७ ।

१४. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड १३.१४-१७ ।

(यज्ञ के कार्यकर्ताओं को वशिष्ठजी का आदेश)

उन लोगों की भी यथाक्रम विशेष रूप से पूजा होनी चाहिए और धन एवं भोजन आदि से सत्कार होना चाहिए। आपलोग बड़े प्रेम और लगन के साथ ऐसा काम करें जिससे कि सब काम सुचारु रूप से सम्पन्न हो जायँ और किसी बात की त्रुटि न रह जाय।

दान :

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥१५

यदि माँगने वाला उत्तम व्यक्ति हो तो अपनी शक्ति के अनुसार प्रसन्नता से दान देते रहना चाहिए।

इसी प्रकार लोकसेवा की दृष्टि से इष्ट तथा पूर्तकर्म भी करते रहना चाहिए। (यज्ञ-याग को इष्ट तथा कूआँ, तालाब एवं बगीचा आदि लगाने को पूर्त कहा जाता है)।

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।१६

शास्त्रानुसार जिन ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों को अर्थार्जन तथा पाक करने का अधिकार नहीं है उन्हें गृहस्थ को भोजनवस्त्रादि का दान करना चाहिए।

संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ।१७

अपने गृहस्थाश्रम के कार्यों में आर्थिक बाधा न पहुँचाते हुए अपने धन में से अन्य समस्त मानवों तथा जीव-जन्तुओं को भी यथायोग्य दान एवं सहायता करनी चाहिए।

---

१५. मनुस्मृति ४.२३५।
१६-१७. ,, ४.३२।

यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनाऽनसूयया ।[१८]

याचना करने पर मनुष्य को जो कुछ भी दिया जाय उसे असूया-रहित होकर, प्रेमभाव से, देना चाहिए ।

न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ।[१९]

किसी को कुछ देकर उसका प्रचार या विज्ञापन नहीं करना चाहिए।

श्रद्धया देयम् ।[२०]

श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिए ।

अश्रद्धया अदेयम् ।[२१]

अश्रद्धा से दान नहीं देना चाहिए ।

ह्रिया देयम् ।[२२]

"मैं क्या दे सकता हूँ" इस प्रकार की लज्जा एवं संकोच के भाव से दान देना चाहिए ।

भिया देयम् ।[२३]

"दान देना मेरा अवश्य कर्तव्य है" इस भय के साथ दान देना चाहिए ।

संविदा देयम् ।[२४]

ज्ञानपूर्वक अर्थात् देश, काल एवं पात्रापात्र का ध्यान रखते हुए दान देना चाहिए ।

---

१८. " ४.२८ ।

१९. " ४.२३६ ।

२०-२४. तैत्तिरीय उपनिषद् शिक्षावल्ली ।

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥[२५]

"दान देना हमारा कर्त्तव्य है" ऐसा समझ कर तथा उचित स्थान, उचित समय एवं उचित व्यक्ति का ध्यान रखते हुए निरपेक्ष भाव से अनुपकारी व्यक्ति को जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक-उत्तम दान कहलाता है। अतः इसी रूप से दान या सहायता करनी चाहिए।

याचकाद्यैः प्रार्थितः सन् न तीक्ष्णं चोत्तरं वदेत्।
तत् कार्यं तु समर्थश्चेत् कुर्याद् वा कारयीत वा ॥[२६]

यदि कोई कुछ याचना करे तो उसे कठोर उत्तर नहीं देना चाहिए। यदि सामर्थ्य हो तो उसकी माँग स्वयं पूरी कर देनी चाहिए अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा पूरी करा देनी चाहिए।

तप :

तमोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।[२७]

संसार में जो कुछ दैव एवं मानुष सुख है वह सब तप से ही प्राप्त होता है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥[२८]

देवों, द्विजों गुरुओं तथा विद्वानों का पूजन, बाह्य एवं आभ्यन्तर

---

२५. भगवद्गीता १७.२०।

२६. शुक्रनीति ३।

२७. मनुस्मृति ११.२३३।

२८-२९-३०. भगवद्गीता १७.१४.१५.१६।

शौच, सरल व्यवहार, ब्रह्मचर्य एवं किसी प्रकार की हिंसा न करना यह शारीरिक तप कहलाता है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाऽभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥२९

किसी को कष्ट न देने वाले सत्य, प्रिय एवं हितकर वचन बोलना, वेदों तथा सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना तथा अभ्यास करना यह वाङ्मय अर्थात् वाणी का तप कहलाता है।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥३०

मन की निर्मलता, सौम्यभाव, मन अर्थात् परिमित भाषण, अपने ऊपर नियन्त्रण तथा भावशुद्धि यह सब मानस तप कहलाता है।

प्रत्येक मनुष्य को जीवन में इन तपों का आचरण करना चाहिए।

अहिंसा सत्यवचनम् आनृशंस्यं दमो घृणा।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम् ॥३१

किसी भी प्रकार किसी को कष्ट न पहुँचाना, सदा सत्य बोलना, किसी के साथ कभी क्रूरता न करना, इन्द्रियों को वश में रखना तथा सब पर करुणा एवं दया करना यही सब वे काम हैं जिन्हें विद्वान् तप कहते हैं। शरीर का शोषण तप नहीं कहलाता है।

गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रस्तपः।३२

घर में रहते हुए भी पञ्चेन्द्रियों को निग्रह में रखना तप कहलाता है।

●

---

३१. महाभारत शान्ति० ७९.१८।

३२. श्रीमद्भागवत स्कन्ध अ० ५।

२४. नाट्य, नृत्य एवं गीत-वाद्य

महत्त्व :

य इदं शृणुयात् प्रोक्तं नाट्यमेतत् स्वयंभुवा ।
प्रयोगं यच्च कुर्वीत प्रेक्षते चावधानवान् ॥
या गतिर्वेदविदुषां या गतिर्यज्ञयाजिनाम् ।
या गतिर्दानशीलानां तां गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥
नृपधर्मेषु सर्वेषु कीर्त्यते तन्महाफलम् ।
प्रेक्षणीयप्रदानन्तु सर्वदानेषु पूज्यते ॥
न तथा गन्धमाल्येन देवास्तुष्यन्ति पूजिताः ।
यथा नाट्यप्रयोगैस्तु तुष्यन्ति स्तुतिमङ्गलैः ॥
गन्धर्वं चैव नाट्यञ्च यः सम्यगनुपश्यति ।
लभते सद्गतिं पुण्यां समं ब्रह्मर्षिभिर्नरः ॥[1]

जो व्यक्ति ब्रह्माजी के द्वारा कहे हुए इस नाट्य को सुनता है, इसका प्रयोग करता है तथा इसे सावधानी से देखता है उसे वही शुभ गति प्राप्त होती है जो वेद के विद्वानों, याज्ञिकों तथा दानशीलों को प्राप्त होती है। यह नाट्य समस्त धर्मकृत्यों में महाफलदायी कृत्य माना जाता है और नाटक देखने का जनता को अवसर प्रदान करना सब दानों में श्रेष्ठ माना गया है।

देवगण गन्ध तथा माला आदि से उतना प्रसन्न नहीं होते जितना नाट्य के प्रयोगों तथा स्तुति-मङ्गलों से प्रसन्न होते हैं।

---

१. भरतनाट्यशास्त्रम् अ० ३६.७४-७८ ।

जा व्यक्ति संगीत एवं नाट्य का सम्यक् प्रकार से समादर करता है वह ब्रह्मर्षियों के समान ही पुण्य गति को प्राप्त होता है।

प्रयोग :

नृत्तं त्वत्र नरेन्द्राणाम् अभिषेकमहोत्सवे।
यात्रायां देवयात्रायां विवाहे प्रियसङ्गमे॥
नगराणामगाराणां प्रवेशे पुत्रजन्मनि।
शुभार्थिभिः प्रयोक्तव्यं माङ्गल्यं सर्वकर्मसु॥[२]

राजाओं के अभिषेक के अवसर पर, यात्रा में, देवयात्रा में, विवाह में, प्रियजनों के मिलने के समय, नगरप्रवेश या गृहप्रवेश के समय, पुत्रजन्म के अवसर पर तथा ऐसे ही अन्य अवसरों पर शुभ चाहने वाले व्यक्तियों को माङ्गलिक नृत्य कराने चाहिए।

द्रष्टव्ये नाट्यनृत्ये च पर्वकाले विशेषतः।[३]

पर्वों या उत्सवों के समय विशेष रूप से नाट्य एवं नृत्य का प्रयोग करना चाहिए और देखना चाहिए।

पात्रों के लिए निर्देश :

यदा स्वपेदर्थवशादेकाकी सहितोऽपि वा।
चुम्बनालिङ्गनादीनि रङ्गमध्ये न कारयेत्॥
दन्तं नखक्षतं छेद्यं नीवीस्रंसनमेव च।
स्तनाधरविमर्दं च रङ्गमध्ये न कारयेत्॥

---

२. अभिनयदर्पण १३.१४।

३. अभिनयदर्पण १२।

पितृ-पुत्र-स्नुषा-श्वश्रू-दृश्यं यस्मात्तु नाटकम्।
तस्मादेतानि सर्वाणि वर्जनीयानि यत्नतः ॥४

यतः पिता-पुत्र एवं सास-पतोहू एक साथ नाटक देखने के लिए आते हैं इसलिए नाटक में भाग लेने वाले पात्रों को रङ्गमञ्च पर—वे अकेले सोवें अथवा नारी के साथ—किसी भी अवस्था में चुम्बन, आलिङ्गन, दन्तक्षत, नखक्षत, नीवीस्रंसन, स्तन-अधर-विमर्द आदि अश्लील एवं अभद्रतापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अश्लीलपूर्ण भाषा का भी प्रयोग रङ्गमञ्च पर नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से दर्शकों को लज्जा और उद्वेग हो सकता है।

दर्शकों के लिए निर्देश :

अव्यग्रैरिन्द्रियैः शुद्धः ऊहापोहविशारदः।
व्यक्तदोषोऽनुरागी च स नाट्ये प्रेक्षकः स्मृतः ॥
यस्तुष्टे तुष्टिमायाति शोके शोकमुपैति च।
दैन्ये दीनत्वमभ्येति स नाट्ये प्रेक्षकः स्मृतः ॥५

जो लोग नाटक देखने के लिए आवें उन्हें—

१. अपनी इन्द्रियों को चञ्चल तथा व्याकुल नहीं रखना चाहिए। अर्थात् हाथ, पैर, आँख तथा बचन आदि से चञ्चलता प्रकट न कर शान्ति और सभ्यता के साथ बैठना चाहिए। ऐसा कोई काम नहीं चाहिए जिससे नाटक के व्यवस्थापकों तथा अन्य दर्शकों को किसी प्रकार की असुविधा हो।

---

४. नाट्यशास्त्र अ० २२.२८५-२८८।

५. नाट्यशास्त्र अ० २७.५१-५२।

२. भीतर और बाहर से शुद्ध पवित्र एवं स्वच्छ होकर नाटक देखने के लिए आना चाहिए।

३. नाट्यशाला में उन्हीं दर्शकों आना चाहिए जो ऊहापोह करने में निपुण अर्थात् प्रतिभासम्पन्न हों।

४. जो नृत्य, गीत एवं वाद्य आदि के अनुरागी हों उन्हीं को नाटक देखने लिए आना चाहिए।

५. हर्ष, शोक तथा दैन्यसूचक दृश्यों को देख कर दर्शकों को उसी के अनुरूप हर्ष, शोक तथा दैन्य का भाव प्रकट करना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि हर्ष के समय शोक और शोक के समय हर्ष प्रकट किया जाय अथवा और किसी प्रकार की विपरीत चेष्टा की जाय जो सभास्थल के लिए उचित न हो।

२५. सामाजिक कार्य एवं चन्दासंग्रह

धर्मज्ञाः शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः ।
कर्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥[१]

सामाजिक काम करने वालों को—धर्मज्ञ अर्थात् धर्म का—न्याय एवं औचित्य का जानकार होना चाहिए। शुचि अर्थात् बाहर से साफ-सुथरा तथा भीतर से ईमानदार होना चाहिए। अलुब्ध अर्थात् लोभी-लालची एवं घूसखोर नहीं होना चाहिए। तथा उन्हें कार्यचिन्तन अर्थात् "किस समय कौन काम आवश्यक है, कितने काम हैं, क्या काम हुआ, क्या नहीं हुआ" इत्यादि बातों का चिन्तन करना चाहिए।

जनता तथा सदस्यों को चाहिए कि वे ऐसे समाज के हित का काम करने वाले व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करें।

समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् ।[२]

सामूहिक काम करने वालों को जनता से अथवा सरकार से जो सहायता मिले उसे अपनी संस्था को समर्पित कर देना चाहिए। अथवा जिनके द्वारा नियुक्त हों उन्हीं को सौंप देना चाहिए। उसमें से न कुछ अपने लिये बचाना चाहिए और न समूचा ही हड़प जाना चाहिए।

गणद्रव्यं हरेद् यस्तु संविदं लङ्घयेच्च यः ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद् विप्रवासयेत् ॥[३]

जो व्यक्ति चन्दा के रूप में इकट्ठे किये हुए गणद्रव्य का—जनता के

---

१. याज्ञवल्क्य स्मृति व्यवहाराध्याय १९१ ।
२. ,, ,, ,, १९० ।
३. ,, ,, ,, १८७ ।

द्रव्य का अपहरण करता है और जो संस्था के नियमों का उल्लंघन करता है उसके समस्त धन को छीन कर उसे राष्ट्र के बाहर निकाल देना चाहिए।

हिरण्यादाने प्रत्यंशद्विगुणं भक्ष्यपेयदाने च प्रवहणेषु द्विगुणमंशं दद्यात् ।४

जो व्यक्ति किसी सामाजिक कार्य में चन्दा न दे तो चन्दे का दुगुना तथा सामूहिक भोजन जलपान में तथा सवारी आदि में चन्दा न दे तो उससे दुगुना चन्दा लेना चाहिए।

प्रेक्षायाम् अनंशदः स्वस्वजनो न प्रेक्षेत ।५

जो व्यक्ति किसी खेल-तमाशे में उचित चन्दा न दे तो उसे तथा उसके परिवार को वह खेल-तमाशा नहीं देखना चाहिए।

प्रच्छन्न-श्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ।६

यदि कोई व्यक्ति चन्दा न देकर भी छिप करके खेल-तमाशा अथवा नाटक आदि देखे-सुने तो उसे चन्दा से दुगुना दण्ड देना चाहिए।

इसी प्रकार सार्वजनिक हित के कार्यों में यदि कोई सहयोग न दे तो उससे उसका दुगुना चन्दा वसूल करना चाहिए।

उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दाने महोत्सवे।
मोहात् करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः ।।७

---

४. कौटिल्यअर्थशास्त्र अधि० ३, अ० १०।
५. ,, ,, ,,
६. ,, ,, ,,
७. वृहद्धर्मोत्तरपुराण ३.२३.२२२।

किसी के घर यदि पुत्र अथवा पुत्री का विवाह, यज्ञ, दान अथवा कोई महान् उत्सव होने वाला हो तो उसमें किसी प्रकार का विघ्न नहीं करना चाहिए।

ऐसे कार्यों में जो मनुष्य विघ्न करता है वह मरने पर कीटयोनि में जन्म लेता है।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥८

यज्ञ के लिए रुपये-पैसे तथा अन्न आदि की भिक्षा या चन्दा माँग कर जो व्यक्ति उसे समग्र रूप से नहीं दे देता है वह भास या काक का सौ वर्ष तक जन्म लेता है।

---

८. मनुस्मृति ११-२५।

२६. वैर-विरोध एवं युद्ध

नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ।[१]

इस उत्तम मनुष्यजीवन को पाकर किसी के साथ वैर-विरोध नहीं करना चाहिए ।

यथासम्भव युद्ध का परित्याग :

सम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन ॥[२]

यदि किसी के साथ वैर-विरोध हो जाय तो साम (शान्ति, समझौता) दान तथा भेद (कूटनीति) के द्वारा उसे समाप्त कर विरोधी पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए पर युद्ध का विचार कभी नहीं करना चाहिए।

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे ।
तथा युद्ध्येत सम्पन्नो विजयेत यथा रिपून् ॥[३]

उपर्युक्त तीनों उपायों के संभव न होने पर समस्त साधनों से सम्पन्न हो इस प्रकार युद्ध करना चाहिए जिससे शत्रुओं को पराजित कर सके।

---

१. महाभारत वन० २१३.३४ ।

२. मनुस्मृति ७.१९८ ।

३. ,, ७.२०० ।

अधर्म से विजय प्राप्त करना उचित नहीं :

अधर्मयुक्तो विजयो ह्यध्रुवोऽस्वर्ग्य एव च ।[४]

जो विजय अधर्म से अर्थात् छल-कपट से प्राप्त किया जाता है वह स्थिर नहीं होता है तथा स्वर्ग देने वाला भी नहीं होता।

धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा ।
कर्म चैतदसाधूनाम् असाधुं साधुना जयेत् ॥[५]

धर्म से निधन हो जाना अच्छा पर पाप से विजय प्राप्त करना अच्छा नहीं। पाप से विजय प्राप्त करना दुष्टजनों का कर्तव्य है। उत्तम यही है कि अच्छे उपायों से ही दुर्जनों पर विजय प्राप्त किया जाय।

आत्मरक्षार्थ युद्ध अपरिहार्य :

युद्धं प्राणात्यये कुर्यात् सर्वस्वहरणे सति ।[६]

जब अपने प्राणों तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति पर संकट आ जाय तो अवश्य युद्ध करना चाहिए।

धर्मयुद्ध के नियम एवं आचार :

महाभारत के युद्ध में युद्ध आरम्भ होने के पूर्व कौरव-पाण्डव तथा सोमवंशी राजाओं ने कुछ युद्धकालीन नियमों का निश्चय किया था जो निम्नलिखित हैं—

---

४. महाभारत शान्ति० ९६. २।

५. ,, ,, ९५.१६।

६. शुक्रनीति ४.२९९।

निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात् प्रीतिर्नः परस्परम् ।
यथापरं यथायोगं न च स्यात् छलनं पुनः ॥
वाचा युद्धे प्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यात् न हन्तव्याः कदाचन ॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥
यथायोग्यं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥
न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु ।
न भेरीशंखवादेषु प्रहर्तव्यं कथञ्चन ॥[७]

प्रतिदिन युद्ध समाप्त हो जाने पर योद्धाओं में पुनः परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार होना चाहिए।

युद्धविराम की अवस्था में किसी को किसी के प्रति छल-कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए।

जिस समय केवल वाचिक लड़ाई होती हो उस समय अस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जो लोग युद्धस्थल से बाहर निकल गये हों उन पर प्रहार नहीं करना चाहिए।

रथी को रथी से, गजारोही को गजारोही से, अश्वारोही को अश्वारोही से तथा पदाति को पदाति से ही युद्ध करना चाहिए।

---

७. महाभारत भीष्मपर्व अ० १.२७-३२।

जिस पर प्रहार करना हो उस पर कह कर प्रहार करना चाहिए।

जो विश्वस्त हो, जो विह्वल हो, जो किसी एक के साथ लड़ता हो, जो शरणागत हो, जो लड़ने से विमुख हो गया हो, जिसके पास हथियार न हो तथा जिसके शरीर पर कवच न हो, उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए।

सारथि पर, रथ में जुते हुए घोड़ों पर, अस्त्र-शस्त्र ढोने वालों पर तथा भेरी-शंख आदि बाजा बजाने वालों पर प्रहार नहीं करना चाहिए।

न कूटैरायुधैर्हन्याद् युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैः नाग्निज्वलिततेजनैः॥
न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥
नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परादत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥[८]

युद्ध में शत्रुओं पर कूटशस्त्रों से, नुकीले और कोंचदार अस्त्रों से, जहर से बुझाये गये शस्त्रों से तथा आग से जलते हुए शस्त्रों से प्रहार नहीं करना चाहिए।

जो जमीन पर हो, नपुंसक हो, हाथ जोड़े हुए हो, जिसके केश खुले हुए हों, जो बैठा हो, "मैं आपका ही हूँ" जो इस प्रकार दीनता प्रकट कर रहा हो, जो सोया हुआ हो, जो कवचरहित हो, जो नग्न हो,

---

८. मनु० अ० ७.९०-९३।

जिसके हाथ में हथियार न हो, जो लड़ता न हो, जो केवल लड़ाई देखने के लिए आया हुआ हो, जो दूसरे के साथ लड़ रहा हो, जिसके अस्त्र-शस्त्र टूट-फूट गये हों, जो पुत्रशोक आदि से दुःखी हो, जो अस्त्र-शस्त्रों से बहुत घायल हो, जो भयभीत हो तथा जो युद्ध से पराङ्मुख हो उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह शिष्ट और उत्तम योद्धाओं के आचरण के विरुद्ध है।

अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युध्येत् महत्तरैः।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे ॥[९]

युद्ध आरम्भ होने के पूर्व अपने से श्रेष्ठ पुरुषों को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद और आज्ञा ले लेनी चाहिए भले हीं वे शत्रुदल में क्यों न हों। ऐसा करने से अवश्य ही वह मनुष्य युद्ध में विजयी होता है।

महाभारत के युद्ध में युद्ध आरम्भ होने के पूर्व युधिष्ठिर के कौरव दल में पैदल जाकर भीष्म, द्रोण आदि गुरुजनों को प्रणाम कर तथा उनका आशीर्वाद लेकर युद्ध आरम्भ करने का रोचक और रोमांचकारी वर्णन भीष्मपर्व में किया गया है।

---

९. महाभारत भीष्मपर्व ४३.३४।

२७. पाप एवं प्रायश्चित्त

कृत्वा पापं न गूहेत गूह्मानं विवर्द्धते।
कृत्वा पापं बुधः कुर्यात् पर्षदानुमतं व्रतम् ॥[१]

यदि मनुष्य से कोई पाप हो जाय तो उसे छिपाना नहीं चाहिए क्योंकि छिपाने से पाप और बढ़ता जाता है।

पाप हो जाने पर धर्माचार्यों की परिषद् से अनुमति लेकर उसका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए।

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात् तथा दानेन चापदि ॥[२]

अपने पाप को सर्वसाधारण में कहने से, बार-बार पश्चात्ताप करने से, कठोर तप से; अध्ययन, पाठ एवं जप करने से तथा इन सब कार्यों को न कर सकने की स्थिति में दान देने से पाप करने वाला व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

पश्चात्तापो हि सर्वेषामघानां निष्कृतिः परा।[३]

पाप हो जाने पर उसके लिए पश्चात्ताप करना सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है।

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥[४]

---

१. शंख १७.६२।
२. स्कन्दपुराण ब्रह्म० अ० २२.८५।
३. ,, ,, ,,
४. मनुस्मृति ११.२२८।

मनुष्य कोई अधर्म एवं अन्याय करने के बाद जैसे-जैसे उसे लोगों से बतलाया है—सर्वसाधारण में प्रकाशित कर देता है—वैसे-वैसे वह, केंचुल से साँप के समान, उस अधर्म से मुक्त हो जाता है।

कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात् पापात् प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥[५]

मनुष्य पाप करने के बाद यदि उसके लिए सन्ताप करता है—अफशोश करता है—तो वह उस पाप से मुक्त हो जाता है।

और "फिर कभी ऐसा निन्दित कर्म नहीं करूँगा" यदि इस प्रकार दृढ़ संकल्प कर लेता है तो वह पवित्र हो जाता है।

उपर्युक्त वचनों के अनुसार ज्ञान, अज्ञान, भय अथवा दूसरों की प्रेरणा के कारण कोई अधर्म, पाप या अपराध हो जाय तो उसे सब लोगों को बतला देना चाहिए, उसके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए तथा वैसा काम आगे न करने के लिए संकल्प लेना चाहिए।

५. मनुस्मृति ११.२३०।

व्यवहार-खण्ड

१. व्यवहार और उसका महत्त्व

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः ।
व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१

न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु। मनुष्य के उचित एवं अनुचित व्यवहार के कारण ही उसके मित्र एवं शत्रु होते हैं। अतः आपस में सबको सबके साथ यथोचित व्यवहार करना चाहिए।

न कस्यचित् कश्चिदिह स्वभावाद्
भवत्युदारोऽभिमतः खलो वा ।
लोके गुरुत्वं विपरीततां वा
स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति ॥२

स्वभाव अर्थात् जन्म से न कोई किसी के लिए सुजन होता है और न दुर्जन। मनुष्य के अपने कर्म एवं व्यवहार ही उसे समाज में सम्मान प्रदान करते हैं अथवा उसे अपमानित करते हैं। अतः परिवार तथा समाज में भी सम्मानित स्थान प्राप्त करने के लिए अपने व्यवहार को धर्म एवं नीतिसंगत बना कर रखना चाहिए।

जातिमात्रेण किं कश्चिद् हन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वर्ज्यः पूज्योऽथवा भवेत् ॥३

क्या जातिमात्र के कारण कहीं कोई मारा जाता है या पूजा जाता है? नहीं। मनुष्य के व्यवहार को देख कर ही वह दुत्कारा जाता है अथवा पूजा-सम्मान प्राप्त करता है।

●

---

१. हितोपदेश मित्रलाभ ७१ ।
२. ,, सुहृद्भेद ४८ ।
३. ,, मित्रलाभ ५८ ।

२. बालकों के प्रति माता-पिता के व्यवहार

शिशुओं की सेवा-शुश्रूषा :

शयनास्तरणप्रावरणानि कुमारस्य मृदु-लघु-शुचि-सुगन्धीनि स्युः। स्वेदमलजन्तुमन्ति मूत्रपुरीषोपसृष्टानि च वर्ज्यानि स्युः। असति संभवेऽन्येषां तान्येव च सुप्रक्षालितोपधूपितानि सुशुद्ध-शुष्काणि उपयोगं गच्छेयुः।[१]

बच्चों की शय्या, बिछौना तथा ओढ़ने-पहनने के कपड़ों को मुलायम, हलका, स्वच्छ तथा सुगन्धित रखना चाहिए। उन्हें पसीना, गन्दगी तथा जूँ, खटमल, चींटी आदि जन्तुओं एवं मूत्र तथा पुरीष से भी बचाये रखना चाहिए। यदि नये-नये वस्त्रों का मिलना संभव न हो तो उन्हीं कपड़ों को खूब धोकर, धूप देकर, शुद्ध कर तथा सुखा कर उपयोग में लाना चाहिए।

क्रीडनकानि खल्वस्य विचित्राणि घोषवन्ति अभिरामाणि, अगुरूणि, अनास्यप्रवेशीनि, अवित्रासनानि अप्राणहराणि च स्युः।[२]

बच्चों को खिलौने ऐसे देने चाहिए जो रंग-विरंग के हों, बजने वाले हों, सुन्दर हों, हलके हों, मुँह में जाने लायक न हों, डरावने न हों तथा प्राण लेने वाले न हों।

न ह्यस्य वित्रासनं साधु। तस्मात् तस्मिन् रुदति अभुञ्जाने वा अन्यत्र विधेयतामगच्छति राक्षस-पिशाच-पूतनाद्यानां

१-२. चरकसंहिता शारीरस्थान अ० ८.९१-९५।

नामानि चाह्वयता कुमारस्य वित्रासनार्थं नामग्रहणं न कार्यं स्यात् ।[३]

बच्चों को डेरवाना अच्छा नहीं होता । अतः यदि वे रोते हों, खाते पीते न हों अथवा और भी कोई बात न मानते हों तो राक्षस, भूत, पिशाच एवं पूतना आदि का नाम लेकर उन्हें बुलाना तथा उनके नाम से बच्चों को डेरवाना नहीं चाहिए ।

बालमङ्के सुखं दध्यात् न चैनं तर्जयेत् क्वचित् ।
सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥
नाकृष्य स्थापयेत् क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ।
रोदयेन्न क्वचित् कार्ये विधिमावश्यकं विना ॥
तच्चित्तमनुवर्तेत तं सदैवानुमोदयेत् ।
संसेवितमना एवं नित्यमेवाभिवर्द्धयेत् ॥[४]

बच्चों को गोदी में बहुत मुलायमी के साथ रखना चाहिए । उन्हें कभी डाँटना नहीं चाहिए, सहसा जगाना नहीं चाहिए तथा अनुचित रूप से बैठाना भी नहीं चाहिए। दूसरों की गोदी से खींच कर अपनी गोदी में नहीं लेना चाहिए । शय्या पर उन्हें जल्दी में नहीं डालना चाहिए तथा बिना किसी अपरिहार्य कारण के उन्हें रोने नहीं देना चाहिए । हमेशा ही उनके मन का अनुवर्तन तथा अनुमोदन करना चाहिए एवं उनकी रुचि का ख्याल रखते हुए उन्हें बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

अभियुक्तः सदाचारी नातिस्थूलो न लोलुपः ।
कुमारधारः कर्तव्यस्तत्राद्यो बालचित्तवित् ॥

---

३. " " " ८.९६ ।

४. ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड ।

अधार्मिकं दुराचारः स्थूलो विकटगामिनम् ।
करोति लोलुपो बालं घस्मरत्वेन रोगिणम् ॥५

लड़कों को खेलाने-घुमाने के लिए ऐसे आदमी को नियुक्त करना चाहिए जो प्रामाणिक हो, सदाचारी हो, बहुत मोटा न हो, लालची न हो तथा बालकों के चित्त का विशेषज्ञ हो। यदि वह दुराचारी होगा तो बालक को आचारहीन, मोटा होगा तो बालक को बेढंगा चलने वाला तथा लालची और पेटू होगा तो बालक को भी अधिक खिला-पिला कर रोगी बना देगा।

शिक्षा एवं लालन-पालन :

पितृभ्यां शिक्षणीयाश्च भीसंदर्शनमात्रतः ।
न सन्ताड्या बाधनीया लालनीयाश्च सन्ततम् ॥
भग्नकामा न कार्याश्च प्राप्तकामाः प्रतोषिताः ।
पुष्टाङ्गाश्चापि कर्तव्याः तत्क्रीडनकदानतः ।
हसन्मुखाः प्रकर्तव्या न कार्याः प्ररुदन्मुखाः ॥६

माता-पिता को चाहिए कि वे केवल भय दिखा कर बालकों को शिक्षा दें। उन्हें ताड़ना या पीड़ा न दें। उनका सदा लालन करें। बालकों की इच्छा को भग्न नहीं करना चाहिए। उनकी इच्छाओं को पूर्ण करना चाहिए और उन्हें सन्तुष्ट कर देना चाहिए। बालकों को हृष्ट-पुष्ट भी बनाना चाहिए। उन्हें उनके लायक खिलौने देकर हँसमुख रखना चाहिए। ऐसा नहीं करना चाहिए कि वे रोने जैसा मुँह बनाये रहें।

शिशोर्दुःशिक्षणीयत्वात् सोपेक्षो न क्षणं भवेत् ।७

---

५. अष्टाङ्गसंग्रह ।

६. मार्कण्डेय स्मृति, वृद्धचारिप्रकरण ।

७-८-९. सूक्तिमुक्तावली २.४८.३९.४० ।

बच्चों को, चंचल होने के कारण, कुछ सिखाना बहुत कठिन होता है अतः उनकी शिक्षा में एक क्षण की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अनिच्छन्तोऽपि विनयं विद्याभ्यासेन बालकाः ।
भेषजेनेव नैरुज्यं प्रापणीयाः प्रयत्नतः ॥८

जो बालक कुछ सीखना न चाहते हों उन्हें भी अभ्यास कराते-कराते किसी प्रकार विद्या एवं विनय की शिक्षा देने का प्रयत्न करना चाहिए जैसे औषध दे दे कर रोगी को नीरोग बनाया जाता है।

शनैः शनैर्विनीयन्ते तर्जनैस्तोषणैरपि ।
नवा इवाश्वाः कुशलैर् बालाश्चपलचेतसः ॥९

कुशल माता-पिता तथा शिक्षक को नये घोड़ों के समान चंचल चित्त वाले बालकों को कुछ डरवा-धमका कर तथा कुछ हँसा-खेला कर धीरे-धीरे शिक्षा देनी चाहिए।

वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ।१०

चूड़ाकर्म (मुण्डन) हो जाने के बाद बालक को वर्णमाला तथा गिन्ती का ज्ञान करना चाहिए।

कुमारम् आयौवनप्राप्तेः धर्मार्थकौशलागमनाच्च
अनुपालयेत् ।११

जब तक बालक युवा न हो जाय तब तक उन्हें धर्म-सदाचार, अर्थार्जन के उपयुक्त शास्त्र तथा विविध विद्याओं एवं कलाओं की शिक्षा देते हुए उनका पालन करना चाहिए।

---

१०. कौटलीय अर्थशास्त्र अधिकरण १. अ० ४।

११. चरकसंहिता शारीरस्थान अ० ८.६८।

चतुर्वर्षावधि सुतान् लालयेत् पालयेत् पिता ।
ततः षोडशपर्यन्तं गुणान् विद्यां च शिक्षयेत् ॥[१२]

पिता को चार वर्ष तक पुत्रों का लाड़-प्यार करना चाहिए और उसके बाद पाँचवें वर्ष से सोलह वर्ष तक गुणों और विद्याओं की शिक्षा देनी चाहिए ।

विंशत्यब्दाधिकान् पुत्रान् प्रेरयेत् गृहकर्मसु ।[१३]

जब पुत्र वीस वर्ष से अधिक अवस्था का हो जाय तो उसे गृहकार्य में लगाना चाहिए ।

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नतः ।[१४]

पुत्रों की भाँति ही कन्या का भी लालन-पालन करना चाहिए तथा विशेष ध्यान देकर उसे शिक्षा भी देनी चाहिए ।

षोडशाब्दात् परं पुत्रं द्वादशाब्दात् परं स्त्रियम् ।
न ताडयेत् ॥[१५]

सोलह वर्ष से अधिक अवस्था के पुत्र तथा बारह वर्ष से अधिक अवस्था की कन्या का ताड़न नहीं करना चाहिए ।

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रमिवाचरेत् ॥[१६]

पाँच वर्ष तक बालकों का लाड-प्यार करना चाहिए तथा दश वर्ष तक अर्थात् १०वें वर्ष से पन्द्रवें वर्ष तक आवश्यकतानुसार उनका

१२-१३-१४. महानिर्वाणतन्त्र अ० ८ ।

१५. शुक्रनीति अ० ३ ।

१६. चाणक्यनीति ।

ताड़न भी करना चाहिए। परन्तु जब लड़के सोलह वर्ष के हो जायँ तो उनके साथ मित्र जैसा मधुर व्यवहार करना चाहिए।

प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति स्थितिः।१७

बड़े लड़कों की अपेक्षा छोटे लड़कों की इच्छाओं की पूर्ति पहले करनी चाहिए।

पित्रा पुत्रो वयस्योऽपि सततं वाच्य एव तु।
यथा स्याद् गुणसंयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद् यशः ॥१८

यदि पुत्र सयाना हो जाय तब भी पिता को उसे सदा सिखाते-समझाते रहना चाहिए जिससे कि वह और भी अधिक गुणवान् और महान् यशस्वी हो जाय।

युवा निजादेश-निवेशितश्रीः स्वयं प्रभुः प्राप्तपदप्रतिष्ठः।
शिष्यः सुतो वाऽऽत्महितैर्बलाद्धि न शिक्षणीयो न निवारणीयः ॥१९

जब शिष्य अथवा पुत्र—युवा, अपना आदेश अच्छी तरह चलाने योग्य, स्वयं सब काम करने में समर्थ तथा पद एवं प्रतिष्ठा से युक्त हो जायँ तो उन्हें, अपना हित चाहने वाले पिता, माता एवं गुरु को, न तो बलपूर्वक किसी काम में लगाना चाहिए और न बलपूर्वक किसी काम से रोकना ही चाहिए।

---

१७. महाभारत उद्योगपर्व ७.९७।

१८. महाभारत आदिपर्व ४२.४।

१९. यशस्तिलकचम्पू १४.१६।

१४

३. माता-पिता के प्रति पुत्र का व्यवहार

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।१

पुत्र को पिता का आज्ञाकारी होना चाहिए तथा माता के प्रति हार्दिक श्रद्धा रखनी चाहिए।

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् आचार्यश्च ।२

प्रातःकाल उठने पर सबसे पहले माता, पिता एवं आचार्य को प्रणाम करना चाहिए। (यदि साक्षात् प्रणाम करना असम्भव हो तो मन से भी प्रणाम कर लेना चाहिए)

मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।
हितं चाऽप्यहितं चापि न विचार्यं (नरर्षभ) ।।३

माता, पिता और गुरुजनों का अनुशासन अवश्य मानना चाहिए। उनके आदेश और अनुशासन में हित और अहित का विचार नहीं करना चाहिए।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।४

माता, पिता एवं आचार्य इन तीनों को सेवा-शुश्रूषा तथा आज्ञा-पालन आदि के द्वारा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना चाहिए। इन तीनों के सन्तुष्ट रहने पर सब प्रकार के तप एवं अनुष्ठान को परिपूर्ण मानना चाहिए।

---

१. अथर्ववेद ३.३०.२।

२-३. महाभारत अनुशासन० १०४, ४३-१४५।

४. मनुस्मृति २.२२८।

मातरं पितरं चैव साक्षात् प्रत्यक्षदेवताम् ।
मत्वा गृही निषेवेत सदा सर्वप्रयत्नतः ॥५

माता एवं पिता को साक्षात् प्रत्यक्ष देवता समझ कर गृहस्थ को सब प्रकार से उन्हीं की सेवा करनी चाहिए।

आसनं शयनं वस्त्रं पानं भोजनमेव च ।
तत्तत्समयमादाय मात्रे पित्रे निवेदयेत् ॥६

आसन, शयन, वस्त्र, पेय वस्तु एवं भोजन आदि सुखसाधनों को उचित समय पर माता-पिता की सेवा में अर्पित करते रहना चाहिए।

औद्धत्यं परिहासं च तर्ज्जनं परिभाषणम् ।
पित्रोरग्रे न कुर्वीत ।७

उद्दण्डता, हास-परिहास, डाँट-फटकार तथा निन्दा एवं उपालम्भ यह सब माता-पिता के सामने नहीं करना चाहिए।

श्रावयेत् मृदुलां वाणीं सर्वदा प्रियमाचरेत् ।
पित्रोराज्ञानुसारी स्यात् ।८

माता-पिता से सदा मधुर वाणी बोलनी चाहिए सदा उनका प्रिय करना चाहिए तथा उन्हीं की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिए।

प्राप्यापि महतीं वृद्धिं वर्तेत पितुराज्ञया ।९

बहुत बड़ी वृद्धि (तरक्की और पद-प्रतिष्ठा) पाने पर भी पिता की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिए।

●

५-६-७-८. महानिर्वाणतन्त्र अ० ८ ।

९. शुक्रनीति २.३८ ।

४. भाई-बहन का व्यवहार

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत शन्ति वाम् ।।[१]

भाई-भाई को परस्पर द्वेष नहीं करना चाहिए ।

वहन-वहन को परस्पर द्वेष नहीं करना चाहिए ।

सभी भाइयों और वहनों को सौमनस्ययुक्त एवं एकव्रत होकर परस्पर कल्याणमयी वाणी का व्यवहार करना चाहिए ।

सोदरेषु च सर्वेषु स्वस्याधिक्यं न दर्शयेत् ।[२]

यदि कई भाई हों तो उनमें से किसी एक भाई को या विशेष कर वड़े भाई को भोजन-वस्त्र या अधिकार आदि में अपनी विशेषता नहीं दिखानी चाहिए ।

पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ।।[३]

जेठे भाई को चाहिए कि वह छोटे भाइयों का पिता के समान पालन-पोषण करे तथा छोटे भाइयों को चाहिए कि वे बड़े भाई के साथ धर्मानुसार पुत्र के समान व्यवहार करें ।

●

---

१. अथर्ववेद ३.३०.३ ।

२. शुक्रनीति ३ ।

३. मनुस्मृति ९.१०८ ।

५. पति-पत्नी का व्यवहार

धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धयाऽमृतभाषणैः ।
सततं तोषयेद् दारान् नाप्रियं क्वचिदाचरेत् ॥[१]

धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा तथा अमृततुल्य मधुर भाषण से स्त्री को सदा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना चाहिए।

स्त्री के साथ किसी प्रकार का अप्रिय व्यवहार नहीं करना चाहिए।

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥[२]

रुपये-पैसे का हिसाब रखना, उसका यथोचित व्यय करना, घर की तथा घरेलू वस्तुओं की सफाई रखना, पूजा-पाठ, देव-पूजन आदि धार्मिक कृत्यों तथा अतिथि-सत्कार की व्यवस्था करना, पाक-निर्माण तथा खिलाने-पिलाने की व्यवस्था करना तथा खाट, पलंग, कुर्सी, संवारी आदि समस्त घरेलू वस्तुओं की व्यवस्था एवं देख-भाल करना, इन सब कामों में स्त्रियों को लगाना चाहिए तथा उन्हीं को उसका उत्तरदायित्व सौंप देना चाहिए।

भर्तृ-भ्रातृ-पितृ-ज्ञाति-श्वश्रू-श्वसुर-देवरैः ।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥[३]

पति, भाई, पिता, जाति-भाई, सास, श्वसुर, देवर तथा बन्धु आदि

---

१. महानिर्वाणतन्त्र ।

२. मनुस्मृति ९.११ ।

३. याज्ञवल्कस्मृति आचाराध्याय ८२ ।

सब लोगों को भूषण, वस्त्र एवं भोजन आदि से स्त्रियों का आदर-सम्मान करना चाहिए।

न ताडयेन्नातिमात्रं पुण्येन कृशतां नयेत्।
स्त्रियं भर्ता न चान्येषां दोषं तस्याः प्रकाशयेत्॥
भोजनाच्छादनैः पुष्पभूषणाद्यैर् निजस्त्रियम्।
आलापैः सरसैर्नित्यं तोषयेत्तां शपेन्न च॥४

स्त्रियों का ताड़न नहीं करना चाहिए।

उन्हें अत्यधिक व्रतानुष्ठान आदि से कृश एवं दुर्बल नहीं बना देना चाहिए।

स्त्री में यदि कोई दोष हो तो उसे दूसरे लोगों के सामने नहीं प्रकट करना चाहिए।

स्त्री को उत्तम भोजन-वस्त्र देकर, पुष्प-माला एवं भूषण आदि शृङ्गार के साधन लाकर तथा उसके साथ सरस-मधुर बातें कर सदा प्रसन्न रखना चाहिए।

स्त्री के लिए गाली या शाप आदि अपमानसूचक तथा अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

सुसंरब्धोऽपि रामाणां न ब्रूयादप्रियं वचः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य च॥५

कामसुख, मानसिक प्रसन्नता तथा समस्त धर्मानुष्ठान स्त्रियों के ही अधीन हैं अतः बहुत क्रोध होने पर भी स्त्रियों को कभी अप्रिय बचन नहीं बोलना चाहिए।

---

४. शाण्डिल्यस्मृति ३.१५५-१५६।

५. महाभारत आदिपर्व ६८.५०।

उत्तमां गुणसम्पन्नां रूपयौवनशालिनीम् ।
अलोलुपेन चित्तेन दृष्ट्वा मामेव चिन्तयेत् ॥
स्त्रीषु क्षान्तमना नित्यम् अवदन्नप्रियं सदा ।
अतिक्रमं परिहरन् सञ्जातं वाऽप्यतर्कयन् ॥
क्षालयन् पावनैः स्त्रीणां जायमानं व्यतिक्रमम् ।
कुब्जां वा विकलां वापि सर्वावस्थां गतां स्त्रियम् ॥
अविनिन्दन् चरन् स्त्रीणां प्रियं शास्त्रानुकूलतः ।
एवंवृत्तः सदाचारो नरो विगतकल्मषः ॥६

स्त्रियों के प्रति पुरुषों के व्यवहार के सम्बन्ध में लक्ष्मी की उक्ति—

उत्तम, गुणसम्पन्न तथा रूपयौवनशालिनी स्त्री को शुद्ध भाव से देखते हुए उसे मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए।

स्त्रियों के साथ सदा क्षमा का व्यवहार रखना चाहिए तथा उनके साथ कभी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिए। स्त्री के साथ व्यवहार में कोई अतिक्रम नहीं होने देना चाहिए तथा स्त्री से यदि कोई अतिक्रम हो जाय तो उसका पवित्र भाव से परिमार्जन कर देना चाहिए।

स्त्री चाहे कुब्जा हो, किसी अङ्ग से विकल अर्थात् कुरूप हो अथवा कैसी भी हो उसकी निन्दा न करते हुए उसके साथ शास्त्रानुसार प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसे आचरण का पालन करता है वही सदाचारी तथा निर्दोष है।

दुर्वाच्यं कथयन् पत्नीम् एकाहमशनं त्यजेत् ।
त्र्यहं सन्ताडयन् रक्तं पातयन् सप्त वासरान् ॥७

पत्नी को दुर्वचन–गाली आदि–बोल कर एक दिन उपवास करना

६-७. लक्ष्मीतन्त्र २७.४४-४७।

चाहिए, मार कर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए तथा खून निकल आने पर सात दिन तक उपवास करना चाहिए।

पति के प्रति पत्नी का व्यवहार :

यस्मै दद्यात् पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥८

पिता अथवा पिता की अनुमति से भाई जिस पुरुष के साथ विवाह कर दे उस पुरुष की जीवन भर सेवा करनी चाहिए तथा उसके मर जाने पर भी उसका लंघन नहीं करना चाहिए।

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥९

सध्वी स्त्री को तरह-तरह के सुखसाधनों के द्वारा, विनम्र एवं शालीन व्यवहार से, शान्तिमय रहन-सहन से, सत्य तथा प्रिय वचनों से तथा प्रेम से पति की सदा सेवा करनी चाहिए।

भार्या एकचारिणी रूढविश्रम्भा देववत् पतिम् अनुवर्तेत ।१०

एकचारिणी (पतिव्रता) स्त्री को पति में अटल विश्वास रखते हुए उसे देवतुल्य मानना चाहिए तथा उसके अनुकूल अपना व्यवहार रखना चाहिए।

तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि सन्निवेशयेत् ।११

पति के परामर्श के अनुसार परिवार का कार्यभार अपने ऊपर लेना चाहिए और उसे सँभालना चाहिए।

---

८. मनुस्मृति ५.१५१।

९. श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७, अ० ११।

१०-१९. वात्स्यायन कामसूत्र अधिकरण ४, अ० १।

भोजने च "रुचितमिदमस्मै, द्वेष्यमिदम्, पथ्यमिदम्, अपथ्यमिदम्" इति च विद्यद् हानोपादानार्थम् ।१२

भोजन के पदार्थों में पति के लिए कौन-कौन पदार्थ रुचिकर हैं और अरुचिकर तथा कौन पथ्य है और कौन अपथ्य है इस बात को भी स्त्री को अच्छी तरह जानना चाहिए और तदनुसार तत्तत् पदार्थों का परित्याग और संग्रह करना चाहिए।

स्वरं वहिरुपश्रुत्य भवनमागच्छतः "किं कृत्यम्" इति ब्रुवती सज्जा भवनमध्ये तिष्ठेत् ।१३

घर के वाहर से ही पति का शब्द सुन कर "क्या काम है? ऐसा कहना चाहिए और काम करने के लिए घर में तैयार रहना चाहिए।

अतिव्ययम् असद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत् ।१४

यदि पति बहुत खर्चा करते हों या बेकार खर्चा करते हों तो उन्हें एकान्त में समझाना चाहिए।

आवाहे विवाहे यज्ञे गमनं, सखीभिः सह गोष्ठीं, देवताभिगमनम् इत्यनुज्ञाता कुर्यात् ।१५

यदि किसी के घर विवाह यज्ञ आदि में जाना हो, यदि कहीं सखी-सहेलियों के समाज में जाना हो और यदि कहीं देवता के दर्शन-पूजन आदि के लिए जाना हो तो पति की सहमति से जाना चाहिए।

सर्वक्रीडासु च तदानुलोम्येन प्रवृत्तिः ।१६

सब प्रकार की क्रीड़ा एवं मनोरञ्जनों में पति की अनुकूलता से ही प्रवृत्त होना चाहिए।

नायकापचारेषु किञ्चित्कलुपिता नात्यर्थं निर्वदेत् ।१७

यदि पतिद्वारा कोई अनुचित काम हो जाय तो उसके लिए उन पर अधिक कलुषित भाव नहीं रखना चाहिए तथा उन्हें अत्यधिक भला-बुरा नहीं कहना चाहिए।

नायकस्य व्रतमुपवासं च स्वयमपि करणेनानुवर्तेत ।१८

यदि पति कोई व्रत-उपवास आदि धार्मिक कृत्य करते हों तो उनका स्वयं भी अनुवर्तन करना चाहिए।

नायकमित्राणां च स्रगनुलेपनताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः ।१९

यदि पति के मित्र घर पर आ जायँ तो फूल-माला, चन्दन आदि अनुलेपन तथा पान-सुपारी आदि से उनका भी उनके अनुरूप आदर-सत्कार करना चाहिए।

पति-पत्नी का साम्मनस्य :

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।२०

जिस कुल में स्त्री से पति तथा पति से स्त्री सन्तुष्ट रहती है उस कुल में अवश्य ही सदा कल्याण होता है, भलाई होती है।

यदा भार्या च भर्ता च परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गतम् ।।२१

जब पति और पत्नी दोनों ही एक दूसरे के वशवर्ती एवं अनु-

---

२०. मनुस्मृति ३.६० ।

२१. ,, ३.६१ श्लोक पर उद्धरण ।

गामी होते हैं तब धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों की एक साथ प्राप्ति होती है।

तात्पर्य यह है कि पति एवं पत्नी दोनों को ही समान रूप से एक-दूसरे के सन्तोष, प्रसन्नता सम्मान एवं रुचि का ध्यान रखते हुए परस्पर मधुर व्यवहार रखना चाहिए।

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥[22]

स्त्री और पति का सबसे श्रेष्ठ धर्म यही है कि उन दोनों में मृत्यु-पर्यन्त कभी विचारों एवं व्यवहारों में कोई विषमता न हो।

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तौ इत्तरेतरम् ॥[23]

विहाह कर लेने के बाद स्त्री और पुरुष को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वे विवाह में की हुई प्रतिज्ञाओं के अनुसार आपस में कभी भी एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य से विचलित न हों। दोनों ही समान रूप से और शुद्ध हृदय से दोनों के प्रति अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें।

●

---

२२. मनुस्मृति ९.१०१।

२३. ,, ९.१०२।

६. परिवार तथा सम्बन्ध के अन्य सदस्यों के व्यवहार

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्यासु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वथा ।।[१]

जिस कुल में पत्नी, बहन, लड़की, पुत्रवधू आदि दुःख के कारण शोक करती हैं उस कुल का शीघ्र ही विनाश हो जाता है और जहाँ ये सब प्रसन्न रहती हैं उस कुल की सब प्रकार से वृद्धि होती है ।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर् नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ।।[२]

इसलिए अपने कुल की समृद्धि चाहने वाले पुरुषों को इन स्त्रियों का सत्कार तथा उत्सवों के अवसर पर भूषण, वस्त्र एवं भोजन-पान आदि से सदा आदर-सत्कार करना चाहिए। उन्हें दुःखी होने का अवसर नहीं आने देना चाहिए ।

ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ।
भ्रातुर्भार्या च तद्वत् स्यात् यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ।।[३]

बड़ी बहन, बड़े भाई की स्त्री तथा बचपन में जिसका दूध पीया हो वह धाय, ये तीनों ही माता के समान होती हैं। अतः इनका भी माता के समान ही आदर करना चाहिए ।

१-२. मनुस्मृति ३.५७.५९ ।

३. महाभारत अनु० १०५.१९-२० ।

जननी गुरुपत्नी च ज्येष्ठसोदरपत्निका ।
श्वश्रूर्ज्येष्ठसोदरा च पितृव्यस्त्री च मातुली ॥
मातुः पितुः स्वसारौ च नवेमा मातरः स्मृताः ॥[४]

माता, गुरु की पत्नी, जेठे भाई की स्त्री, सास, जेठी बहन, चाची, मामी, मौसी तथा फूआ ये नौ माताएँ कहलाती हैं। अतः माता के समान ही इन सबका भी सम्मान करना चाहिए।

पुत्री कनिष्ठसोदर्याः पुत्रभार्या तथैव च।
कनिष्ठसोदरस्त्री च शिष्या पुत्रवधूस्तथा ॥[५]
भ्रातुष्पुत्री भागिनेयी नवमी शरणागता ।
सुताः पर्य्यायतस्त्वेताः स्नेहशासनभाजनम् ॥[६]

पुत्री, छोटी बहन की पुत्री, उसकी पुत्रवधू, छोटे भाई की स्त्री, शिष्या, पुत्रवधू, भाई की पुत्री, भाञ्जी तथा नौवीं शरण में आयी हुई स्त्री ये सब पुत्री के समान हैं। अतः अपनी पुत्री के समान ही इनके साथ स्नेह रखना चाहिए तथा इनके ऊपर शासन भी करना चाहिए।

---

४. बृहद्धर्मपुराण उत्तर० ६.२५।
५-६. ,, ,, ६.८६-८७।

७. श्वसुर तथा जामाता आदि के व्यवहार

अनाह्वानं च दुर्वाक्यम् असह्यकरणं तथा।
अदानमप्यवात्सल्यं जामातरि न चाचरेत् ॥१

उत्सवों में आह्वान न करना, दुर्वचन बोलना, असहनीय काम करना, उपायन-भेंट आदि न देना तथा वात्सल्य न रखना यह सब काम श्वसुर को जामाता के साथ नहीं करना चाहिए।

श्वसुरो दुहितुः पत्युर् गुरून् भ्रातृनथापरान्।
सम्मान्यांश्चार्चयेत् शक्त्या अन्यथा धर्मलोपकृत् ॥२

श्वसुर को जामाता के गुरुजनों, भाइयों तथा अन्य माननीय व्यक्तियों का भी यथाशक्ति आदर-सत्कार करना चाहिए। ऐसा न करने से धर्म का पालन नहीं होता।

श्वसुरस्य तु पुत्राद्यो देववत् भगिनीपतिम्।
चिन्तयेत् पूजयेच्चैव वयोज्येष्ठो भवेद् यदि ॥३

यदि भगिनीपति (बहनोई) अवस्था में ज्येष्ठ हों तो श्वसुर के पुत्रों (सालों) को उन्हें देवतुल्य समझना चाहिए एवं उसी प्रकार उनका आदर-सम्मान करना चाहिए।

जामाता श्वसुरस्यापि प्रियं कुर्यात् सदैव हि।
अमानितो न गच्छेच्च जामाता श्वसुरालयम् ॥४

१-४. बृहद्धर्मपुराण अ० ३६.२५.२९-३०.३१.२८।

जामाता को भी श्वसुर के प्रति कोई अप्रिय आचरण नहीं करना चाहिए और यदि उचित सम्मान न होता हो तो श्वसुर के घर नहीं जाना चाहिए।

परिवार तथा सम्बन्ध के सदस्यों का भरण-पोषण :

साध्वी भार्या पितृपत्नी माता बाला पिता स्नुषा।
अभर्तृकाऽनपत्या या साध्वी कन्या स्वसाऽपि च॥
मातुलानी भ्रातृभार्या पितृ-मातृ-स्वसा तथा।
मातामहोऽनपत्यश्च गुरु-श्वसुर-मातुलाः॥
बालोऽपिता च दौहित्रो भ्राता च भगिनीसुतः।
एतेऽवश्यं पालनीयाः प्रयत्नेन स्वशक्तितः॥[५]

साध्वी स्त्री, विमाता, माता, अविवाहिता कन्या, पिता, पुत्रवधू, बिना पति और पुत्र की कन्या एवं बहन, मामी, भावज, फूआ, मौसी, निःसन्तान नाना, गुरु, श्वसुर, मामा एवं छोटी अवस्था के पितृविहीन नाती, भाई तथा भाञ्जा इन सब लोगों का अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्नपूर्वक अवश्य भरण-पोषण करना चाहिए।

परिवार तथा सम्बन्धियों के साथ विवाद वर्जनीय :

ऋत्विक् पुरोहिताऽचार्यैर् मातुलाऽतिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर् वैद्यैर् ज्ञाति-सम्बन्धि-बान्धवैः॥
मातापितृभ्यां जामीभिर् भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥[६]

---

५. शुक्रनीति ३.१२२-१२४।

यज्ञ कराने वाले, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित, बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य, जातिवाला, सम्बन्धी (नातेदार) भाई-बन्धु, माता, पिता, जामि (पुत्रवधू, बहन आदि) भाई, पुत्र, स्त्री, कन्या तथा नौकर-चाकरों के साथ छोटी-छोटी बातों के लिए वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

· · · · एतैरधिक्षिप्तः सहेताऽसंज्वरः सदा ।७

यदि ये लोग कुछ आक्षेप करें या कटु बचन बोल दें तो, बिना मन में कुछ कलुष भाव रखे, उसे सह लेना चाहिए, उसे बुरा नहीं मानना चाहिए।

जायापत्योश्च पित्रोश्च भ्रात्रोश्च स्वामिभृत्ययोः ।
भगिन्योर्मित्रयोर्भेदं न कुर्याद् गुरुशिष्ययोः ॥८

पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-भाई, स्वामी-भृत्य, बहन-बहन, मित्र-मित्र तथा गुरु-शिष्य इन सबों में भेद नहीं डालना चाहिए, वैर नहीं कराना चाहिए।

६-७. मनुस्मृति ४.१७९-१८० ।

८. शुक्रनीति ३.१०२-३ ।

८. भाई-बन्धुओं के व्यवहार

संभोजनं संकथनं संप्रश्नोऽथ समागमः ।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ।।१

भाई-बन्धुओं के साथ निम्नाङ्कित व्यवहार करना चाहिए—

आपस में एक साथ बैठ कर भोजन करना चाहिए ।

एक साथ बैठ कर प्रेमपूर्वक बातें करनी चाहिए ।

आपस में कुशल-मंगल पूछना चाहिए ।

प्रेम से परस्पर मिलना-जुलना तथा एक दूसरे के घर आना-जाना चाहिए । तथा—

कभी भी आपस में वैर-विरोध नहीं करना चाहिए ।

ज्ञाति-सम्बन्धि-मित्राणि पूजनीयानि सर्वशः ।२

भाइयों, सम्बन्धियों तथा मित्रों का सब प्रकार से आदर-सम्मान करना चाहिए ।

सुखानि सहभोज्यानि ज्ञातिभिर् (भरतर्षभ) ।३

सुखसाधनों का उपभोग भाइयों को अकेले नहीं प्रत्युत आपस में बाँट कर करना चाहिए ।

बन्धूनां वारयेद् वैरं नैकपक्षाश्रयो भवेत् ।४

---

१. महाभारत उद्योगपर्व ६४.११ ।

२. महाभारत अनुशासनपर्व १०४.५२ ।

३. महाभारत उद्योगपर्व ३९.३२ ।

४. चारुचर्या ।

यदि भाइयों में बैर लग जाय तो मध्यस्थ होकर उसे दूर करना चाहिए, किसी एक पक्ष की ओर नहीं होना चाहिए।

भोजयेच्चागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ।[५]

अपने मित्र, सम्बन्धी तथा भाई-बन्धु भोजन के समय यदि घर पर आ जायँ तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिए।

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ।[६]

जो लोग अपनी भलाई चाहते हैं उन्हें अपने भाई-बन्धुओं को आगे बढ़ाना चाहिए।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्तमश्नुते ॥[७]

जो सम्पन्न एवं समर्थ व्यक्ति अपने दरिद्र, दीन एवं रोगी बन्धु के ऊपर अनुग्रह करता है, उसकी सहायता करता है वह पुत्रादि परिवार एवं पशुधन की वृद्धि के साथ अनन्त कल्याण का भागी होता है।

---

५. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय १०८।

६-७. महाभारत उद्योगपर्व ३९.१८.१७।

६. श्रेष्ठजनों के प्रति व्यवहार

देव-गो-ब्राह्मण-गुरु-वृद्ध-सिद्धाचार्यान् अर्चयेत् ।[१]

देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध (महात्मा) तथा आचार्य इनकी पूजा तथा आदर-सम्मान करना चाहिए।

विनय-बुद्धि-विद्याऽभिजन-वयो-वृद्ध-सिद्धाचार्याणाम् उपासिता ।[२]

जो लोग विनय, बुद्धि, विद्या, कुल तथा अवस्था में श्रेष्ठ हों तथा सिद्ध महात्मा एवं अपने आचार्य हों उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए और उनके सहवास में रहना चाहिए।

न सतो न गुरून् परिवदेत् ।[३]

सज्जनों तथा गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

न वृद्धान् न गुरून् न गणान् न नृपान् वा अधिक्षिपेत् ।[४]

बड़े-बूढ़े लोगों, गुरुजनों, गणों तथा नृपों पर आक्षेप तथा उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

अभिवादयेद् वृद्धांश्च,[५]

अपने से श्रेष्ठ लोगों को नमस्कार करना चाहिए।

१-४. चरकसंहिता सूत्रस्थान ८ अध्याय।

५-९. मनु मृति ४.१५४।

दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।६

उन्हें बैठने के लिए अपना आसन देना चाहिए।

कृताञ्जलिरुपासीत,७

उनके पास हाथ जोड़ कर बैठना चाहिए। तथा—

गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियाद् ।।८

वे जाने लगें तो उनके पीछे-पीछे चलना चाहिए।

त्वङ्कारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत् ।९

जो अपने से ज्येष्ठ हों उन्हें "तुम" नहीं कहना चाहिए और उनका नाम लेकर उन्हें नहीं पुकारना चाहिए।

अवराणां समानानाम् उभयेषां न दुष्यति ।१०

परन्तु जो अवस्था में अपने से छोटे हों तथा अपने बराबरी के हों उन्हें तुम कहने तथा उनका नाम लेने में कोई दोष नहीं।

राज्ञो नानुकृतिं कुर्यात् न च श्रेष्ठस्य कस्यचित् ।११

राजा (शासक) तथा अपने से श्रेष्ठ पुरुष का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

न महाजन-हासः कर्तव्यः ।१२

बड़े लोगों का उपहास नहीं करना चाहिए।

गुरूणां पुरतो राज्ञो न चासीत महासने ।१३

९-१०. महाभारत शान्ति० अ० १९३।

११-१४. शुक्रनीति अ० २।

अपने से श्रेष्ठ पुरुषों तथा राजा के सम्मुख ऊँचे आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

प्रौढपादो न तद्वाक्यं हेतुभिर्विकृतिं नयेत् ।१४

प्रौढ़पाद होकर अर्थात् आसन जमा कर उनकी बातों को तर्कों से नहीं काटना चाहिए।

नोत्कृष्ट-शय्याशनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत् ।१५

अपने से श्रेष्ठ पुरुषों की शय्या तथा आसन पर नहीं बैठना चाहिए। इसी प्रकार अपने से छोटे लोगों के भी आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

न च तान् विवदेद् धीमान् आक्रुष्टश्चापि तैः सह ।१६

यदि अपने से श्रेष्ठजन कुछ भला-बुरा भी कहें तो उनसे विवाद नहीं करना चाहिए।

न देव-गो-गुरु-ब्राह्मण-समीपे पादौ प्रसारयेत् ।१७

देवता, गौ, गुरुजनों तथा ब्राह्मणों के समीप पैर पसार कर नहीं बैठना नाहिए।

श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।१८

अपने से श्रेष्ठ पुरुष सोये हुए हों तो उन्हें जगाना नहीं चाहिए।

न शिष्टान् असत्कुर्यात् ।१९

शिष्ट पुरुषों का अनादर नहीं करना चाहिए।

१५-१६. मार्कण्डेयपुराण अ० ३४.८६.९४।

१७. हारीतस्मृति।

१८-१९. शंखलिखित।

सतां मतिं न अतिक्रामेत् ।२०

सज्जनों के उपदेश का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

वाक्येन वाक्यस्य प्रतिघातं आचार्यस्य वर्जयेत्
श्रेयसां च ।२१

अपने आचार्य तथा अपने से श्रेष्ठ पुरुषों की बातों को अपनी बातों से काटना नहीं चाहिए।

अधस्तादिव हि श्रेयस उपचारः ।२२

अपने से श्रेष्ठ लोगों की सेवा विनम्रता के साथ करनी चाहिए।

न उत्तमैः सह विरुद्ध्येत ।२३

श्रेष्ठ पुरुषों के साथ विरोध नहीं करना चाहिए।

वृद्धान् नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदिति ।
नासीनः स्यात् स्थितेष्वेवं आयुरस्य न रिष्यते ॥
न जातु त्वमिति ब्रूयाद् आपन्नोऽपि महत्तरम् ।
अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत् ॥२४

अपने से श्रेष्ठ पुरुषों को वाणी या व्यवहार किसी प्रकार से दबाना या अपमानित नहीं करना चाहिए।

---

२०. चाणक्यसूत्र अ० ३.९।

२१. आपस्तम्बधर्मसूत्र द्वितीय प्रश्न।

२२. शतपथब्राह्मण का० १, अ० १, प्रा० १।

२३. चरकसंहिता सूत्र० ८.२।

२४. महाभारत अनुशासन १६२.४६-५३-५४।

श्रेष्ठ पुरुषों को काम करने या कहीं जाने के लिए आज्ञा नहीं देनी चाहिए।

यदि अपने से श्रेष्ठ पुरुष खड़े हों तो वहाँ छोटे व्यक्ति को बैठे नहीं रहना चाहिए। खड़ा हो जाना चाहिए।

संकट की अवस्था में भी अपने से श्रेष्ठ पुरुष के लिए "तुम" शब्द का व्यवहार नहीं करना चाहिए। परन्तु—

जो अपने से छोटे हों, अपने समान हों तथा जो विद्यार्थी हों उनके लिए "तुम" शब्द का व्यवहार किया जा सकता है।

१०. गुरु-शिष्य के व्यवहार

गुरुओं का शिष्यों के प्रति :

पुत्रमिवैनमनुकाङ्क्षन् सर्वधर्मेष्वनपच्छादयमानः सुयुक्तो विद्यां ग्राहयेत् ।[१]

अपने पुत्र की ही तरह शिष्य की भी उन्नति की कामना करते हुए, किसी धर्म या कर्तव्य के सम्बन्ध में कुछ भी न छिपाते हुए, पूरे लगन के साथ शिष्य को विद्या प्रदान करना चाहिए।

न चैनमध्ययनविघ्नेन आत्मार्थेषु उपरुन्ध्याद् अनापत्सु ।[२]

आपत्ति के समय को छोड़ कर सामान्य समय में शिष्य के अध्ययन में बाधा डाल कर उसे अपने काम में नहीं लगाना चाहिए।

अपराधेषु चैनं सततमुपालभेत ।[३]

अपराध हो जाने पर शिष्य को सदा उपालम्भ देते और सावधान करते रहना चाहिए।

शिष्यशिष्टिरवधेन ।[४]

शिष्य को बिना मारे-पीटे केवल उपालम्भ आदि से ही उसे अनुशासन में रखना चाहिए।

अशक्तौ रज्जु-वेणु-विदालाभ्यां तनुभ्याम् ।[५]

१-३. आपस्तम्बधर्मसूत्र प्रश्न १, पटल २, २५.२६.२९।

४-५. गौतमधर्मसूत्र प्रश्न १, अ० २.४८-४९।

यदि केवल उपालम्भ से काम न चले तो पतली रस्सी या बाँस की पतली छड़ी से शासन करना चाहिए।

शिष्यांश्च शिष्याद् धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ।[६]

वाणी, बाहु एवं उदर पर संयम रखते हुए अर्थात् वाणी से अनावश्यक बातें न करते हुए, बाहु से किसी को पीड़ा न पहुँचाते हुए तथा उदर से भोजन पर नियन्त्रण रखते हुए धर्मोक्त विधि से शिष्यों का शासन करना चाहिए।

आचार्यो मधुरैर्वाक्यैः साभिप्रायावलोकनैः ।
शिष्यं शिष्यान्न निर्लज्जं कुर्याद् बन्धनताडनैः ॥
मस्तके हृदये वापि प्राज्ञश्छात्रं न ताडयेत् ।
अधोभागे शरीरस्य पुनः किञ्चन शिक्षयेत् ॥[७]

आचार्य को मधुर वाक्यों तथा इङ्गितों के द्वारा ही शिष्य का शासन करना चाहिए। उसे बाँध कर या मार कर निर्लज्ज नहीं करना चाहिए।

यदि छात्र को मारना ही हुआ तो उसके मस्तक या हृदय पर न मार कर अधोभाग पर कुछ मारना चाहिए और फिर शिक्षा देनी चाहिए।

विद्यार्थी बुद्धिरहितो बाल्येन यदि चेष्टया ।
कृत्याकृत्यपरिज्ञानवैकल्येन च मौढ्यतः ॥
अश्रुतं दुःश्रुतं वापि पारुष्यं दुष्टभाषणम् ।
अकार्यमनृतं फल्गु वाक्यं तुच्छप्रभाषणम् ॥

---

६. मनुस्मृति ४.१७५।

७. शिवतत्त्वरत्नाकर २.७.७।

कुर्वन्नपि न निग्राह्यो ज्ञप्तिं यावद् भवेदसौ ।
स्वपुत्रवद् रक्षणीयः षोडशाब्दात्परं तु चेत् ।।
निग्राह्यः स्यान्न चेन्नूनं शक्त्या पाल्यः सदैव हि ।।८

विद्यार्थी बुद्धिहीन होने के कारण, लड़कपन के कारण, बच्चों जैसी चेष्टाओं के कारण, उचित-अनुचित का परिज्ञान न होने कारण तथा मूर्खता के कारण यदि गुरु की बातों को न सुनता हो या ठीक से न सुनता हो, परुष तथा दुष्ट भाषण करता हो, अनुचित काम करता हो, झूठ बोलता हो, निरर्थक तथा तुच्छ बातें करता हो तब भी उसे दण्ड नहीं देना चाहिए और जब तक उसे ज्ञान न हो जाय तब तक पुत्र के समान ही उसका पालन करना चाहिए। परन्तु यदि सोलह वर्ष की अवस्था के बाद भी वह न सँभले तो अवश्य उसे दण्ड देना चाहिए। और यदि सर्वथा उसका सुधार संभव न हो तब भी यथाशक्ति उसका पालन करना चाहिए।

शिष्यों का गुरु-शिक्षकों के प्रति :

आचार्याधीनः स्यादन्यत्र पतनीयेभ्यः ।९

अनुचित बातों को छोड़ कर शेष सभी बातों में शिष्यों को गुरु की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिए।

गुरुजन भी शिष्यों को यही उपदेश देते थे कि—

यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया उपास्यानि ।१०

८. मार्कण्डेयस्मृति, ब्रह्मचारिधर्मप्रकरण ।

९. आपस्तम्बधर्मसूत्र, प्रथम प्रश्न, पटल १.२ ।

१०. तैत्तिरीय उपनिषद् १.१०.२ ।

हम लोगों के जो अच्छे चरित हों, आचारण हों उन्हीं को तुम मानना और उनका अनुकरण करना। बुरे आचरणों का नहीं।

हितकारी गुरोरप्रतिलोमयन् वाचा ।११

शिष्यों को गुरु का हितकारी होना चाहिए और उनकी किसी बात के विपरीत नहीं बोलना चाहिए।

गुरोः उदाचारेषु अकर्ता स्वैरकर्माणि ।१२

गुरु के बैठने-सोने, खाने-पीने तथा भ्रमण आदि के स्थानों में शिष्यों को अपना काम नहीं करना चाहिए।

न चास्य सकाशे संविष्टो भाषेत ।१३

गुरु के पास बैठ कर उनसे बातें न करे, खड़ा होकर करे।

अभिभाषितस्तु आसीनः प्रतिब्रूयात् ।१४

परन्तु यदि गुरु आज्ञा दे दें तो बैठ कर बातें करे।

तिष्ठति च न आसीत ।१५

गुरु खड़े हों तो बैठना नहीं चाहिए।

आसीने च न संविशेत् ।१६

गुरु बैठे हों तो उनके पास लेटना नहीं चाहिए।

चेष्टति च चिकीर्षन् तच्छक्तिविषये ।१७

गुरु जिस काम को करना चाहते हों उन्हें यदि शिष्य स्वयं कर सकता हो तो शिष्य को ही उस काम को करने की इच्छा प्रकट करनी चाहिए।

११-२०. आपस्तम्बधर्मसूत्र, द्वितीय प्रश्न, द्वितीय पटल।

प्रेषितः तदैव प्रतिपद्येत ।१८

गुरु जिसी समय शिष्य को कहीं भेजें उसी समय उसे तैयार हो जाना चाहिए।

उच्चैस्तरां न आसीत ।१९

गुरु के सामने ऊँचे आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

सर्वतः प्रतिष्ठिते (आसीत) ।२०

जो आसन जमीन के बराबर बिछा हो (चटाई आदि) उस पर बैठना चाहिए।

शय्यासने च आचरिते न संविशेत् ।२१

जिस शय्या और आसन पर गुरु बैठते हों उस पर स्वयं नहीं बैठना चाहिए।

यानमुक्तः अध्वनि आरोहेत ।२२

रास्ते में यदि सवारी पर बैठना हो तो गुरु के कहने पर बैठना चाहिए।

सभा-निकष-कट-स्रस्तरांश्च ।२३

सभा में, निकष (पाटा) कट (चटाई) तथा स्रस्तर (बिछौना) इन पर भी गुरु के कहने अथवा संकेत करने पर बैठना चाहिए।

व्युपतोद-व्युपजाप-व्यभिहासोदामन्त्रण-नामधेय ग्रहण-प्रेषणानि इति गुरोर्वर्जयेत् ।२४

व्युपतोद (शरीर में अंगुली से खोद कर संकेत करना) व्युपजाप (कान में सलाह करना) व्यभिहास (हँसी-परिहास करना) उदामन्त्रण (जोर से बुलाना) नामधेयग्रहण (नाम लेना) और प्रेषण

(किसी काम के लिए कहीं भेजना) ये बातें गुरु के साथ नहीं करनी चाहिए।

आपदि अर्थं ज्ञापयेत् ।२५

हाँ, यदि शिष्य किसी विशेष आपत्ति की अवस्था में हो तो उपर्युक्त बातों के द्वारा भी अपनी बातों को सूचित कर सकता है।

स्थानासन-चंक्रमण-स्मितेषु अनुचिकीर्षन् ।२६

स्थान, आसन, घूमने-फिरने तथा हँसी की बातों में गुरु के पीछे रहना चाहिए अर्थात् इन कामों को स्वयं आगे-आगे नहीं करना चाहिए।

सन्निहिते मूत्र-पुरीष-वातकर्मोच्चैर्भाष-हास-ष्ठीवन-दन्त-स्कवन-निःश्रृङ्खण-भ्रूक्षेपण-तालन-निष्ठ्यानि न कुर्यात् ।२७

गुरु के समीप मूत्र (पेशाब) पुरीष (पैखाना) वातकर्म (हवा छोड़ना) उच्चैर्भाषा (जोर से बोलना) हास (जोर से हँसना) ष्ठीवन (थूकना) दन्तस्कवन (दाँत निखोरना) निःश्रृङ्खण (नाक छिड़कना) भ्रूक्षेपण (आँखें चलाना) तालन (ताल देना) तथा निष्ठ्य (अँगुली चटकाना) आदि कार्य नहीं करना चाहिए।

दारे प्रजायां च उपस्पर्शनभाषा विस्रम्भपूर्वाः परिवर्जयेत् ।२८

गुरु समीप में हों तो स्त्री और पुत्र से अधिक सम्पर्क नहीं रखना चाहिएं तथा खुल कर बातें नहीं करनी चाहिए।

वाक्येन वाक्यस्य प्रतिघातम् आचार्यस्य वर्जयेत् श्रेयसां च ।२९

गुरु तथा श्रेष्ठ पुरुषों की बातों को अपनी बातों से नहीं काटना चाहिए।

आसने शयने भक्ष्ये भोज्ये वाससि वा निहीनतरवृत्तिः स्यात् ।३०

आसन, शयन, भक्ष्य, भोजन तथा वस्त्र में गुरु की अपेक्षा न्यूनता रखनी चाहिए।

गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ।३१

गुरु की आँखों के सामने मनमाने ढंग से नहीं बैठना चाहिए। सभ्यता के साथ बैठना चाहिए।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।३२

परोक्ष में भी गुरु का केवल नाम नहीं उच्चारण करना चाहिए प्रत्युत उपाधि तथा श्री आदि के साथ कहना चाहिए।

न चैवास्यानुकुर्वीत गति-भाषित-चेष्टितम् ।३३

गुरु के गमन भाषण तथा चेष्टाओं का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ।३४

अध्ययन के आरम्भ तथा समाप्ति में गुरु के चरणों का शिर झुका कर नमस्कार करना चाहिए।

बाले समवयस्के चाऽध्यापके गुरुवच्चरेत् ।३५

यदि अध्यापक अपने से कम अवस्था के हों अथवा समवयस्क हों तथापि उनके साथ गुरु के समान ही व्यवहार करना चाहिए।

३१-३३. मनुस्मृति अ० २।

३४. श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७.१२.३।

३५. स्मृत्यर्थसार।

गुरूक्त पुरुषं वाक्यम् आशिषं चिन्तयेत् (शिवे) ।३६

∴ गुरु के कठोर वचन को आशीर्वाद समझना चाहिए।

तेन सन्ताडितो वापि प्रसादमिति संस्मरेत् ।३७

यदि गुरु मारे-पीटे तो उसे उनका प्रसाद समझना चाहिए।

अभिमानो न कर्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः ।३८

जाति विद्या तथा धन आदि का अभिमान नहीं करना चाहिए।

न नियोगं गुरोर्दद्यात्, ३९

गुरु को आज्ञा नहीं देनी चाहिए।

युष्मदा नैव भाषयेत् ।४०

गुरु के लिए "तुम" का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ।
न कुर्याद् गुरुभिः सार्द्धं तदाज्ञां नैव लङ्घयेत् ।।४१

ऋण देना, ऋण लेना तथा वस्तुओं की खरीद-बिक्री करना, यह काम गुरुओं के साथ नहीं करना चाहिए। गुरुओं की आज्ञा का उल्लंघन भी नहीं करना चाहिए।

छायाभूमिपरित्यागी तिष्ठेत् श्रीगुरुसन्निधौ ।४२

अपने शरीर की छायापरिमित भूमि छोड़ कर गुरु के समीप बैठना चाहिए। अर्थात् शिष्य को गुरु से ३-४ हाथ की दूरी पर बैठना चाहिए।

३६-४४. चिदम्बररहस्य।

एकासने नोपविशेद् गुरुणा तत्समैः सह ।४३

गुरु तथा गुरु के समान श्रेष्ठ पुरुषों के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

गुरुं नाम्ना न भाषेत जपात् श्राद्धाद्दते प्रिये ।४४

जप तथा श्रद्धा को छोड़ कर गुरु के केवल नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन ।४५

गुरु के साथ कदापि किसी वात के लिए हठ नहीं करना चाहिए।

---

४५. महाभारत अनु० १०४.८० ।

११. अतिथियों के प्रति व्यवहार

अतिथिदेवो भव ।१

अतिथि को देवता समझना चाहिए और देवता के समान ही उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिए ।

अतिथिमभ्यागतं पूजयेद् यथाविधि ।२

समागत अतिथि का उचित रूप से आदर-सत्कार करना चाहिए ।

गृहागतं क्षुद्रमपि यथार्हं पूजयेत् सदा ।३

यदि कोई क्षुद्र व्यक्ति भी घर पर आ जाय तो उसका भी कुशल-प्रश्न तथा जल आदि से यथोचित आदर-सत्कार करना चाहिए ।

आसनावसथौ, शय्याम्, अनुव्रज्याम्, उपासनम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्यात् हीने हीनं समे समम् ।।४

आसन, निवासस्थान, शय्या, अनुव्रज्या (पीछे-पीछे चलना), उपासना (समीप में बैठना) इनका उत्तम, समान तथा हीन अतिथि के साथ उत्तम, समान तथा हीन के रूप में उपयोग करना चाहिए। अर्थात् उत्तम का उत्तम, समान का समान तथा अपने से निम्न अतिथि का निम्न रूप से आदर-सत्कार होना चाहिए।

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद् शिक्षावली ।

२. चाणक्यसूत्र ।

३. शुक्रनीति ७.३९।

४. मनु (कृत्यकल्पद्रुम गृहस्थकाण्ड) ।

स्त्रियो वा पुरुषो वापि सर्वत्रातिथि-पूजने ।
पुम्भिः पुंसां स्त्रियां स्त्रीभिर्दद्याद् गन्धादिकं करे ॥५

यदि स्त्री और पुरुष दोनों अतिथि के रूप में आवें तो पुरुषों को पुरुषों के तथा स्त्रियों को स्त्रियों के हाथ में गन्ध आदि देकर आतिथ्य करना चाहिए ।

समानप्रभुं विद्येश्वरं वा स्वागतेन, आसनेन शिरःकम्पेन,
ताम्बूलदानेन हास्यकथया च ।६

जो प्रभुता में अपने समान हों अथवा विद्वान् हों उन्हें "स्वागतम्-स्वागतम्" ऐसा कह कर आसन देकर, शिर झुका कर, पान देकर तथा हास्य-विनोद पूर्ण बातों से आतिथ्य करना चाहिए ।

अभीष्टद्रव्यदानेन बालवृद्धादीन् ।७

बालकों और वृद्धों को, जो वस्तु प्रिय तथा रुचिकर हो, उसे उन्हें देकर उनका स्वागत-सत्कार करना चाहिए ।

श्रमापनोदनं कुर्याद् व्यजनादिभिरादरात् ।८

आदर-सम्मान पूर्वक व्यजन (पंखा) आदि डुला कर समागत व्यक्ति की थकावट को दूर करना चाहिए ।

आगतस्यासनं दद्यात् श्रान्तस्य शयनं तथा ।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम् ॥९

---

५. परमेश्वरपटल १५ ।

६-७. बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र अ० १ ।

८. परमेश्वरतन्त्र पटल ७ ।

९. बृहस्पतिस्मृति ।

आगत व्यक्ति को आसन देना चाहिए, जो थके हों उन्हें विश्राम के लिए शयन देना चाहिए, प्यासे को पानी देना चाहिए तथा भूखे को भोजन देना चाहिए।

चक्षुर्दद्यात् मनो दद्यात् वाचं दद्यात् सुभाषिताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥१०

किसी के आने पर नेत्रों को प्रसन्न रखना चाहिए, मन को प्रफुल्लित रखना चाहिए, मधुर वाणी बोलनी चाहिए, उनके पास बैठना चाहिए और जाते समय उनके पीछे-पीछे जाना चाहिए। अतिथि-सत्कार एक यज्ञ है जिसकी ये पाँच दक्षिणाएँ हैं।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥११

सज्जनों के घर अतिथि के लिए कम से कम जमीन, आसन, पानी तथा मधुर वचन इनमें कभी भी त्रुटि नहीं होती। अतः कम से कम इतना सत्कार तो अतिथि का सबको करना ही चाहिए।

तम् अभिमुखः अभ्यागम्य, यथावयः समेत्य तस्य आसनमाहारयेत् ।१२

अतिथि आता हो तो उसके पास आकर, अवस्था के अनुसार यथोचित प्रणाम-आशीर्वाद करके उसे आसन देना चाहिए।

सान्त्वयित्वा तर्पयेद् रसैः भक्ष्यैः अद्भिः अवरार्घ्येन इति ।१३

---

१०. महाभारत वनपर्व २.६१।

११. ,, ,, २.५४।

१२. से २५ तक की शिक्षाएँ आपस्तम्बधर्मसूत्र के द्वितीय प्रश्न की हैं।

पहले मधुर वचन आदि से अतिथि को सन्तुष्ट करके रस, भोजन, पानी तथा अर्घ्य आदि से तृप्त करना चाहिए।

शेषभोजी अतिथीनां स्यात् ।१४

अतिथि को भोजन कराने के पश्चात् भोजन करना चाहिए। साथ में भोजन करना हो तब भी उनके बाद ही भोजन करना आरम्भ करना चाहिए।

न रसान् गृहे भुञ्जीत अनवशेषम् अतिथिभ्यः ।१५

यदि घर में दही, दूध आदि हो तो उसे बिलकुल समाप्त नहीं कर देना चाहिए प्रत्युत कुछ अतिथियों के लिए सुरक्षित रख कर खर्च करना चाहिए।

सहासीत ।१६

किसी अतिथि के घर पर आ जाने पर उनके साथ रहना चाहिए, उनके पास बैठना चाहिए, अलग नहीं रहना चाहिए।

प्रदोषे अनुज्ञाप्य शयीत ।१७

रात में जब सोना हो तो अतिथि महोदय से आज्ञा लेकर सोने जाना चाहिए।

पूर्वं प्रतिबुध्येत ।१८

अतिथि से पहले ही जागना चाहिए जिससे कि प्रातःकाल अतिथि की सेवा-शुश्रूषा में कोई त्रुटि न होने पावे।

श्वोभूते यथामनसं तर्पयित्वा संसाधयेत् ।१९

दूसरे दिन यदि अतिथि जाना चाहें तो उनको जलपान आदि से यथेष्ट सन्तुष्ट कर जाने देना चाहिए।

प्रस्थितम् अनुव्रजेत् ।२०

जब अतिथि घर से जाने लगें तो उन्हें कुछ दूर तक पहुँचाने के लिए पीछे-पीछे जाना चाहिए।

यानवन्तम् आयानात् ।२१

यदि अतिथि महाशय सवारी पर आये हों तो जहाँ तक सवारी पर न चढ़ें वहाँ तक उन्हें पहुँचाना चाहिए।

यावत् न अनुजानीयात् इतरः ।२२

यदि विना सवारी व हों तो जहाँ तक वे लौटने को अनुमति न दें वहाँ तक उन्हें पहुँचाना चाहिए।

अप्रतीभायां सीम्नो निवर्तेत ।२३

यदि अतिथि को अपने इस कर्तव्य की स्वयं सूझ न हो तो गाँव की सीमा तक पहुँचा कर स्वयं लौट आना चाहिए।

समेत्य न्यायतो निवर्तेत वेद्युद्यानाऽराम-सभा-प्रपा-तडाग-देवगृह-महागमस्थान-नदीनाम् अन्यतमस्मिन् तं प्रदक्षिणं कुर्यात्, वाचमुत्सृज्य पुनर्दर्शनाय इति ।२४

अपने गाँव के समीप जो कोई यज्ञवेदी, फुलवाड़ी, बगीचा, सभा-स्थान, प्रपा (पनसरा), तालाब, देवमन्दिर, बाजार, चौराहा आदि तथा नदी हो वहाँ तक अतिथि को पहुँचा कर, खूब प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर तथा "फिर दर्शन दीजियेगा" ऐसा निवेदन कर उन्हें अपने से दाहिनी ओर छोड़ते हुए लौट आना चाहिए।

गृहदौःस्थित्यम् आगन्तुकानां पुरतो न प्रकाशयेत् ।२५

अतिथियों के समक्ष घर की दुःखद स्थितियों तथा कठिनाइयों का वर्णन नहीं करना चाहिए।

यदीच्छेत् पुनरागन्तुं नातिदूरमनुव्रजेत् ।२६

यदि अतिथि का पुनः आगमन अभीष्ट हो तो उन्हें अधिक दूर तक नहीं पहुँचाना चाहिए।

अरावप्युचितं कार्यम् आतिथ्यं गृहमागते ।२७

यदि शत्रु भी घर पर आ जाय तो उसका भी यथोचित आतिथ्य करना चाहिए।

अतिथि-सत्कार के सम्बन्ध में कुछ रामायण-महाभारत के शिक्षाप्रद प्रसंग :

यदि कोई वृद्ध माननीय व्यक्ति सवारी से आवें तो उन्हें हाथ का सहारा देकर सवारी से उतारना चाहिए।

तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससम्भ्रमम् ।
मानयिष्यन् स मानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥
अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाऽभ्यासं मनीषिणः ।
ततोऽवतारयास परिगृह्य रथात् स्वयम् ॥२८

ऋषि वशिष्ठ का आगमन सुन कर रामचन्द्रजी तुरन्त ही उनका स्वागत-सम्मान करने के लिए घर से निकल पड़े और जल्दी-जल्दी रथ के पास आकर उन्हें स्वयं रथ से उतारा।

---

२६. शौनकीयनीतिसार ६१।

२७. महाभारत शान्तिपर्व १४६.५१।

२८. वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड ५-६७।

विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन पर विशेष स्वागत-समारोह :

(१) भगवान् कृष्ण के आगमन के अवसर पर उनका विशेष स्वागत करने के लिए धृतराष्ट्र द्वारा कर्मचारियों को विविध निर्देश—

मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥
स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् ॥
नगरादपि याः काश्चिद् गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।
द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यः ताश्च यास्यन्त्यपावृताः ॥
सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम् ।
उदीक्षतां महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥२९
महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतो दिशः ।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात् ॥
दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम् ।
तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसंमृष्टमलंकृतम् ॥ २९

दुर्योधन को छोड़ कर शेष सभी मेरे पुत्र एवं पौत्र सजधज कर एवं सुन्दर रथों पर चढ़ कर श्रीकृष्ण की अगवानी करने जायेंगे ।

सहस्रों कल्याणिनी महिलाएँ भी अलंकारों से सुसज्जित हो पैदल ही जाकर महाभाग कृष्ण की अगवानी करेंगी ।

२९. महाभारत उद्योगपर्व ८७.१४-१९ ।

नगर से और भी जो कन्याएँ श्रीकृष्ण को देखने जायँगी वे सब बिना किसी प्रकार के पर्दे के ही जायँगी।

स्त्री, पुरुष एवं बाल-बच्चों सहित सारा नगर ही महात्मा श्रीकृष्ण का उसी भाँति दर्शन करे जिस प्रकार सारी जनता बेरोक-टोक सूर्य का दर्शन करती है।

नगर में चारों ओर ध्वज एवं पताकाएँ फहरा दी जायँ तथा रास्तों को झाड़-बहार कर उन पर पानी छिड़क दिया जाय। तथा—

दु:शासन के घर को दुर्योधन के घर से भी उत्तम रूप से झाड़-बहार कर विविध प्रकार की सामग्रियों से शीघ्र सजा दिया जाय।

इस प्रकार धृतराष्ट्र ने कर्मचारियों को आदेश दिया।

(२) मुनि रोमपाद के आगमन एवं स्वागत के अवसर पर अयोध्या की सजावट के लिए महाराज दशरथ का आदेश—

क्रियतां नगरं सर्वं क्षिप्रमेव स्वलंकृतम्।
धूपितं सिक्तसंमृष्टं पताकाभिरलंकृतम्॥
ततः स्वलंकृतं राजा नगरं प्रविवेश ह।
शंखदुन्दुभिनिर्ह्रादैः पुरस्कृत्वा द्विजर्षभम्॥[३०]

सारे नगर को शीघ्र ही सुन्दर रूप से सजा दिया जाय, चारों ओर धूपवत्तियाँ जला दी जायँ, सर्वत्र पानी का छिड़काव एवं सफाई कर दी जाय तथा झण्डी-पताकाएँ लहरा दी जायँ।

इसके बाद राजा ने द्विजवर को आगे करके शंख एवं दुन्दुभि के घोष के साथ सुसज्जित नगर में प्रवेश किया।

---

३०. वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड ११.२४.२७।

(३) युधिष्ठिर के नगरप्रवेश के समय नागरिकों द्वारा नगर की, घरों की, द्वारों की तथा सड़कों की सजावट—

अभियाने तु पार्थस्य नरैर्नगरवासिभिः।
नगरं राजमार्गश्च यथावत् समलंकृताः॥
पाण्डुरेण च माल्येन पताकाभिश्च मेदिनी।
संस्कृतो राजमार्गोऽभूद् धूपनैश्च प्रधूपितः॥
अथ चूर्णैश्च गन्धानां नानापुष्पप्रियंगुभिः।
माल्यदामभिरासक्तै राजवेश्माभिसंवृतम्॥
कुम्भाश्च नगरद्वारि वारिपूर्णा नवा दृढाः।
सिताः सुमनसो गौराः स्थापितास्तत्र तत्र ह॥
यथा स्वलंकृतं द्वारं नगरं पाण्डुनन्दनः।
स्तूयमानः शुभैर्वाक्यैः प्रविवेश सुहृद्वृतः॥३१

युधिष्ठिर के आगमन के अवसर पर नगर के निवासियों ने नगर को तथा सड़कों को खूब अच्छी तरह सजाया। पीत-धवल वर्ण की मालाओं से तथा पताकाओं से सारा नगर सजाया गया था तथा राजमार्ग को विविध प्रकार के धूपों से सुगन्धित किया गया था।

राजभवन नाना प्रकार के गन्धों के चूर्णों से, विविध पुष्पों के परागों से तथा लटकाई हुई फूल-मालाओं तथा हारों से ढँक दिया गया था। नगर के दरवाजे पर पानी से भरे हुए नये-नये मजबूत कुम्भ रखे हुए थे तथा सफेद एवं पीले पुष्पों के गुच्छे लटकाये हुए थे।

इस प्रकार अलंकृत दरवाजों से सुशोभित नगर में मित्रों के साथ

---

३१. महाभारत शान्तिपर्व ३७.४५-४९।

युधिष्ठिर ने प्रवेश किया। उस समय मङ्गलमय वाक्यों से उनकी स्तुति एवं जय-जय कार मानाया जा रहा था।

विशिष्ट अतिथियों के स्वागत-समारोह में नृत्य-गीत आदि का आयोजन :

(१) भरत के आने पर भरद्वाज ऋषि के आश्रम में उनके स्वागत में अप्सराओं के नृत्य का भी आयोजन किया गया था। यथा—

उपानृत्यन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात्।[३२]

महर्षि भरद्वाज के आदेश से अप्सराओं ने भरत के स्वागत में नृत्य किया।

(२) अष्टावक्र ऋषि के आने पर कुबेर द्वारा उनके स्वागत-सत्कार में नृत्य, गीत एवं वाद्य के आयोजन का महाभारत में वर्णन मिलता है। यथा—

एताश्चान्याश्च वै बह्व्यः प्रनृत्ताप्सरसां गणाः।
अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च॥[३३]

रम्भा, उर्वशी आदि तथा और भी बहुत सी अप्सराओं ने नृत्य किया तथा गन्धर्व लोगों ने विविध प्रकार के वाद्यों को बजाया।

(३) इन्द्रपुरी में अर्जुन के जाने पर इन्द्र के आदेश से आयोजित विशाल स्वागत-समारोह में नृत्य, गीत एवं वाद्य के विविध कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये थे।[३४]

न स्त्रीभिः प्रेष्याभिरपि सह उपहासं गच्छेत्।[३५]

---

३२. वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड ९१.४७।

३३. महाभारत अनुशासनपर्व १३.४६।

३४. महाभारत वनपर्व अ० ४६।

३५. काश्यपसंहिता पृ० ४०.४१।

परिचारिका स्त्रियों के साथ भी परिहास नहीं करना चाहिए।

न चासामपूजापुरस्कृतं नाम गृह्णीयात्, मान्स्थानेनैव ब्रूयात्।३६

उन्हें ऐसे नामों तथा सम्बोधनों से नहीं पुकारना चाहिए जो सम्मानसूचक न हों। सम्मानसूचक नामों से ही पुकारना चाहिए।

न च भर्तुरविदितं स्त्रीभ्यः किञ्चिदादद्यात्।३७

स्त्रियों से ऐसी कोई चीज नहीं माँगनी चाहिए या लेनी चाहिए जो उनके पतियों को न बतायी गयी हो तथा उन्हें न मालूम हो।

न चाविदितः प्रविशेत्।३८

विना पूर्वसूचना के अकस्मात् किसी स्त्री के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

३६-३८. काश्यपसंहिता पृ० ४०,४१।

१२. मित्र के साथ व्यवहार

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा ।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥१

मित्र धनी हो या गरीब, दुखी हो या सुखी तथा निर्दोष हो या सदोष वह परम सहायक होता है। अतः मित्रों के साथ अत्युत्तम व्यवहार रखना चाहिए।

गोप्यं न गोपयेन् मित्रे ।२

छिपाने योग्य बात भी मित्र से नहीं छिपानी चाहिए।

तद् गोप्यं न प्रकाशयेत् ।३

मित्र की गोपनीय बातों को कहीं प्रगट नहीं करना चाहिए।

वैरीभूतोऽपि पश्चात् प्राक् कथितं वापि सर्वदा ।४

मित्र के साथ पीछे वैर हो जाने पर भी पहले की कही-सुनी बातों को प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

विज्ञातमपि यद् दौष्ट्यं दर्शयेत्तन्न कर्हिचित् ।५

मित्र के दोष को जानते हुए भी कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

प्रतिकर्तुं यतेतैव गुप्तः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ।६

गुप्त रूप से मित्र के दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

---

१. वाल्मीकिरामायण किष्किन्धाकाण्ड ८.८ ।

२-६. शुक्रनीति अ० ३.३१३-३१४ ।

यस्येच्छेदुत्तमां मैत्रीं कुर्यान्नार्थाभिलाषकम् ।७

जिसके साथ अच्छी तरह मित्रता निभाना चाहे उससे रुपया-पैसा लेने या माँगने की इच्छा न करे।

परोक्षे तद्गृहश्चारम् ।८

परोक्ष में मित्र के भीतरी घर में न जाय।

तत्स्त्री-सम्भाषणं तथा ।९

परोक्ष में मित्र की स्त्री से बातचीत नहीं करनी चाहिए।

तन्न्यून-दर्शनं नैव ।१०

मित्र की न्यूनता नहीं दिखानी चाहिए।

तत्प्रतीप-विवादनम् ।११

मित्र के प्रतिकूल विवाद नहीं करना चाहिए।

असहाय्यं च तत्कार्ये ।१२

मित्र के कार्य में सहयोग देने से दूर नहीं रहना चाहिए।

अनिष्टोपेक्षणं न च ।१३

मित्र का कहीं कुछ अनिष्ट होता हो तो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः ।१४

जो कोई महत्त्वपूर्ण बात विदित हो तो उसे भी अनुरागवश पुनः मित्र से कह देना चाहिए।

७-१३. ,, ,, ,, २०१-२०२।

१४. महाभारत विराटपर्व अ० ५.८।

लज्जते च सुहृद् येन भिद्यते दुर्मना भवेत् ।
वक्तव्यं न तथा किञ्चिद् विनोदेऽपि च धीमता ॥१५

जिस बात के कहने से मित्र लज्जित हो जाय, उसके हृदय में अलगाव पैदा हो जाय तथा उसका मन दुखी हो जाय ऐसी कोई बात विनोद में भी मित्र से नहीं कहनी चाहिए ।

यदीच्छेद् विपुलां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत् ।
वाग्वादमर्थसम्बन्धं तत्पत्नी - परिभाषणम् ॥१६

यदि मित्र के साथ बहुत दिनों तक प्रीति निभानी हो तो वाद-विवाद, रुपये-पैसे का लेन-देन तथा उसकी स्त्री के साथ विशेष बात-चीत यह तीन काम मित्र के साथ नहीं करने चाहिए ।

१५-१६. शुक्रनीति ३.२२९ ।

१३. स्त्री-जाति के प्रति व्यवहार

स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः ।१

स्त्रियाँ सम्मान की अधिकारिणी हैं अतः प्रत्येक मनुष्य को स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए, चाहे वह किसी देश की हों या किसी जाति की हों ।❀

न स्त्रियम् अवजानीयात् ।२

किसी भी स्त्री की अवज्ञा अर्थात् अपमान, निन्दा या अनादर नहीं करना चाहिए ।❀

---

१. महाभारत अनुशासन० ४६.९ ।

❀ दुर्गा सप्तशती में संसार की समस्त स्त्रियों को दुर्गा का ही स्वरूप माना गया है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।

हे देवि ! कलाओं सहित समस्त विद्याएँ तथा जगत् की समस्त स्त्रियाँ आपके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं । अतः देश-जाति का भेद न रखते हुए स्त्री मात्र को आदर-सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए ।

२. चरकसंहिता सूत्रस्थान० अ० ८ ।

❀ बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने स्त्री-निन्दा करने वालों की बड़ी भर्त्सना की है । उन्होंने लिखा है—

अहो धाष्ट्र्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः ।
मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम् ।।

यह उन पुरुषों की कितनी बड़ी धृष्टता है कि स्वयं दोषी होते हुए वे निर्दोष स्त्रियों की निन्दा किया करते हैं । वे उन चोरों की भाँति हैं जो स्वयं

न स्त्रियं शौर्यं दर्शयेत ।३

स्त्रियों को शूरता-वीरता नहीं दिखानी चाहिए। उनके साथ सौम्यभाव से व्यवहार करना चाहिए।

परस्त्रियं नाभिभाषेत् तथा संभाषयेत् यदि।
मातः स्वसरथो पुत्रि आर्येति च वदेद् बुधः ॥४

दूसरे लोगों की स्त्रियों से बातचीत नहीं करनी चाहिए। यदि बातचीत करना आवश्यक ही हो तो उन्हें माता, बहन, बेटी, तथा आर्या आदि सम्बोधनों से सम्बोधित कर बातें करनी चाहिए।

स्त्रीभिर्हास्यं कामजल्पं मुक्तकेश्यादिवीक्षणम्।
इत्यादयो ये च दोषाः प्रकीर्णाः परिकीर्तिताः ॥५

स्त्रियों के साथ हँसी-मजाक करना, असभ्यता से बातें करना तथा उनके जब केश एवं वस्त्र आदि खुले हों—ठीक-ठाक न हों—उस समय उनकी ओर देखना यह सब भी दोष माने गये हैं। अतः इन दोषों से बच कर रहना चाहिए।

यथाऽत्मनस्तथाऽन्येषां दारा रक्ष्याः विपश्चिता ।६

जैसे अपने घर की स्त्रियों की शरीर, शील, मर्यादा एवं इज्जत

चोरी करते हुए दूसरे न चोरी करने वालों को "अरे चोर, ठहरो-ठहरो" कह कर चोर बनाते हैं।

३. शुक्रनीति अ० ३।

४. स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड कौमारखण्ड अ० ४१-१४९।

५. वृद्धहारीतस्मृति अ० ९.२१४।

६. वाल्मीकिरामायण अरण्य० ५०.७।

आदि की रक्षा बड़ी सावधानी से की जाती है उसी प्रकार दूसरों की स्त्रियों की भी सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए।

न च ग्राह्या बलात् स्त्रियः।७

स्त्रियों के साथ जोर-जबर्दस्ती या बलप्रयोग नहीं करना चाहिए।

सर्वथा स्त्री न हन्तव्या सर्वसत्त्वेषु केनचित्।८

किसी भी जाति के प्राणी की स्त्री को नहीं मारना चाहिए।

मातृवत् स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥९

जो लोग दूसरी स्त्रियों को अवस्थानुसार माता के समान, बहन के समान तथा कन्या के समान समझते हैं और वैसा ही व्यवहार करते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।

ये च दस्युभयत्रस्तान् ब्राह्मणान् गाः स्त्रियस्तथा।
सर्वथा परिरक्षन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥१०

जो लोग चोर-डाकुओं एवं दुष्टों के भय से त्रस्त ब्राह्मणों, गायों तथा स्त्रियों की सब प्रकार से रक्षा करते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।

सूचना :—इस प्रकरण की चार अन्तिम शिक्षायें भूल से अतिथि प्रकरण के अन्त में ३५, ३६, ३७ एवं ३८ संख्या के रूप में छप गयी हैं। पाठक कृपया उन्हें भी देखने का कष्ट करेंगे।

●

---

७. महाभारत शा० १३६.१३।

८. ,, शा० १३६.१४।

९. ब्रह्मपुराण द्वि० भाग २२४.११।

१०. महाभारत अनुशासन २३.४५।

१७

१४. स्वामी-सेवकों के व्यवहार

सेवकों के प्रति स्वामियों के व्यवहार :

आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष (भारत)।
पुत्रवत् चापि भृत्यान् स्वान् प्रजाश्च परिपालय ।।[१]

अपनी तथा दूसरों की भी वृत्ति की अर्थात् जीवनसाधनों की सुरक्षा करो तथा अपने भृत्यों तथा प्रजाजनों का अपने पुत्र के समान पालन करो।

अतः भृत्यों का भी पुत्र के समान ही आत्मीयता के साथ पालन-पोषण करना चाहिए।

न कुर्यात् भृतिलोपं तु तथा भृतिविलम्बनम् ।[२]

भृत्यों को मध्य में ही काम से नहीं हटाना चाहिए तथा उन्हें वेतन या मजदूरी देने में विलम्ब भी नहीं करना चाहिए।

यथा यथा तु गुणवान् भृतकस्तद्भृतिस्तथा ।[३]

भृत्य जैसे-जैसे अधिक गुणवान् अर्थात् कार्यकुशल होता जाय वैसे-वैसे उसका वेतन भी बढ़ाते रहना चाहिए।

पीडयन् भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति ।[४]

जो व्यक्ति भृत्य वर्ग को कष्ट पहुँचाता है वह अपनी ही हानि करता है।

---

१. महाभारत अनुशासनपर्व ६१.१७ (युधिष्ठिर के प्रति भीष्म का उपदेश)।
२-४. शुक्रनीति २.३९९-४०१।

काममात्मानं भार्यां पुत्रं वा उपरुन्ध्याद् न तु दासकर्मकरान् ।[५]

गृहस्वामी भले ही अपने को, अपनी स्त्री को अथवा अपने पुत्र को भोजन-वस्त्र आदि का कष्ट दे परन्तु अपने सेवकों एवं परिचारकों को कष्ट न दे ।

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।[६]

भृत्यों की वृत्ति को—तलब-तनखाह को—रोक कर या उसका कुछ अंश बचा कर अपने राज्य एवं धन-सम्पत्ति को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए । भृत्यों को जो देय निर्धारित हो उसे पूरा-का-पूरा ही दे देना चाहिए ।

परिजने दाक्षिण्यम्, स्वकर्मसु भृत्यजननियमनम्, उत्सवेषु च अस्य पूजनम् ।[७]

घर की मालकिन को चाहिए कि वह अपने परिजनों-नौकर-चाकरों पर उदारभाव रखे, अपने-अपने कामों में उन्हें नियमित करे तथा उत्सवों के अवसर पर उनका विशेष भोजन, वस्त्र, उपहार आदि से आदर-सत्कार करे ।

तुष्टभृत्यजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ।[८]

जो स्त्री—घर की मालकिन—अपने भृत्यों को सदा सन्तुष्ट रखती है वही धर्म का पालन करती है ।

---

५. आपस्तम्बधर्मसूत्र प्रश्न २ ।

६. महाभारत उद्योगपर्व ३७.२३ ।

७. वात्स्यायनकामसूत्र अधि० ४, अ० १ ।

८. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.३२१ १६ ।

यः कृशाश्वः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः ।
स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः कृशः ।।९

जिस व्यक्ति का घोड़ा दुबला होता है, गाय-बैल दुबले होते हैं, नौकर-चाकर दुबले होते हैं तथा अतिथि दुबले होते हैं वही व्यक्ति कृश अर्थात् दुबला माना जाता है। केवल शरीर का दुबला आदमी दुबला नहीं माना जाता। अतः इन्हें दुबला नहीं रखना चाहिए।

··· दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ।१०

नौकरों के साथ छोटी-छोटी बातों या भूलों के लिए वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

··· अधिक्षिप्तः सहेताऽसंज्वरः सदा ।११

यदि नौकर भी कभी कुछ अप्रिय या आक्षेपात्मक बचन बोल दे तो उसे मालिक को विना किसी दुर्भावना के सह लेना चाहिए।

भृत्यातिथिषु यो भुंक्ते भुक्तवत्सु सदा नरः ।
अमृतं केवलं भुंक्ते ।१२

भृत्यों तथा अतिथियों के भोजन कर लेने के बाद जो व्यक्ति भोजन करता है वह अन्न नहीं, केवल अमृत का भोजन करता है।

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् ।
असंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ।।१३

---

९. महाभारत शान्ति० ८.२४।
१०. मनुस्मृति ४४.१८०।
११. ,, ४४.१८५।
१२. महाभारत शान्तिपर्व २२१.१३।
१३. महाभारत उद्योग० ३३.४६।

जो गृहस्वामी भृत्य आदि परिजनों को विना दिये अकेला ही अच्छा-अच्छा भोजन करता है तथा अकेला ही अच्छा-अच्छा वस्त्र पहनता है उससे बढ़ कर क्रूर कौन हो सकता है ? अतः अच्छा भोजन और अच्छा वस्त्र भृत्यों को भी देना चाहिए ।

यः (तात) न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ।।[१४]

जो मनुष्य अपने हित में तत्पर और सेवा करने वाले भृत्य पर हमेशा क्रोध नहीं करता है—उससे प्रेम से भी बातें करता है तो भृत्य उस मालिक पर विश्वास करते हैं और आपत्तियों में उसका परित्याग नहीं करते हैं ।

अतः भृत्यों पर सदा बिगड़ते ही नहीं रहना चाहिए, प्रेम भी करना चाहिए ।

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते ।।[१५]

गृहस्थ को अपने समस्त अतिथियों, परिचारकों, अपने परिवार के लोगों तथा भृत्यों का भोजन एक समान रखना उत्तम होता है ।

स्वामियों के प्रति सेवकों का व्यवहार :

स्वामिनः शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ।[१६]

---

१४. ,, ,, ३७.२२ ।

१५. महाभारत शान्तिपर्व १९३.१९ ।

१६-२१. चाणक्यसूत्र ।

स्वामी के शील-स्वभाव को समझ कर, उसे ध्यान में रखते हुए, सेवक को कार्य-सम्पादन करना चाहिए।

यथाज्ञप्तं तथा कुर्यात् ।१७

स्वामी की जैसी आज्ञा हो उसी के अनुसार काम करना चाहिए।

स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ।१८

अनुजीवियों को अपने स्वामी की प्रशंसा करनी चाहिए।

धर्मकृत्येषु अपि स्वामिन एव घोषयेत् ।१९

यदि अनुजीवियों के घर कोई यज्ञ, उत्सव आदि धर्मकृत्य हों तो उन्हें "यह स्वामी की ही कृपा से हो रहा है" ऐसा कहना चाहिए।

यम् अनुजीवेत् तं न अपवदेत् ।२०

जिसके आश्रय से जीये उसकी निन्दा न करे।

स्वामिनि कुपिते स्वामिनमेव अनुवर्तेत ।२१

स्वामी के कुपित हो जाने पर भी स्वामी के ही अनुसार चलना चाहिए और काम करना चाहिए।

दक्षः शुचिः सत्यभाषी जितनिद्रो जितेन्द्रियः ।
अप्रमत्तो निरालस्यः सेवावृत्तौ भवेन्नरः ॥२२

सेवा करने वाले व्यक्ति को काम करने में निपुण, ईमानदार, सत्यवादी, सदा जागरूक तथा जितेन्द्रिय होना चाहिए एवं प्रमाद तथा आलस्य नहीं करना चाहिए।

प्रभुर्विष्णु-समो मान्यः तज्जाया जननीसमा ।
मान्यास्तद्बान्धवा भृत्यैः इहामुत्र सुखेप्सुभिः ॥२३

२२-२९. महानिर्वाणतन्त्र ८.१४३-५०।

जो सेवक लोक-परलोक दोनों में सुख चाहते हों उन्हें अपने मालिक को विष्णु के समान तथा मालकिन को माता के समान मानना चाहिए तथा मालिक के बन्धु-बान्धवों का भी सम्मान करना चाहिए।

भर्तुर्मित्राणि मित्राणि जानीयात् तदरीन् अरीन् ।
सभीतिः सर्वदा तिष्ठेत् प्रभोराज्ञां प्रतीक्षयन् ॥२४

मालिक के मित्र को मित्र तथा शत्रु को शत्रु समझना चाहिए एवं मालिक की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए सदा भय के साथ काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अपमानं गृहच्छिद्रं गुप्त्यर्थं कथितं च यत् ।
भर्तुर्ग्लानिकरं यच्च गोपयेद् अतियत्नतः ॥२५

मालिक के अपमान को, घर के दोषों को, मालिक की कही हुई गोपनीय बातों को तथा जो बातें मालिक के लिए ग्लानि पैदा करने वाली हों उन्हें यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए।

अलोभः स्यात् स्वामिधने सदा स्वामि-हिते रतः ।
तत्सन्निधौ असद्भापां क्रीडां हास्यं परित्यजेत् ॥२६

मालिक के धन पर लोभ नहीं करना चाहिए तथा मालिक के हित का ही काम सदा करना चाहिए। मालिक के पास असभ्य भाषा, क्रीड़ा हँसी-मजाक आदि का परित्याग कर देना चाहिए।

न पापमनसा पश्येद् अपि तद्गृह-किङ्करीः ।
विविक्तशय्यां हास्यं च ताभिः सह विवर्जयेत् ॥२७

मालिक के घर की दासियों को भी कभी बुरे भाव से नहीं देखना चाहिए तथा उनके साथ एकान्त में एक शय्या पर बैठना तथा हास-परिहास करना यह भी वर्जित रखना चाहिए।

प्रभोः शय्याऽऽसनं यानं वसनं भाजनानि च ।
उपानद् भूषणं शस्त्रं नात्मार्थं विनियोजयेत् ।।२८

मालिक की शय्या, आसन, सवारी, वस्त्र, बरतन, जूता, आभूषण तथा शस्त्र इन सबका अपने लिये उपयोग नहीं करना चाहिए।

क्षमां कृतापराधश्चेत् प्रार्थयेदग्रतः प्रभोः ।
प्रागल्भ्यं प्रौढवादं च साम्याचारं विवर्जयेत् ।।२९

यदि कोई अपराध हो जाय तो मालिक के आगे उसके लिए क्षमा माँग लेनी चाहिए तथा मालिक के साथ ढिठाई, बढ़-बढ़ कर बातें तथा उनके बराबरी का आचरण नहीं करना चाहिए।

सामान्य सेवकों के अतिरिक्त राजकर्मचारियों तथा बड़े-बड़े अधिकारियों के परिचारकों के कर्तव्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित सन्दर्भों को देखना चाहिए। यथा—

महाभारत विराटपर्व, सम्पूर्णपञ्चम अध्याय ।

मत्स्यपुराण, अ० २१५.१-२८ श्लोक ।

शुक्रनीति २.५७-६५ श्लोक ।

१५. दीन-दुखियों, अनाथों, विकलांगों तथा रोगियों के प्रति व्यवहार

दुःखितमनु दुःखितो भूयात् ।[१]

दुखी व्यक्ति के प्रति दुःख का भाव प्रकट करना चाहिए ।

अवृत्ति-व्याधि-शोकार्तान् अनुवर्तेत शक्तितः ।[२]

जो व्यक्ति जीविका न होने के कारण, किसी रोग के कारण तथा शोक से दुखी हों उनकी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए ।

सर्वात्मना च आतुराणामारोग्ये प्रयतनीयम् ।[३]

रोगियों को आरोग्य करने के लिए सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिए ।

कृपणातुरानाथव्यङ्गविधवाबालवृद्धान् औषधावसथाशनाच्छादनैः विभृयात् ।[४]

गरीब, आतुर (रोगी), अनाथ, अङ्गहीन (लूले-लँगड़े), विधवा, बालक एवं वृद्ध इन लोगों का औषध, स्थान, भोजन तथा वस्त्र आदि की सहायता से भरण-पोषण करना चाहिए।

---

१. उपदेशशतक ।

२. अष्टांगहृदय ।

३. चरकसंहिता विमानस्थान अध्याय ८ ।

४. शंखलिखित ।

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या गोप्रदानवत् ।[५]

थके-माँदे लोगों की, पैर आदि दबा कर थकावट दूर करना तथा रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करना गोदान के समान श्रेष्ठ है। अतः थके हुए लोगों और रोगियों की यथोचित रूप से सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए।

अनुगृह्णन् न चाक्षिपेत् ।[६]

किसी पर अनुग्रह या किसी की सहायता करते हुए उसे डाँटना-फटकारना, खरी-खोटी बातें सुनना तथा पहले की गल्तियों के लिए धिक्कारना नहीं चाहिए।

दीनान्धकृपणानाथ-वाग्विहीनेषु यत्तथा ।
विकलेषु तथाऽन्येषु जडवामनपंगुषु ।
रोगार्तेषु च यद् दत्तं तत् स्याद् बहुफलं धनम् ।।[७]

दीन, अन्धा, गरीब, अनाथ, गूँगा, जड़, बौना एवं लँगड़ा आदि विकलाङ्गों एवं रोगियों की सेवा हेतु जो धन दान दिया जाता है उसका महान् फल होता है।

आनृशंस्येन सर्वस्य दद्यादन्नं विचक्षणः ।
वासश्च दद्यात् सर्वस्य सर्वसाधारणे हिते ।।[८]

सर्वसाधारण के हित के लिए प्रत्येक असमर्थ व्यक्ति को कृपापूर्वक अन्न एवं वस्त्र का दान करना चाहिए।

---

५. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय २.९ ।

६. महाभारत शान्तिपर्व ७०.१० ।

७. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.३००.३०-३१ ।

८. " ३०१.४२-४३ ।

दृष्ट्वान्धबधिरव्यङ्गान् अनाथान् रोगिणस्तथा ।
दया न जायते येषां ते शोच्या मूढचेतनाः ॥९

अन्धे, बहरे, अङ्गहीन अनाथ और रोगियों को देख कर जिसके हृदय में दया नहीं आती वे मूढ़ हैं और शोचनीय है।

भयार्तांश्च सशोकांश्च दरिद्रान् व्याधिकर्शितान् ।
विमोचयन्ति ये जन्तून् ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१०

जो दयालु पुरुष भयार्त्त, शोकसन्तप्त, दरिद्र एवं व्याधिग्रस्त लोगों को भय से, शोक से, दारिद्र्य एवं रोग से मुक्त कर देते हैं वे स्वर्गगामी होते हैं।

श्लेष्ममूत्रपुरीषाणां व्याधितस्याजुगुप्सकः ।
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥
मृतस्य वाऽप्यनाथस्य न जुगुप्सन्ति ये नराः ।
कुर्वन्ति चैव संस्कारान् ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११

जो लोग किसी रोगी के थूक-खँखार, मूत्र तथा पुरीष से घृणा नहीं करते हैं और उसकी सेवा करते हैं वे बहुत बड़ा यज्ञ करने का फल प्राप्त करते हैं।

जो लोग मरे हुए अनाथ व्यक्ति से घृणा नहीं करते हैं और उसके सभी संस्कार करते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।

---

९. महाभारत अनुशासनपर्व ।

१०. महाभारत अनुशासनपर्व २३.३० ।

११. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.२९२.९-१० ।

मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ।
न्यूनाङ्गांश्चाधनांश्चैव नोपहासेन दूषयेत् ॥१२

जो लोग मूर्ख हों, उन्मत्त हों, किसी प्रकार के व्यसनी हों, विरूप हों, जिनका कोई अङ्ग कम हो या अधिक हो तथा जो निर्धन हों उनका उपहास नहीं करना चाहिए।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ।
रूपद्रविणहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥१३

जो हीनाङ्ग हों, अधिकाङ्ग हों, विद्याहीन हों, बहुत वूढ़े हों, रूप एवं धन से रहित हों तथा जिनकी जाति छोटी हो उन पर इन न्यूनताओं के कारण आक्षेप या उपहास नहीं करना चाहिए।

मूकान्धबधिरव्यङ्गा नोपहास्याः कथञ्चन ।१४

गूँगे, अन्धे, बहरे तथा विकलाङ्ग लोगों का किसी प्रकार उपहास नहीं करना चाहिए।

१२. ब्रह्मपुराण २२१.४५-४६।

१३. मनुस्मृति ४.१४१।

१४. शुक्रनीति २।

१६. यात्रियों के प्रति व्यवहार

पान्थानां हि दया कार्या कर्मणा येन केनचित् ।
कृपास्थानं परं पान्थः स्वगृहाद् यो विनिस्सृतः ॥[1]

जिस किसी भी कर्म से पथिकों पर दया करनी चाहिए। क्योंकि जो व्यक्ति घर से निकल पड़ता है वह कृपा का सर्वोत्तम पात्र होता है।

लिङ्गी वाऽप्यथवा वर्णी पान्थं प्रति विचक्षणैः ।
उपेक्षा नैव कर्तव्या पान्थाः पूज्यास्तु सर्वशः ॥[2]

पथिक साधु-संन्यासी हों या गृहस्थ, किसी की भी उपेक्षा न कर सब प्रकार से उनकी सेवा करनी चाहिए।

पान्थं परिचरेद् यस्तु शयनासनभोजनैः ।
स स्वल्पेन प्रयासेन जयति क्रतुयाजिनः ॥
प्रतिश्रयं सुनिर्वातं शुचि भूमितलं शुभम् ।
अध्वनीनाय सम्पाद्य सद्यो दहति पातकम् ॥
वर्षास्वग्रुष्मलतमे हेमन्ते शिशिरेषु च ।
ग्रीष्मे च शीतलतले पान्थं विश्राम्य नाकभाक् ॥[3]

शयन आसन तथा भोजन के द्वारा यात्रियों की सेवा करनी चाहिए। ऐसा जो करता है वह थोड़े ही प्रयास से यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है।

यात्रियों के ठहरने के लिए सुन्दर, हवादार, साफ-सुथरा एवं पवित्र

१-२. विष्णुधर्मोत्तरपुराण २९८.२८-२९ ।

३-६. हेमाद्रि, दानखण्ड ।

विश्रामगृह बनवा देना चाहिए। जो ऐसा करता है वह तत्काल निष्पाप हो जाता है।

यात्रियों को वर्षा, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में गर्म मकान में तथा ग्रीष्म ऋतु में ठण्ढे मकान में ठहराना चाहिए। जो व्यक्ति यात्रियों को इस प्रकार सुख देता है वह स्वर्गगामी होता है।

दत्वा वासो विवस्त्राय रोगिणे रुक् प्रतिक्रियाम्।
तृषार्ताय जलं स्वादु मृष्टमन्नं बुभुक्षवे॥
पथिकाय यथावित्तं सर्वं तरति दुष्कृतम्॥४

जो पथिक वस्त्रहीन हो उसे वस्त्र, जो रोगी हो उसे औषध, जो प्यासा हो उसे मीठा पानी तथा जो भूखा हो उसे सुन्दर अन्न जो अपनी शक्ति के अनुसार देता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

अध्वन्यमनुमान्यापि शाकमूलफलैर्जलैः।
सकृत् सत्कृत्य वाचापि श्रेयसो भाजनं भवेत्॥५

जो शाक, मूल, फल, जल तथा एक बार केवल वाणी द्वारा भी पथिक का सत्कार कर देता है वह कल्याण का भागी होता है।

अध्वगानां सुखार्थाय मार्गसंस्कारकारिणः।
अगाधजलसञ्चारे तेषां नौकाधिकारिणः॥
प्रपामपां रसैर्दिव्यैः पूर्णां पथिकहेतवे।
ये कुर्वन्ति नरा राजन् ते नराः स्वर्गभागिनः॥६

यात्रियों के सुख और सुविधा के लिए टूटे-फूटे सड़कों का मरम्मत करा देना चाहिए।

अगाध जल वाले नदी-नाले आदि को पार करने के लिए नाव का प्रबन्ध करा देना चाहिए,

रास्ते में स्थान-स्थान पर दिव्य और निर्मल जल से पूर्ण प्रपा (प्याऊ) तथा वापी, कूप, तड़ाग आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।

इस प्रकार यात्रियों के लिए सुख-सुविधा की व्यवस्था करने वाले मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

जलप्रतरणे सेतुं यः करोति नरोत्तमः ।
स तीर्णः सर्वदुःखेभ्यो नाकलोकं प्रपद्यते ॥७

जो व्यक्ति यात्रियों की सुविधा के लिए नदी या सड़क पर सेतु (पुल) बनवाता है वह सब दुःखों से निवृत्त होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

शर्करा-लोष्ट्र-पाषाण-कण्टकानि तथा नरः ।
मार्गादपास्य यत्नेन गोदानफलमाप्नुयात् ॥८

यदि रास्ते पर कंकड़, ढेला-मिट्टी, पत्थर तथा कांटा आदि पड़ा हो तो उसे भलीभाँति रास्ते से हटा देना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह गोदान करने का फल पाता है।

प्रतिश्रयं सुविस्तीर्णं सदन्नं सुजलान्वितम् ।
दीनानाथजनार्थाय कारयित्वा गृहं शुभम् ॥
निवेदयेत् पथिस्थेभ्यः शुभद्वारं मनोहरम् ॥९

दीन-दुखी तथा अनाथ पथिकों के आराम के लिए मार्ग में ऐसा विश्रामगृह बनवाना चाहिए जो खूब विस्तीर्ण हो, सुन्दर अन्न-जल से परिपूर्ण हो, जिसका द्वार सुन्दर हो तथा जो यात्रियों के लिए मनोरम हो।

७-८. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३२९८.३.१६।

९-११. अग्निपुराण अ० २११.१८.४७।

गृहं मठं सभां स्वर्गी दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम् ।
दत्त्वा कृत्वा गोगृहश्च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥१०

जो व्यक्ति यात्रियों के लिए मार्ग में मकान, मठ, धर्मशाला, सभागृह तथा गौओं के लिए गोशाला बनवाता है वह निष्पाप होकर स्वर्गगामी होता है।

पानीयं च प्रपां दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
अग्निं काष्ठं च मार्गादौ दत्त्वा दीप्त्यादिमाप्नुयात् ॥११

जो व्यक्ति गर्मी के समय मार्ग में पथिकों के लिए पानी तथा प्याऊ का और जाड़े के समय में अग्नि और काठ का प्रबन्ध करता है वह भुक्ति, मुक्ति एवं दीप्ति को प्राप्त करता है।

१७. शत्रुओं के प्रति व्यवहार

कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ।
रिपवो येन जायन्ते कारणं तत् परित्यजेत् ।१

मित्र और शत्रु किसी न किसी कारण से ही होते हैं। अतः जिन कारणों से अर्थात् अपने जिन आचरणों तथा व्यवहारों से लोग शत्रु हो जाते हैं उन कारणों का परित्याग कर देना चाहिए। फिर भी किसी कार्यकारणवश यदि किसी से शत्रुता हो जाय तो उसके साथ भी निम्नलिखित शिष्ट व्यवहार करना चाहिए।

संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ।२

सभा में शत्रु की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

नासौ मे सपत्न इति ब्रूयात् ।३

शत्रु को "यह मेरा शत्रु है" ऐसा समाज में नहीं कहना चाहिए।

दीनो रिपुरप्यनुग्राह्यः ।४

यदि शत्रु भी दीन-हीन अवस्था में हो तो उस पर भी अनुग्रह करना चाहिए।

शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ।५

---

१. कामन्दकीयनीतिसार ८.५२।

२. चाणक्यसूत्र अ० ४.५६।

३. आपस्तम्बधर्मसूत्र प्रश्न १ पटल ११।

४. उपदेशशतकम् २६।

५. चाणक्यनीति ५.१२।

शत्रु में भी यदि अच्छा गुण हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए।

अमित्रादपि सद्वृत्तम् ।[६]

शत्रु से भी अच्छी बातें, अच्छे गुण सीखने चाहिए।

शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ।[७]

शत्रु की भी जीविका नष्ट नहीं करनी चाहिए।

शत्रोरपि सुतः सखा रक्षणीयः ।[८]

शत्रु का भी पुत्र यदि मित्रवद् व्यवहार रक्खे तो उसकी भी रक्षा करनी चाहिए।

शत्रुणाऽपि सूक्तमुक्तं न दूषयितव्यम् ।[९]

यदि शत्रु और विरोधी व्यक्ति भी कोई अच्छी बात कहे तो उसे दोषदृष्टि से नहीं देखना चाहिए। उसे भी स्वीकार करना चाहिए।

द्विषतामपि ये दोषान् न वदन्ति कदाचन ।
कीर्तयन्ति गुणानेव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥[१०]

जो लोग शत्रुओं का भी कभी दोष नहीं कहते प्रत्युत उनके गुणों का ही वर्णन करते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।

रिपुष्वपि हितेच्छा ये ते नराः स्वर्गगामिनः ।[११]

शत्रुओं का भी जो लोग हित चाहते हैं वे लोग स्वर्गगामी होते हैं।

●

---

६. मनुस्मृति २.२३९।

७. चाणक्यनीतिसूत्राणि ६.८०।

८. „ „ ३.३६।

९. नीतिवाक्यामृतम् २६.१३।

१०-११ महाभारत अनुशासनपर्व २३.३५-४०।

१८. याचकों तथा प्रार्थियों के प्रति व्यवहार

याचकाद्यैः प्रार्थितः सन् न तीक्ष्णं चोत्तरं वदेत् ।[१]

यदि कोई याचक या प्रार्थी किसी बात या वस्तु के लिए याचना या प्रार्थना करें तो उन्हें कठोर उत्तर नहीं देना चाहिए ।

तत्कार्यं तु समर्थश्चेत् कुर्याद्वा कारयीत वा ।[२]

यदि सामर्थ्य हो तो प्रार्थी के काम को स्वयं कर देना चाहिए और स्वयं करने का समर्थ्य न हो तो किसी अन्य समर्थ व्यक्ति से करा देना चाहिए ।

न अर्थिषु अवज्ञा कार्या ।[३]

प्रार्थियों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए । उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए तथा बातें सुननी चाहिए ।

विमुखान् नार्थिनः कुर्यात् नावमन्येत नाक्षिपेत् ।[४]

प्रार्थियों को यथासम्भव विमुख नहीं करना चाहिए, उनका अपमान नहीं करना चाहिए तथा उन पर आक्षेप या दोषारोपण नहीं करना चाहिए ।

१-२. शुक्रनीति ३.१०९ ।

३. चाणक्यसूत्र ६.६७ ।

४. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्र० २.२५ ।

१६. पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तथा तृण-लता आदि के प्रति व्यवहार

मृगोष्ट्रखरमर्काखु-सरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥[१]

मृग, ऊँट, गदहा, वानर, चूहा, सरीसृप्, पक्षी एवं मक्खी इन सबको अपने पुत्र के समान ही मानना चाहिए क्योंकि पुत्रों से इनमें अन्तर ही कितना है ?

आत्मवत् सततं पश्येदपि कीट-पिपीलकम् ।[२]

कीड़े-मकोड़ों को भी अपने पुत्र के समान समझना चाहिए।

वृद्ध-बाल-व्याधित-क्षीणान् पशून् बान्धवानिव
पोषयेत् ।[३]

बूढ़े, बालक, रोगी एवं दुर्बल पशुओं को अपने बन्धुओं के समान पालन-पोषण करना चाहिए।

अतिभारो महान् मार्गश्च पशूनामकाले मरणकारणम् ।[४]

बहुत भारी बोझा तथा लम्बा मार्ग पशुओं के अकालमरण का कारण होता है। अतः पशुओं की शक्ति का ध्यान रखते हुए उनसे काम लेना चाहिए।

---

१. श्रीमद्भागवत ७.१४.९ ।

२. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्र० २.२४ ।

३. नीतिवाक्यामृतम् ८.९ ।

४. ,, ,, ८.१० ।

न वाह्यैः अयुक्तैः अपीतपानीयैः पिवेत् ।[५]

सवारी जानवर घोड़े-बैल आदि जब तक सवारों से छुंड़ा न दिये जायँ तथा उन्हें पानी न पिला दिया जाय तब तक सवार को स्वयं पानी नहीं पीना चाहिए ।❀

न ग्रासमदत्त्वा अश्नीयात् ।[६]

विना उहें भोजन दिये स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए ।

मृदुवच्छायायां पानाहारादीन् दद्यात् ।[७]

मधुर छाया में पशुओं को पानी पिलाना चाहिए तथा आहार देना चाहिए ।

न अतीर्थेन विषमेन अल्पोदके च अवतारयेत् ।[८]

यदि पशुओं को नहवाने या पानी पिलाने के लिए तालाब या नदी

५-८. शंखलिखित ।

❀वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि वनवास के समय निषादराज गुह के यहाँ पहुंचने पर जब उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का स्वागत करते हुए उनसे भोजन-पान करने के लिए निवेदन किया तो श्रीरामचन्द्रजी ने कुछ विशेष नियमों में रहने के कारण उसे स्वीकार करने में असमर्थता प्रगट करते हुए अपने रथ के घोड़ों को ही खिलाने-पिलाने का अनुरोध किया और उसी को अपना सत्कार बतलाया। वहाँ के श्लोक इस प्रकार हैं—

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित् ।
एतावताऽत्रभवता भविष्यामि सुपूजितः ॥
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे ।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥

—अयोध्याकाण्ड ५०.४५-४६

में उतारना हो तो बिना घाट के रास्ते या विषम रास्ते से नहीं उतारना चाहिए तथा जहाँ पानी कम हो वहाँ भी नहीं उतारना चाहिए।

बाल-वृद्ध-रोगार्ताः शान्त उपासीत।[९]

गाय-बैल आदि यदि बाल, वृद्ध या रोग से पीड़ित हों तो शान्ति से उनकी सेवा करनी चाहिए।

शक्तितः प्रतीकारं च कुर्यात्।[१०]

शक्ति के अनुसार उनके कष्ट का प्रतीकार भी करना चाहिए।

यष्टि-मुष्टि-लोष्टारत्नि-जानु-योक्त्रैः द्रावणाक्रोशनप्रभृतिभिर्न उपहन्यात्।[११]

लाठी, मुक्का, ढेला, अरत्नि, ठेहुन तथा रस्सी से उन्हें नहीं मारना चाहिए तथा उन्हें दौड़ा कर तथा गाली देकर भी कष्ट नहीं देना चाहिए।

पशूनाञ्च मृगाणाञ्च पक्षिणाञ्च तथा द्विजाः।
तृण-द्रुम-लतानाञ्च त्राणाद् भवति नाकभाक्॥[१२]

जो मनुष्य पशु, मृग, पक्षी तथा तृण, वृक्ष एवं लताओं की रक्षा एवं पालन-पोषण करता है वह स्वर्ग का भागी होता है।

कीटे पतङ्गे च पशौ दया कार्या तथा मृगे।
वर्णोत्तमे वर्णहीने पतिते वर्णसङ्करे॥
सर्वत्रैव दया कार्या सर्वकामफलप्रदा॥[१३]

९-१०-११. शंखलिखित।

१२-१३. विष्णुधर्मोत्तरपुराण २९२.५-६।

कीट, पतङ्ग, पशु एवं मृगों पर दया करनी चाहिए तथा मनुष्यों में चाहे कोई उत्तम वर्ण का हो, हीन वर्ण का हो, पतित हो अथवा वर्णसंकर हो सब पर दया करनी चाहिए।

दयान्विता विराजन्ते नाकमासाद्य मानवाः।
तस्माद् दयावता भाव्यं तृणेष्वपि विपश्चिता।
तृणान्यपि सजीवानि तेषां कुर्यान्न पीडनम्॥[१४]

जो मनुष्य दयालु होते हैं वे स्वर्ग में विराजते हैं अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को तृणों पर भी दया करनी चाहिए। तृणों में भी जीव होता है अतः उहें भी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए।

नीहारात् चण्डवाताच्च धूमाद् वैश्वानरात् तथा।
जालकारात् प्रयत्नेन रक्षणीयाः क्षमारुहाः॥[१५]

पाला से, आँधी से, धूआँ से, आग से तथा जाल बनाने वाले कीट-पतङ्गों से वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए।

---

१४. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.२९२.४।

१५. उपवनविनोद १७७।

२०. मानव तथा प्राणिमात्र के प्रति व्यवहार

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु विगतावरणैव धीः ॥[१]

"यह हमारा बन्धु है और यह नहीं है" ऐसा विचार क्षुद्र हृदय वाले लोगों का होता है। परन्तु जो लोग उदार हृदय के होते हैं उनकी बुद्धि और विचार के ऊपर ऐसा आवरण (पर्दा) नहीं होता है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥[२]

"यह अपना है और यह पराया" ऐसा विचार क्षुद्र हृदय वाले लोग किया करते हैं। परन्तु जो लोग उदार हृदय के होते हैं उनके लिए सारा संसार ही अपना परिवार होता है।

तथा च सर्वभूतेभ्यो वर्तितव्यं यथात्मनि ।[३]

समस्त प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए और तदनुसार ही सबके साथ हितकर एवं सुखकर व्यवहार करना चाहिए।

वात्सल्यात् सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः ।[४]

---

१. योगवाशिष्ठ ५.१८.६१ ।

२. हितोपदेश १.७० ।

३. महाभारत शान्ति० १६८.९ ।

४. महाभारत शान्ति० १९१.१३ ।

समस्त प्राणियों के साथ स्नेहपूर्वक मधुर वचन का व्यवहार करना चाहिए।

सर्वप्राणभृतां शर्म आशासितव्यम्, अहरह उत्तिष्ठिता च उपविशता च।[५]

प्रतिदिन उठते और बैठते समय समस्त प्राणियों के लिए मङ्गलकामना करनी चाहिए। (विश्वमङ्गलकामना के श्लोक परिशिष्ट में देखिये)।

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।[६]

जो काम अपनी आत्मा को प्रतिकूल मालूम पड़े उसे दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए।

यदन्यैर्विहितं नेच्छेद् आत्मनः कर्म पूरुषः।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन् अप्रियमात्मनः॥[७]

दूसरों के जिस कर्म, आचरण एवं व्यवहार को मनुष्य अपने लिये अप्रिय समझता है उस कर्म, आचरण एवं व्यवहार को दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिए।

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद् बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥[८]

समस्त प्राणियों में जीवात्मा के रूप में भगवान् ही प्रविष्ट हैं ऐसा समझ कर सबका सम्मान करते हुए मन से समस्त प्राणियों को प्रणाम करना चाहिए।

---

५. चरकसंहिता विमानस्थान अ० ८।

६. महाभारत अनुशासन० ११३.८।

७. ,, शान्ति० २६५।

८. श्रीमद्भागवत ३.२९.३४।

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयेद् दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥९

मैं समस्त प्राणियों में जीवात्मा के रूप में निवास करता हूँ। अतः मेरी पूजा करने की दृष्टि से इन्हीं प्राणियों का दान, सम्मान, मैत्री तथा समान स्नेहमय दृष्टि के द्वारा आदर-सत्कार करना चाहिए।

यथाऽत्मनि च पुत्रेषु सर्वभूतेषु यस्तथा ।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम् ॥१०

जो व्यक्ति अपने तथा अपने पुत्र के समान ही समस्त प्राणियों की हितकामना करता है वह भगवान् को सहज में ही सदा सन्तुष्ट रखता है।

कूटेन व्यवहारं तु वृत्तिलोपं च कस्यचित् ।
न कुर्यात्, चिन्तयेत् कस्य मनसाऽप्यहितं न तु ॥११

किसी के साथ छल-कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए।
किसी की जीविका का उच्छेद नहीं करना चाहिए, तथा—
मन से भी किसी का अहित तथा कुछ भी हानि करने की बात नहीं सोचनी चाहिए।

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत् ॥१२

विद्वान् जन समस्त प्राणियों के मन को ही धर्म का मुख्य आधार मानते हैं। अतः मन से भी समस्त प्राणियों का हित करना चाहिए।

---

९. श्रीमद्भागवत ३.२९.२७। (भगवान् की उक्ति)

१०. विष्णुपुराण ३.८.१८।

११. शुक्रनीति ३.१५७-१५८।

१२. महाभारत शान्ति० १९३.३१।

सर्वभूतपरीवादाक्रोशांश्च (वर्जयेत्) ।१३

किसी भी प्राणी की निन्दा तथा उसके प्रति आक्रोश तथा अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

देशजातिकुलादीनाम् आक्रोशं न्यङ्गसंयुतम् ।
यद् वचः प्रतिकूलार्थं वाक्यारुष्यं तदुच्यते ।।१४

किसी भी देश, जाति तथा कुल के किसी व्यक्ति के प्रति उस देश, जाति तथा कुल के सम्बन्ध में यदि आक्रोश अर्थात् निन्दा-आक्षेपयुक्त तथा न्यङ्ग अर्थात् अश्लील वचन बोला जाय, जो सुनने वाले को अप्रिय एवं उद्वेगजनक मालूम पड़े, तो वह वाक्यारुष्य नाम का अपराध माना जाता है और इस अपराध का कर्ता दण्डनीय माना जाता है।

अतः किसी भी देश, जाति तथा कुल का नाम लेकर उसके प्रति निन्दा, आक्षेप, शिकायत तथा गाली आदि अनुचित एवं अप्रिय वचनों का प्रयोग बिलकुल नहीं करना चाहिए ।

इसी प्रकार किसी विद्या, शिल्प एवं कला आदि के विषय में भी आक्षेप, निन्दा एवं दुर्वचन का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।१५

यद् यदात्मनि चेच्छेत तत् परस्यापि चिन्तयेत् ।१६

सुख, सुविधा एवं सम्मान आदि जिन-जिन वस्तुओं की मनुष्य अपने लिए इच्छा करता है उन-उन वस्तुओं की दूसरों के लिए भी इच्छा करनी चाहिए ।

●

---

१३. आपस्तम्बधर्मसूत्र २.२.१२ ।

१४. नारदीयमनुस्मृति, वाग्दण्डपारुष्य प्रकरण १ ।

१५. याज्ञवल्क्यस्मृति, वाक्यारुष्य प्रकरण में मिताक्षरा ।

१६. महाभारत शान्ति० १९३.१२४ ।

२१. मार्ग, कूपादि जलाशय, वृक्ष-उद्यान एवं देवालय आदि सार्वजनिक वस्तुओं के प्रति व्यवहार

न पन्थानम् अवमूत्रयेत् ।[१]

रास्ते पर पेशाब नहीं करना चाहिए ।

न पथि शिलां मूत्रपुरीषं च समुत्सृजेत् ।[२]

रास्ते पर कंकड़-पत्थर तथा पेशाब-पैखाना आदि नहीं फेंकना चाहिए । इसी प्रकार कूड़ा-करकट, गन्दा पानी तथा किसी फल का छिलका आदि भी नहीं फेंकना चाहिए ।

क्षुते निष्ठीवितेऽध्वनि ।
आलभेद् दक्षिणं कर्णं सर्वभूतानि क्षामयेत् ॥[३]

रास्ते पर सब जगह थूक-खँखार नहीं फेकना चाहिए । यदि ऐसा हो जाय तो समस्त प्राणियों से क्षमा माँगते हुए दाहिने कान का स्पर्श कर लेना चाहिए ।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥[४]

---

१. चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ८ ।

२. हारीतस्मृति ।

३. स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड, कौमारी खण्ड अ० ४१.१६३ ।

४. मनुस्मृति अ० ४.५६ ।

कूआँ, बावड़ी, तालाब आदि के पानी में पेशाब, पैखाना, थूक-खँखार, खून, विष और विषैले पदार्थ तथा कोई भी अपवित्र, गन्दी तथा जल दूषित करने वाली वस्तु नहीं फेंकनी चाहिए।

तुष-केश-पुरीष-भस्मास्थि-श्लेष्म-नख-लोमानि अप्सु न क्षिपेत्।[५]

भूसा-भूसी, केश, विष्ठा, राख, हड्डी, थूक-खँखार, नख तथा रोम आदि पानी में नहीं फेंकना चाहिए।

फलपुष्पद्रुमाणां च ओषधीनां च हिंसनम्॥
वापीकूपतडाकानां ध्वंसनं ग्रामघातनम्।
अभिचारादिकं कर्म सस्यध्वंसनमेव च॥
उद्यामारामहननं प्रपाविध्वंसनं तथा।
. . . . विज्ञेयमनुपातकम्॥[६]

फल और फूल वाले वृक्षों का काटना, तोड़ना या किसी प्रकार हानि पहुँचाना, औषधि के काम में आने वाले वृक्षों, लताओं तथा वनस्पतियों को किसी प्रकार नष्ट करना,

बावड़ी, कूआँ तथा तालाब आदि जलाशयों को नष्ट-भ्रष्ट करना,

गाँवों को बर्बाद करना या किसी प्रकार की हानि पहुँचाना,

मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना आदि कार्यों द्वारा जनता को कष्ट पहुँचाना,

खेतों की फ़सल नष्ट करना,

फुलवाड़ी तथा बाग-बगीचे आदि का विध्वंस करना, तथा—

---

५. शंखलिखित सूत्रसंख्या ८७।

६. वृद्धहारीत स्मृति अ० ९.१९६-१९८-२०२।

प्रपा अर्थात् मनुष्यों तथा पशु-पक्षिओं के पानी पीने के स्थानों को बिगाड़ना या उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना,

ये सब सार्वजनिक वस्तुओं को हानि पहुँचाने वाले काम अनुपातक माने गये हैं अतः इन्हें कभी नहीं करना चाहिए।

यान्त्यायान्ति जना येन पशवश्चानिवारिताः।
तदुच्यते संसरणं न रोद्धव्यं तु केनचित्॥७

जिस रास्ते से बेरोक-टोक मनुष्य और पशु आते-जाते हों उस रास्ते को संसरण अर्थात् "आम सड़क" कहते हैं। ऐसी सड़क को–सर्वसाधारण के आने-जाने के मार्ग को, किसी व्यक्ति को, नहीं रोकना चाहिए।

अवस्करस्थल-श्वभ्र-भ्रम-स्यन्दनिकादिभिः।
चतुष्पथ-सुरस्थान-राजमार्गान् न रोधयेत्॥८

कूड़ा रखने का स्थान बना कर, गड्ढा खोद कर, पनाला बना कर तथा छत से पानी चूने की मोरी बना कर चौराहा, देवस्थान तथा राजमार्ग पर आने-जाने में बाधा नहीं उपस्थित करनी चाहिए।

यस्तत्र संकरं श्वभ्रं वृक्षारोपणमेव च।
कामात् पुरीषं कुर्याच्च तस्य दण्डस्तु माषकः॥९

जो मनुष्य रास्ते पर कूड़ा-करकट रक्खे, गड्ढा खोदे, पेड़ लगावे तथा जान-बूझ कर पैखाना करे उसके लिए एक मास सुवर्ण के दण्ड का विधान है। अतः चौराहा, देवमन्दिर तथा सार्वजनिक मार्ग पर इस प्रकार के जनहितविरोधी कार्यों को नहीं करना चाहिए।

---

७. वृहस्पतिः।

८. नारदः।

९. वृहस्पतिः।

काष्ठैर्वा शंकुभिर्वापि कण्टकैरुपलैस्तथा ।

पन्थानं येऽवरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥[१०]

जो लोग काठों से, कीलों से, कण्टकों से तथा ईंट-पत्थर से रास्ते को रोक देते हैं वे नरकगामी होते हैं।

ये शरीरमलान्यग्नौ प्रक्षिपन्ति जले तथा ।

उद्यानेष्वपि गोष्ठे वा ते वै निरयगामिनः ॥[११]

जो लोग शरीर के मल को, विष्ठा एवं मूत्र को आग में, पानी में, बाग-बगीचों में तथा गोशाला में फेंकते हैं वे नरकगामी होते हैं।

कुछ अपराधों के लिए दण्डविधान :

पांशुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ।[१२]

जो व्यक्ति गलियों एवं सड़कों में कूड़ा-करकट डालता हुआ पाया जाय उस पर पण का आठवाँ भाग दण्ड होना चाहिए।

पङ्कोदकसन्निरोधे पादः ।[१३]

जो व्यक्ति पानी अथवा कीचड़ से गलियों को गन्दा करता है उस पर पण का चौथाई भाग दण्ड होना चाहिए।

राजमार्गे द्विगुणः ।[१४]

राजमार्ग को गन्दा करने वाले व्यक्ति पर आधा पण दण्ड होना चाहिए।

पुण्यस्थानोदकस्थान-देवगृह-राजपरिगृहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः ।[१५]

१०-११. महाभारत अनुशासन० २३.११-२० ।

१२-१९. कौटलीय अर्थशास्त्र अधि० २, अ० ३६ ।

धर्मशाला, तीर्थ आदि पवित्र स्थान, जल स्थान, देवालय और राजकीय कार्यालयों के पास जो व्यक्ति मलोत्सर्ग कर दे उस पर क्रमशः एक-एक पण बढ़ाते हुए दण्ड होना चाहिए।

मूत्रेष्वर्धदण्डाः ।१६

इन स्थानों के समीप मूत्र करने पर इसका आधा दण्ड निर्धारित किया गया है।

भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्ड्याः ।१७

औषध, रोग अथवा भय आदि के कारण इन स्थानों पर किसी व्यक्ति का मल अथवा मूत्र निकल पड़े तो ऐसे व्यक्ति को दण्ड नहीं देना चाहिए।

मार्जार-श्व-नकुल-सर्प-प्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ।१८

नगर के भीतर मरी बिल्ली, कुत्ता, न्यौला और साँप के डालने वाले व्यक्ति पर तीन पण दण्ड निर्धारित किया गया है।

खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः ।१९

मरे हुए गधा, ऊँट, खच्चर, घोड़े आदि पशुओं को कोई डाल देता है तो उस पर छः पण दण्ड निर्धारित किया गया है।

कौटिल्य के उपर्युक्त विधान के अनुसार यदि दण्ड न भी दिया जाय तब भी सभ्यता एवं अन्य लोगों की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक नागरिक को उपर्युक्त दोषों से बचना चाहिए।

परिशिष्ट

१. प्रातःस्मरण तथा सुप्रभातं स्तोत्रपाठ

(पृष्ठसंख्या १०, श्लोकसंख्या ४ के सन्दर्भ में)

गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहाम्बया ।
श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।।
इन्द्रादीन् सकलान् देवान् वसिष्ठादीन् मुनीनपि ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान् गिरीन् ।।
क्षीरोदादीन् समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ।
वनानि नन्दनादीनि धेनूः कामदुघादयः ।।
कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून् काञ्चनमुख्यतः ।
दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान् हरेः प्रियान् ।।
जननीचरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ।
पितरं च गुरूंश्चापि हृदि ध्यायेत् प्रसन्नधीः ।।[1]

प्रातःकाल जगने के बाद प्रसन्नचित्त हो सर्वप्रथम गणेशजी का स्मरण करना चाहिए। तत्पश्चात् माता पार्वती के साथ शङ्करजी का, लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान् का, कमलोद्भव ब्रह्माजी का, इन्द्र आदि सकल देवों का, वसिष्ठ आदि मुनियों का, गङ्गा आदि समस्त नदियों का, श्रीशैल आदि समस्त पर्वतों का, क्षीरसमुद्र आदि समस्त समुद्रों का, मानस आदि समस्त सरोवरों का, नन्दन आदि समस्त वनों का,

१. स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड ५.३२-३६ ।

कामधेनु आदि समस्त धेनुओं का, कल्पवृक्ष आदि समस्त वृक्षों का, सुवर्ण आदि समस्त धातुओं का, उर्वशी आदि सकल दिव्य स्त्रियों का तथा प्रह्लाद आदि भगवान् के प्रिय भक्तों का स्मरण करना चाहिए।

इसके पश्चात् समस्त तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ माता के चरणों का, पिता का तथा गुरुजनों का स्मरण करना चाहिए।

संस्कृत के स्तोत्रग्रन्थों में विभिन्न देवताओं के प्रातःस्मरण के सरस, ललित एवं गेय अनेक स्तोत्र छपे हुए हैं। उनमें से अपनी रुचि एवं श्रद्धा के अनुसार कुछ श्लोक चुन कर उनसे अपने इष्टदेव का प्रातःस्मरण करना चाहिए।

प्रातः स्मरण के स्तोत्रों के अतिरिक्त संस्कृत में विभिन्न देवो-देवताओं के नाम से "सुप्रभातम्" नामक स्तोत्र भी अनेक लिखे गये हैं और छपे हुए हैं। अपनी रुचि के अनुसार इन स्तोत्रों का भी प्रातः पाठ करना उत्तम है। इन स्तोत्रों के रेकार्ड भी बन गये हैं। जो व्यक्ति चाहें वे इन्हे प्रातः व्यक्तिगत रूप से अपने घर में तथा सार्वजनिक रूप से किसी मन्दिर में बजाने की व्यवस्था करें तो इनका व्यापक प्रचार हो सकता है और वातावरण भी पवित्र बन सकता है।

ऐसे कुछ सुप्रभातं स्तोत्रों की सूची निम्नलिखित है—

श्रीवेंकटेशसुप्रभातम्, श्रीकामाक्षीसुप्रभातम्, श्रीराघवेन्द्र-सुप्रभातम्, श्रीभुवनेश्वरीसुप्रभातम्, श्रीकाशीविश्वनाथ-सुप्रभातम्—इत्यादि।

संस्कृत स्तोत्रों के अन्य रेकार्डों के सम्बन्ध में, सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी के द्वारा प्रकाशित रेकार्डों की सूची मँगाकर, विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

●

२. गङ्गादि नदियों तथा तीर्थों का स्मरण

(पृष्ठसंख्या १६, श्लोकसंख्या ३२ के सन्दर्भ में)

कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं नैमिषं तथा ।
तीर्थान्येतानि सर्वाणि स्नानकाले स्मरेद् बुधः ॥[1]

स्नान के समय कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, प्रभास क्षेत्र तथा नैमिषारण्य इन समस्त तीर्थों का स्मरण करना चाहिए ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥[2]

हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु एवं कावेरी ! तुम सभी नदियाँ इस जल में सम्मिलित होवो ।

इस श्लोक से स्नान करते समय समस्त नदियों का स्मरण तथा आवाहन कर लेना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त स्नान करते समय गंगालहरी, गंगास्तवः, गंगा-स्तोत्रम्, अमृतलहरी (यमुनास्तोत्र), यमुनाष्टकम्, नर्मदाष्टकम् तथा सरस्वष्टकम् आदि स्तोत्रों का भी यथासम्भव पाठ करना चाहिए ।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥[3]

इस मन्त्र से भी इन मन्त्रोक्त नदियों का स्नान जल में आवाहन कर लेना चाहिए ।

१-२. स्मृतिमुक्ताफल, स्नानप्रकरण ।

३. ऋग्वेद १०.७५.५ ।

३. अशक्त अवस्था में स्नान के मन्त्र

(पृष्ठसंख्या १८, श्लोकसंख्या ३८ के सन्दर्भ में)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥२
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥३

हे जल, तुम सुखकारी एवं स्वास्थ्यकारी हो। तुम हमें शक्ति प्रदान करो जिससे हम महान् बल एवं प्रकाश प्राप्त कर सकें।

हे जल, तुम स्नेहमयी माता के समान अपने अधिक से अधिक सुखकारी रस का आस्वादन कराओ।

हे जल, हम उस जीवन के लिए तुम्हारे समीप आते हैं, जिसके लिए तुमने हमें बनाया है। तुम हमें प्रजननशील बनाओ।

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥४

जिस प्रकार वृक्ष से पत्र पुष्प आदि अलग होते हैं, जिस प्रकार स्वेदयुक्त मनुष्य स्नान करने पर मल से मुक्त हो जाता है और जिस प्रकार घी शोधक वस्तु से शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है उसी प्रकार जल मुझे पाप से मुक्त कर पवित्र करें।

१-२-३. शुक्लयजुर्वेद ११.५०-५२।

४. शुक्लयजुर्वेद २०.२०।

४. विश्वमङ्गलकामना के उद्गार

(पृष्ठसंख्या २८१, श्लोकसंख्या ५ के सन्दर्भ में)

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य, खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥[1]

संसार का कल्याण हो, दुर्जन लोग सज्जन बनें, सभी प्राणी परस्पर एक दूसरे का हितचिन्तन करें, सबके मन में अच्छे विचार उत्पन्न हों तथा भगवान् में हम सब लोगों की अहैतुकी भक्ति हो।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥[2]

सब लोग सुखी हों, सब लोग नीरोग रहें, सबका कल्याण हो तथा कोई भी दुखी न रहे।

शिवमस्तु सर्वजगतः
परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं
सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥[3]

समस्त जगत् का कल्याण हो, समस्त प्राणी दूसरों के हितसाधन में लगे रहें, सभी दोष-दुर्गुण समाप्त हों और संसार में सब लोग सुखी रहें।

---

१. श्रीमद्भागवत ५.१८.९।

२. सुभाषितसंग्रह ।

३. मालतीमाधवनाटक (भरतवाक्य)।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ।।४

सब लोग कठिनाइयों को पार करें, सब लोगों का कल्याण हो, सबकी अभिलाषाएँ पूर्ण हों तथा सब लोग सर्वत्र आनन्द से रहें ।

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ।।५

जिनको पुत्र नहीं है उन्हें पुत्र हो और जिन्हें पुत्र हो गया हो उन्हें पौत्र हो। जो निर्धन हैं वे धनवान् हो जायँ और सब लोग शतायु हों—सौ वर्ष तक जीवें ।

राजा शिवि की विश्वमङ्गलकामना :

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।६

न तो मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष चाहता हूँ। मैं केवल दुःख से पीड़ित प्राणियों की पीड़ा का विनाश चाहता हूँ। अर्थात् समस्त दुखी प्राणियों को सुखी देखना चाहता हूँ।

राजा रन्तिदेव की विश्वमङ्गलकामना :

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम् अष्टर्धियुक्ताम् अपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजाम् अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।७

---

४. विक्रमोर्वशीनाटक (भरतवाक्य) ।

५. वाल्मीकीय रामायण-पाठविधि ।

६. सनातनधर्मसंग्रह पृ० २११, श्लो० ३९ ।

७. श्रीमद्भागवत ९.२१.१२ ।

भगवद्भक्त श्री रन्तिदेव कहते हैं—मैं ईश्वर से न तो आठो सिद्धियों से युक्त उत्कृष्ट गति को चाहता हूँ और न तो मुक्ति को ही चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों के अन्दर स्थित होकर मैं उनकी पीड़ा स्वयं भोगूँ जिससे कि वे सब दुःख से रहित हो जायँ, सुखी हो जायँ।

ऐतरेयब्राह्मण द्वारा विश्वमङ्गलकामना :

भवन्तु भद्राणि समस्तदोषाः प्रयान्तु नाशं जगतोऽखिलस्य।
मयाद्य भक्त्या परमेश्वरे प्रभौ स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥८

आज मैं भक्तिपूर्वक परमशक्तिशाली जगद्धारक भगवान् वासुदेव की स्तुति कर रहा हूँ। इसके फलस्वरूप सब लोगों का कल्याण हो और समस्त संसार के समस्त दोषों का नाश हो।

ये भूतले वा दिवि चान्तरिक्षे रसातले प्राणिगणाश्च केचित्।
भवन्तु ते सिद्धियुजो मयाऽद्य स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥९

जगद्धाता भगवान् की मेरे स्तुति कर लेने के बाद भूतल, स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा रसातल में जितने भी प्राणी हैं उन सब लोगों को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हों।

अज्ञानिनो ज्ञानविदो भवन्तु प्रशान्तिभाजः सततोग्रचित्ताः।
मया च विश्वम्भरणे ह्यनन्ते स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥१०

विश्वम्भर, अनन्त, जगद्धाता भगवान् नारायण की स्तुति के फलस्वरूप संसार में जितने अज्ञानी हैं वे ज्ञानी हो जायँ और जितने प्राणी उग्रचित्त हैं वे सब शान्तचित्त हो जायँ।

८-१४. स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड ४२.२०८-२१४।

शृण्वन्ति ये मे स्तुवतस्तथाऽन्ये पश्यन्ति ये मामिदमीरयन्तम् ।
देवासुराद्या मनुजास्तिरश्चो भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः ॥११

जो लोग भी मेरी स्तुति को सुनते हैं और जो लोग भी ऐसी स्तुति करते हुए देखते हैं वे सभी देवता, असुर, मनुष्य एवं पशु-पक्षी आदि प्राणी भगवान् की सन्निधि को प्राप्त करें।

ये चापि मूका विकलेन्द्रियत्वात् पठन्ति नो नैव विलोकयन्ति ।
पश्वादयः कीटपिपीलकाद्या भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः ॥१२

और भी जो विकलेन्द्रिय होने के कारण बोल नहीं सकते, पढ़ नहीं सकते तथा देख नहीं सकते वे सब तथा समस्त पशु एवं कीट-पिपीलिका आदि भी भगवान् का सान्निध्य लाभ करें।

नश्यन्तु दुःखानि जगत्यपेतु लोभादिको दोषगणः प्रजाभ्यः ।
यथाऽऽत्मनि भ्रातरि चाऽऽत्मजे वा तथा नरस्यास्तु जनेऽपि भावः ॥१३

जगत् के समस्त दुःख नष्ट हों, प्रजाओं के लोभ आदि सभी दोष दूर हों तथा सब लोग अपने-अपने पुत्र तथा अपने भाई के समान ही सब लोगों को समझें और सबके साथ सद्भाव रखें।

संसारवैद्येऽखिलदोष - हानि - विचक्षणे निर्वृतिहेतुभूते ।
संसारबन्धाः शिथिलीभवन्तु हृदि स्थिते सर्वजनस्य विष्णौ ॥१४

संसार के वैद्य, अखिल दोषों के विनाश के हेतु, मुक्तिदाता भगवान् विष्णु के हृदय में विराजमान होने पर सब लोगों के सांसारिक बन्धन शिथिल हों अर्थात् सब लोग मुक्ति प्राप्त कर सकें।

●

५. किन लोगों का अन्न ग्रहण करना चाहिए

(आचारखण्ड के विषयसंख्या १ के सन्दर्भ में)

क आश्यान्नः ।[१]

किसका अन्न खाना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में विभिन्न ऋषियों के निम्नलिखित उत्तर हैं—

य इप्सेदिति कण्वः ।[२]

जो खिलाना चाहे उसका अन्न खाना चाहिए यह कण्व ऋषि का मत है।

पुण्य इति कौत्सः ।[३]

जो पवित्र हो—धर्मात्मा हो—उसका अन्न खाना चाहिए यह कौत्स ऋषि का मत है।

यः कश्चिद् दद्यादिति वार्ष्यायणिः ।[४]

जो कोई भी अन्न दे दे उसी का खाना चाहिए यह वार्ष्यायणि ऋषि कहते हैं।

पुण्यस्येप्सतो भोक्तव्यम् ।[५]

जो धर्मात्मा भी हो और खिलाना भी चाहता हो उसी का अन्न खाना चाहिए। केवल धर्मात्मा या केवल खिलाना चाहने वाले व्यक्ति का नहीं। यह आपस्तम्ब ऋषि का मत है।

नानियोगपूर्वमिति हारीतः ।[६]

जब तक निमन्त्रण या पूर्वसूचना न मिल जाय तब तक किसी का अन्न नहीं खाना चाहिए, यह हारीत ऋषि का मत है।

१-६. आपस्तम्बधर्मसूत्र १.६.१९.२३४५९१२।

सुस्वस्थः स्वीकुर्यात् प्रीतिभोजनम् ।७

स्वस्थ रहने पर किसी के प्रीतिभोज के आमन्त्रण को स्वीकार कर लेना चाहिए।

किसी के घर, प्रेम होने से या आपत्ति में पड़ने पर भोजन करना चाहिए इस सम्बन्ध में एक महाभारत का प्रसङ्ग :

संप्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च संप्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ॥
ततोऽनुयायिभिः सार्द्धं (मरुद्भिरिव वासवः)।
विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥८

दुर्योधन द्वारा भोजनार्थ निमन्त्रित किये जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा—

राजन्! किसी का अन्न या तो प्रेम के कारण खाया जाता है अथवा आपत्ति में पड़ने पर खाया जाता है। पर तुम न हमसे प्रेम करते हो और न हम आपत्ति में ही पड़े हुए हैं। (अतः हम तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकते)।

यह कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने (मरुतों के साथ इन्द्र के समान) अपने अनुयायियों के साथ विदुर के घर जाकर उनका पवित्र एवं स्वादिष्ट भोजन किया।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि भोजन पवित्र एवं स्वादिष्ट दोनों प्रकार का होना चाहिए। न केवल पवित्र या न केवल स्वादिष्ट।

●

---

७. शुक्रनीति ३.११३।

८. महाभारत उद्योग० ९१.२५.४१।

६. सभी धर्मशास्त्रों से शिक्षाग्रहण

(आचारखण्ड के विषयसंख्या १५ के सन्दर्भ में)

अत्यन्तहेयं न क्वापि शास्त्रं किञ्चन विद्यते ।
सर्वत्र सुलभं श्रेयः स्वल्पं वा यदि वा वहु ॥
अतः कार्यो न विद्वेषो यावदर्थमुपाश्रयेत् ।[१]

किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का कोई ऐसा शास्त्र नहीं है जो मानव-हित की दृष्टि से सर्वथा हेय हो । क्योंकि थोड़ी अथवा ज्यादा, मानव के लिए श्रेयस्कर बातें सभी शास्त्रों में मिलती हैं । अतः किसी भी शास्त्र से द्वेष नहीं करना चाहिए और उसमें जितनी बातें काम की हों—कल्याणकारी हों—उतनी ग्रहण कर लेनी चाहिए ।

प्राचीन-नवीन के आग्रह का परित्याग :

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद् भजन्ते
मूढः पर - प्रत्यय - नेय - बुद्धिः ॥[२]

पुराने होने के कारण ही सभी काव्य (या सिद्धान्त) उत्तम नहीं होते और न नये होने के कारण बुरे होते हैं । अतः विवेकी पुरुष परीक्षा करके पुराने और नये में जो उत्तम होता है उसका ग्रहण करते हैं और शेष का परित्याग कर देते हैं । परन्तु जो मूढ़ होते हैं वे स्वयं विवेक न कर सकने के कारण दूसरों के ही कथनानुसार चलते हैं ।

अतः प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति को पुराने और नये का आग्रह छोड़ कर जो उत्तम और श्रेयस्कर बात हो उसका ग्रहण करना चाहिए।

●

---

१. लक्ष्मीतन्त्र २८.२५-२६ ।

२. मालविकाग्निमित्र प्रस्तावना ।

७. हास-परिहास एवं विनोद

(आचारखण्ड के विषयसंख्या १७ के सन्दर्भ में)

न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन मोक्षं
स्वर्गायतिं न परिहासकथा रुणद्धि ।
तस्मात् प्रतीतमनसा हसितव्यमेव
वृत्तिं वुधेन खलु कौरुकुचीं विहाय ।।१

मुनियों को रोने से मोक्ष नहीं मिलता और हास-परिहास करने से स्वर्ग में जाने का रास्ता भी नहीं बन्द होता। इसलिए वुद्धिमान् व्यक्ति को मुँह बना कर या लटका कर वैठने की वृत्ति छोड़ कर खूब हँसना चाहिए—मन भर हँसना चाहिए।

गुरुणाऽपि समं हास्यं कर्तव्यं कुटिलं विना ।
परिहासविहीनस्य जन्तोर्जन्म निरर्थकम् ।।२

कुटिलता छोड़ कर, सीधा-सादा हास्य गुरुजनों के साथ भी करना चाहिए। जो आदमी हास-परिहास के आनन्द से सर्वथा रहित है उसका जन्म बेकार है।

एक बार हास-परिहास के प्रसंग में भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से कहा—

अयं तु परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैर्नीयते कालः प्रियया भीरु भामिनि ।।३

प्रिये ! गृहस्थाश्रम में रहने वाले लोगों के लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि उनका थोड़ा सा समय अपनी प्रियतमा के साथ हास्य-विनोद करने में भी बीता करता है।

अत: हास्य-विनोद एवं प्रसन्नता के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए।

●

---

१. पादताडितकम् ५।

२. कथारत्नाकर।

३. श्रीमद्भागवत १०.६०.३१।

८. सुयोग्य बालकों का सम्मान तथा उन्हें पुरस्कार-प्रदान

(व्यवहारखण्ड के विषयसंख्या २ के सन्दर्भ में)

वाल्मीकि रामायण का एक प्रसंग :

प्रशस्यमानौ सर्वत्र कदाचित्तत्र गायनौ ।
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः ॥
स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ तौ कुशीलवौ ।
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिवर्हणः ॥[१]

किसी समय भरताग्रज रामचन्द्रजी ने वीथियों में और राजमार्गों में सर्वत्र लव एवं कुश के गान की प्रशंसा सुनी और उन्हें देखा। इसके बाद उन्होंने उन दोनों भाइयों को, जो पूजा के योग्य थे, अपने घर लाकर उनकी पूजा एवं सम्मान किया।

लव-कुश की सङ्गीतकला से प्रसन्न ऋषियों द्वारा उन्हें पुरस्कार प्रदान:

प्रीतः कश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितः कलशं ददौ ॥
प्रसन्नो वल्कलं कश्चित् ददौ ताभ्यां महायशाः ।
अन्यः कृष्णाजिनमदाद् यज्ञसूत्रं तथाऽपरः ॥
कश्चित् कमण्डलुं प्रादान्मौञ्जीमन्यो महामुनिः ।
बृसीमन्यस्तदा प्रादात् कौपीनमपरो मुनिः ॥
ताभ्यां ददौ तदा हृष्टः कुठारमपरो मुनिः ।
काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः ॥

---

१. वाल्मीकिरामायण बाल० ४.२८-६० ।

जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्वितः ।
यज्ञभाण्डमृषिः कश्चित् काष्ठभारं तथाऽपरः ॥
औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्ति केचित्तदाऽवदन् ।
आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः ॥
ददुश्चैवं वरान् सर्वे मुनयः सत्यवादिनः ।[2]

लव-कुश के शुद्ध, शास्त्रीय मधुर सङ्गीत से प्रसन्न ऋषियों ने उन्हें कलश, वल्कल, मृगचर्म, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, मौञ्जी, कुशासन, कौपीन, कुठार, काषायवस्त्र, चीर, जटाबन्ध, लकड़ी बाँधने की रस्सी, यज्ञोपयोगी पात्र, रन्धन एवं गूलर का पीढ़ा आदि वस्तु पुरस्कार के रूप में प्रदान किया। इसके अतिरिक्त अनेक ऋषियों ने उन्हें आशीर्वाद तथा वरदान भी दिया।

इसी प्रकार सुयोग्य एवं होनहार बालकों को अपने घर बुला कर शिक्षाप्रेमियों को उन्हें सम्मानित तथा पुरस्कृत करना चाहिए।

●

---

२. वाल्मीकिरामायण बाल० ४.२०-२६ ।

९. पूजा एवं सम्मान के योग्य व्यक्ति

(व्यवहारखण्ड के विषयसंख्या ९ के सन्दर्भ में)

पूजा वर्णज्यायसां कार्या ।[१]

जो लोग वर्ण की दृष्टि से अपने से श्रेष्ठ हों उनकी पूजा अर्थात् आदर-सत्कार करना चाहिए।

वृद्धतराणां च ।[२]

अपने वर्ण में भी अवस्था या विद्या आदि से जो श्रेष्ठ हों उनका भी आदर-सत्कार करना चाहिए।

हीनानामपीति एके ।[३]

अपने से हीन वर्ण के भी जो लोग अवस्था एवं विद्या में श्रेष्ठ हों उनका भी आदर-सत्कार करना चाहिए ऐसा भी कुछ आचार्यों का विचार है।

यहाँ वर्ण शब्द से वर्ग, श्रेणी, जाति तथा कुल आदि का भी अर्थ लेना चाहिए।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम् ॥[४]

न्यायोपार्जित धन, भाई-बन्धु, अवस्था (उम्र) शास्त्रप्रतिपादित कर्म तथा विद्या अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान ये पाँच विषय मान्यता के अर्थात् किसी भी मनुष्य के मान्य होने के—आदर-सत्कार का पात्र होने के—मानदण्ड हैं। इन पाँचों में भी पहले की अपेक्षा दूसरा श्रेष्ठ

१-२. आपस्तम्बधर्मसूत्र न० १.४.१३.२-३ ।

३. ,, ,, ,, तृतीय सूत्र पर उज्ज्वलावृत्ति ।

४. मनुस्मृति २.१३६ ।

होता है। अर्थात् धन की अपेक्षा बन्धु, बन्धु की अपेक्षा वय, वय की अपेक्षा कर्म तथा कर्म की अपेक्षा विद्या श्रेष्ठ है।

पूज्या विद्या-बुद्धि-पौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च पुरुषाः ।[५]

जो व्यक्ति विद्या, बुद्धि, पौरुष, कुल तथा उत्तम कार्यों के कारण श्रेष्ठ हों उनकी पूजा और प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत का एक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग :

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणाम् अनिवर्तिनाम् ।
यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे ॥
प्रह्वाभिवादनाऽऽश्लेष - करस्पर्श - स्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाऽश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥[६]

महाभारत युद्ध के बाद द्वारका में आने पर भगवान् कृष्ण ने बन्धु-बान्धवों, नागरिकों और सेवकों से अलग-अलग यथायोग्य मिलकर सबका सम्मान किया।

किसी को शिर झुका कर प्रणाम किया, किसी का वाणी से अभिवादन किया, किसी को हृदय से लगाया, किसी से हाथ मिलाया, किसी की ओर देख कर मुस्करा भर दिया और किसी को केवल प्रेम-भरी आँखों से देखा तथा जिसकी जो इच्छा थी उसे वरदान भी दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त समस्त लोगों को भगवान् ने सम्मान प्रदान किया।

इसी प्रकार सबको अपने से बड़े तथा छोटे सबका यथायोग्य आदर-सम्मान करना चाहिए।

●

---

५. कौटलीय अर्थशास्त्र धर्मस्थीय अधि० २०.३० ।

६. श्रीमद्भागवत १.११.२१-२२ ।

१० पुस्तकों की सुरक्षा एवं सम्मान

(आचारखण्ड के विषयसंख्या १५ के सन्दर्भ में)

संपोष्यं सदपत्यवत् परकरात् रक्ष्यं च सुक्षेत्रवत्
संशोध्यं व्रणिनोऽङ्गवत् प्रतिदिनं वीक्ष्यं च सन्मित्रवत् ।
बध्यं वन्धवदश्लथं नहि च विस्मर्यं हरेर्नामवत्
नैवं सीदति पुस्तक किल कदाऽप्येतद् गुरूणां वचः ॥१

पुस्तक को अच्छे पुत्र के समान परिपुष्ट रखना चाहिए, अच्छे खेत के समान दूसरों के हाथ में जाने से बचाना चाहिए, घाव वाले व्यक्ति के अङ्ग के समान प्रतिदिन झाड़-पोंछ कर सफाई करनी चाहिए, अच्छे मित्र के समान स्नेह और सद्भाव से देखना चाहिए, बाँध की तरह पुस्तक को वेष्टन अथवा जिल्दबन्धी से अच्छी तरह बाँध कर रखना चाहिए तथा हरि के नाम की तरह पुस्तक को कभी भूलना नहीं चाहिए, इन नियमों का पालन करने से पुस्तकें कभी खराब नहीं होतीं ऐसा गुरुजनों का कहना है।

तैलाद् रक्षेद् जलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात् ।
परहस्तगताद् रक्षेद् एवं वदति पुस्तकम् ॥२

तेल लगने से, पानी पड़ने से, शिथिल बन्धन से अथवा ढीली जिल्दबन्धी से तथा दूसरों के हाथों में जाने से पुस्तकों को बचाये रहना चाहिए इस प्रकार पाठकों से पुस्तकें निवेदन करती हैं।

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा :

भग्नपृष्ठ-कटि-ग्रीवं स्तब्धदृष्टि अधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥३

पीठ, कमर एवं गर्दन को तोड़ कर, आँखों से एक टक देखते हुए तथा मुँह को नीचे लटका कर कष्ट से ग्रन्थ लिखा जाता है। अतः उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

१-२-३. विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थों का अन्तिम श्लोक।

११. नाम से सम्बोधन करने का निषेध

(व्यवहारखण्ड के विषयसंख्या ९ के सन्दर्भ में)

आचार्यं चैव तत्पुत्रं तद्भार्यां दीक्षितं गुरुम् ।
पितरं चैव पितृव्यं भ्रातरं मातुलं तथा ॥
हितैषिणं च विद्वांसं श्वसुरं पतिमेव च ।
न ब्रूयान्नामतो विद्वान् मातुश्च भगिनीं तथा ॥[1]

आचार्य, आचार्यपुत्र, आचार्यपत्नी, दीक्षित, गुरु, पिता, चाचा, भाई, मामा, हितैषी विद्वान्, श्वसुर, पति तथा माता की वहन, इन लोगों का नाम नहीं लेना चाहिए ।

आत्मनाम गुरोर्नाम नामाऽतिकृपणस्य च ।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठाऽपत्यकलत्रयोः ॥[2]

जो अपना भला चाहते हों उन्हें अपना नाम, गुरु का नाम, अत्यन्त कृपण व्यक्ति का नाम तथा ज्येष्ठ पुत्र एवं स्त्री का नाम नहीं लेना चाहिए ।

पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता ।[3]

पतिव्रता स्त्री को कभी भी पति का नाम नहीं लेना चाहिए ।

उपर्युक्त निषेध केवल सीधा नाम लेने का है । अन्य उपनाम, पद, पदवी तथा प्रचलित नामों से इनका सम्बोधन किया जा सकता है ।

परन्तु विशेष परिस्थिति में इनका सीधा नाम भी लिया जा सकता है ।

●

१-२, स्मृतिमुक्ताफल पृ० ११२ ।

३. शिवपुराण रु० सं० ३.५४.१९ ।

१२. सन्देहावस्था में कर्त्तव्यनिर्धारण

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्षिणः, युक्ता, आयुक्ता, अलूक्षाः, धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः ।[1]

समावर्तन के अवसर पर विद्यार्थी के प्रति कर्तव्य का निर्देश कर आचार्य यह अन्तिम उपदेश देते हैं—

यदि तुम्हें, सब कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद भी, कर्तव्याकर्तव्य के अथवा आचार-व्यवहार के विविध विषयों के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो तो उस विषय में विमर्शशील शास्त्रज्ञ, तपस्वी, कर्तव्यपरायण, कोमलस्वभाव एवं धर्मात्मा ब्राह्मण अथवा ब्रह्मज्ञानी विद्वान् जैसा आचरण करते हों वैसा ही तुम भी आचरण करना ।

यद्यपि उपर्युक्त विशेषणों से युक्त विद्वानों का सर्वत्र मिलना दुर्लभ है तथापि अपने से जो भी वरिष्ठ एवं मान्य व्यक्ति हों, सन्देह होने पर, उनके आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए एवं उसी पथ पर चलना चाहिए ।

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद् १.१०.४ ।

आधारग्रन्थसूची

अङ्गिरास्मृति
अग्निपुराण
अग्निवेशसंहिता
अग्निवेश्यगृह्यसूत्र
अत्रिस्मृति
अथर्ववेद
अभिज्ञानशाकुन्तल
अभिनयदर्पण
अष्टाङ्गसंग्रह
आचारभूषण
आपस्तम्बधर्मसूत्र
आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट
आह्निकसूत्रावलि
ईशोपनिषद्
उपदेशशतकम्
उपवनविनोद
ऋग्वेद
कातीयश्राद्धसूत्र
कामन्दकीयनीतिसार
काश्यपसंहिता
कूर्मपुराण
कौटलीय अर्थशास्त्र
कौषीतकिगृह्यसूत्र
क्षेमकुतूहल
गृहस्थरत्नाकर
गोभिलगृह्यसूत्र
गौतमधर्मसूत्र
गौतमस्मृति
चरकसंहिता
चाणक्यसूत्र
चारुचर्या
चिदम्बररहस्य
तीर्थचिन्तामणि
तैत्तिरीय उपनिषद्
देवलस्मृति
धर्मसिन्धु
नारदस्मृति
नारदीयमनुस्मृति
नीतिवाक्यामृत
नीतिसंग्रह
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका
पद्मपुराण
परमेश्वरपटल
पाणिनीयशिक्षा
पैठीनसि
बौधायनधर्मसूत्र
बौधायनस्मृति
ब्रह्मपुराण
ब्रह्मवैवर्तपुराण
ब्रह्मसूत्र पर भामती व्याख्या
भगवद्गीता
भरतनाट्यशास्त्रम्
भवाब्धिसेतु
भावप्रकाश
मत्स्यपुराण
मनुस्मृति

महानिर्वाणतन्त्र,
महाभारत
मानसोल्लास
मार्कण्डेयपुराण
मार्कण्डेयस्मृति
मुण्डकोपनिषद्
मैत्रायणीमानवगृह्यसूत्र
यमस्मृति
यशस्तिलकचम्पू
याज्ञवल्क्यस्मृति
योगवाशिष्ठ
योगियाज्ञवल्क्य
लघ्वाश्वलायनस्मृति
लक्ष्मीतन्त्र
लोहितस्मृति
वशिष्ठधर्मशास्त्र
वशिष्ठस्मृति
वात्स्यायनकामसूत्र
वाराहगृह्यसूत्र
वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र
वाल्मीकिरामायण
विदुरनीति
विवेकविलास
विश्वभारतीपत्रिका
विष्णुपुराण
विष्णुधर्मोत्तरपुराण
वृद्धमनु
वृद्धहारीतस्मृति
वृहत्संहिता
वृहद्दैवज्ञरञ्जन
वृहद्धर्मपुराण
वृहत्पाराशरसंहिता
वृहत्पराशरस्मृति
वृहस्पतिस्मृति
शंखस्मृति
शंखलिखित
शतपथब्राह्मण
शाण्डिल्यस्मृति
शिवतत्त्वरत्नाकर
शुक्रनीति
शुक्लयजुर्वेद
शौनकीयनीतिसार
श्यैनिकशास्त्र
श्राद्धप्रकाशिका
श्रीमद्भागवत
संस्कारप्रकाश
सत्याषाढ श्रौतसूत्र
सुभाषितरत्नभाण्डागार
सुश्रुतसंहिता
सूक्तिमुक्तावलि
स्कन्दपुराण
स्वस्थपुरुष
स्मृतिसंग्रह
स्मृतिचन्द्रिका
स्मृतिमुक्ताफल
स्मृत्यर्थसार
हारीतस्मृति
हितोपदेश
हिरण्यकेशिगृह्यशेषसूत्र
हेमाद्रि (दानखण्ड)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	७	न पर्वतमस्तके	न च पर्वतमस्तके
१६	१५	अश्नत्	अश्नन्
२५	२१	अनिन्दन्	निन्दन्
४८	४	उमग्र	उदग्रः
,,	१५	दद्	यद्
५३	१०	बलमाथापि	बलमथापि
६४	१०	परनिन्दया	परिनिन्दया
९७	२	सौमनस्यममलक्ष्मीघ्नं	सौमनस्यमलक्ष्मीग्घं
११९	१९	नरश्चान्ये	नरेश्चान्ये
१२८	२९	जैष्ठ्यस्य	ज्यैष्ठ्यस्य
१३१	१४	शरीरेषुऽग्निषु	शरीरेऽग्निषु
१४३	९	साहस्रे	साहसैः
१५३	१३	व्याकुल	व्याकुलं
१५७	१०	आकन्तिः	अकान्तिः
१७१	९	क्रूरमाषणमौ	क्रूरमाषणम्
१८५	१३	तमोमूलमिदं	तपोमूलमिदं
१९४	५	सम्ना	साम्ना
२१९	११	इत्तरेताम्	इतरेताम्
,,	१२	यिहाह	विवाह
२३७	१६	दारे प्रजायां च्च	दारे प्रजायां च
२३९	१	पुरुषं	परुषं
२४३	१९	अवगघ्येंन	अवराघ्येंण
२५१	२	मान्स्थानेनैव	मान्यस्थानेनैव
२७०	८	सर्व	सर्वं
२८१	३	उत्तिष्ठिता	उत्तिष्ठता
२८२	१७	सर्वेषु	सर्वेषु

संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति के

विनम्र निवेदन

कार्यालय द्वारा शब्दरूप, धातुरूप, वाक्य-संग्रह, बालोपयोगी कविता, शब्दकोश, सरल गद्य-संग्रह, सरल पद्य-संग्रह, निबन्ध, एकाङ्की, प्रहसन, संगीत, सुभाषित, धर्मशिक्षा, नीति, स्तुति प्रार्थना, संस्कृत-भाषा-प्रचार तथा संस्कृत-शिक्षा-सुधार आदि विविध विषयों पर जो साहित्य—पुस्तक, पुस्तिकायें तथा पोस्टर आदि—प्रकाशित किया गया है वह संस्कृत-प्रचार की दिशा में एक अभिनव क्रान्तिकारी प्रयास है। सभी संस्कृतप्रेमी जन एक बार इस साहित्य के निरीक्षण, परीक्षण तथा प्रयोग द्वारा इस प्रयास को प्रोत्साहन देने की कृपा करें यह विनम्र निवेदन है। कृपया आज ही सूचीपत्र के लिए लिखें। पता निम्न-लिखित है—

व्यवस्थापक—
सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
डी० ३८/११० हौजकटोरा
वाराणसी

पुस्तक मुद्रक—आनन्दकानन प्रेस, डी० १४/६५, टेढ़ीनीम, वाराणसी।